देवर-भाभी

समस्या-प्रधान सामाजिक उपन्यास

देवर-भाभी

चिरंजीलाल पाराशर

दिल्ली पुस्तक सदन
नई दिल्ली : पटना

प्रकाशक
राकेश पब्लिकेशन्स,
गाजियाबाद
(मेरठ)

मूल्य : ४.२५

मुद्रक :
राजकमल प्रिंटिंग प्रेस,
कुतुबमीनार रोड, दिल्ली

देवर-भाभी क्यों ?

ऋषि-मुनियों की तपस्थली, भारत की धन्य-धरा पर अपने बुद्धि-बल के प्रताप से समाज-शास्त्रियों ने जितने भी सामाजिक सम्बन्धों का सृजन किया था ; उनमें केवल 'देवर-भाभी' का सम्बन्ध ही ऐसा सुन्दर-सजीव सम्बन्ध सिद्ध हुआ, जिसमें आबद्ध होने की कामना मनसा-वाचा कर्मणा—प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के चारों चरणों में समान और सतत रूप से करने का अभिलाषी रहता आया है।

बुद्धू से लगाकर बुद्धिमान् तक, विद्वान् से हैवान तक, किसी भी आकृति-प्रकृति के मनुष्य को अपनी '[illegible]' सिसकते-बिहँसते निकले हुए शब्द 'अजी,' 'ओजी' या 'प्राणजी' इतने मधुर नहीं लगते, जितने किसी भोली या चंचल भाभी के मुख से निकले हुए 'लल्ला' या 'लालाजी' रसीले लगते हैं।

आज का प्रत्येक युवक अपनी पत्नी, भगिनी अथवा माता की आज्ञा माने या न माने, परन्तु भाभी को सीता-स्वरूपा मानकर उसकी आज्ञाओं का आदर आज भी उसी तरह से करता है, जिस तरह अब से चार हज़ार वर्ष पूर्व महात्मा लक्ष्मण ने, पंचवटी में अपनी भाभी सीता की आज्ञाओं का पालन किया था।

इसके अतिरिक्त, इस सम्बन्ध की जड़ों को और भी सुदृढ़ करने के लिये हमारे देश में प्रत्येक वर्ष होली का पवित्र त्योहार रंग और चंग

लेकर आता है। योगीराज श्रीकृष्ण के काल से लेकर आज के प्रजातांत्रिक युग तक यह भारत के नगर-नगर और गाँव-गाँव में यथा-विधि विविध रूप से गोबर-कीचड़, अबीर, गुलाल, और चन्दन से मनाया जाता है। इस दिन तमाम देश अपने को व्रजमण्डल का अङ्ग ही समझता है।

फलतः इस दिन जीवित ही नहीं, मुर्दे की भी यही आकांक्षा रहती है कि उसके साथ भी कोई बाला 'भाभी' बनकर होली खेले।

यह तो रही पुरुषों की बात। ठीक ऐसी ही दशा नारियों की भी है। अपने देवर को लक्ष्मण का अवतार मानकर उसकी रक्षा-छाया में भाभियाँ यत्र-तत्र-सर्वत्र निर्भय-भाव से इसी तरह विचरण किया करती हैं, जिस तरह से पंचवटी में किसी समय सीताजी किया करती थीं।

देवर द्वारा चोरी-चोरी बाजार से मंगायी हुई मिठाई के खाने में जितने आनन्द का अनुभव उन्हें होता है, उतना आनन्द किसी देवता के प्रसाद में भी नहीं आता। उनके लिये समस्त परिवार में केवल देवर ही एक ऐसा उपयोगी प्राणी होता है जिसे वह आज्ञा भी दे सकती हैं और मनुहार भी कर सकती हैं, क्योंकि देवर ही तो वह जीव है, जिसके आगे भाभी अपनी आत्मकथा से लेकर विरह-व्यथा तक की कथा निःसंकोच भाव से बिना हल्दी-मिर्च लगाये बयान कर सकती हैं।

महात्मा तुलसीदास की रामायण से प्रभावित होकर अब से तीन वर्ष पूर्व 'देवर की मिठाई' नामक अपनी एक कहानी (जो साप्ताहिक हिन्दुस्तान में छपी थी) में मैंने इस संबंध में थोड़ा-सा प्रकाश डाला था। कहानी के प्रकाशित होने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि हमारा देश इस सम्बन्ध को और भी सुदृढ़ बनाने का अभिलाषी है, क्योंकि कहानी के छपने पर सैकड़ों प्रशंसा-पत्र आये, जिनमें कुछ पाठकों ने इस विषय पर नाटक या उपन्यास लिखने की माँग भी की थी।

उन्हीं दिनों प्रस्तुत उपन्यास लिखा गया। परन्तु दुर्भाग्य से छपाई

के पैरों की इन्जआरी में पूरे तीन सील एक पांडुलिपि सन्दूक में आराम करती रही। उसके बाद पांडुलिपि को ब्रजमोहनजी को सौंप कर मैं गाँव चला गया। लौटकर आने पर मालूम हुआ कि पांडुलिपि गायब है। यह घटना अप्रैल १९५९ की है। फलस्वरूप इसी आस प्राप्ति की आशा से दिल्ली के 'नवभारत-टाइम्स' में इनाम का लालच देकर विज्ञापन दिया गया। लेकिन पांडुलिपि न लौटनी थी, न लौटी। अतः उपन्यास का आरम्भ पुनः नये सिरे से करना पड़ा। दूसरी बार में जब आधा उपन्यास लिख चुका, तब ज्ञात हुआ कि दो पात्र अपने नाम बदल कर साथ-साथ चल रहे हैं।

अस्तु, उपन्यास को पुनः पूरा किया। अब यह पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। मैं नहीं जानता कि प्रस्तुत कहानी पहली से रोचक है अथवा नहीं। मैं तो केवल इतना जानता हूं कि प्रत्येक साहित्यिक का कर्तव्य समाज को कुछ देना ही होता है। अतः मेरे उसी दृष्टिकोण से यदि 'देवर-भाभी' भी समाज को कुछ दे सका, तो मैं अपने दुहरे परिश्रम और एक-एक पैसा किसी तरह जुटाकर इसके प्रकाशन के लिये एकत्र किये गये धन को सार्थक समझूँगा।

गाजियाबाद,
शरद पूर्णिमा, १९५९

—चिरंजीलाल पाराशर

गर्मियों की छुट्टियाँ प्रारंभ हो चुकी थीं। कालिज बंद हो चुका था। इन्हीं दिनों अपनी खाट पर पड़े हुए कुमार एक दिन अपने भविष्य का ताना-बाना बुन रहा था। इधर-उधर भटकने के बाद उसकी विचारधारा ने नया मोड़ लिया और भविष्य के ताने-बाने से निकल कर विचारधारा भाभियों के संसार की ओर मुड़ गई। कुमार बुदबुदाया—"कैसी अजीब होती हैं ये भाभियाँ, और कैसी अद्भुत होती हैं उनकी आदतें, वह भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न। आदतें ही नहीं, शक्ल और सूरत भी सबकी भिन्न ही होती है।

"जिस समय इन्हें देवरों से कोई काम कराना होता है, उस समय इनकी सूरत देखो—काबिले तारीफ, तारीफ क्या, काबिले तस्वीर होती है। दुनिया भर की सारी सज्जनता, सारी [illegible]ता और सारी मधुरता सिमटकर इनके चेहरे पर आ विराजमान होती है। लगता है कि इस दुनिया में यदि कोई भ[illegible] है, करुणा की साक्षात करुणानिधान है तो [illegible] भाभी जी ही हैं। जिस समय वह आड़ी-तिरछी खड़ी होकर और चिबुक पर कमकी अंगुली रखकर एक विशेष अंदाज से शब्दों में मिठास भर कर कहती हैं—"लल्ला, जरा बाजार से पाँच रुपये का आटा ला दोगे क्या?" या कहती हैं—"छोटे बाबू, जरा लपक कर हमें सब्जी ही ला दो न।" तब उनकी छवि अवर्णनीय होती है। क्योंकि उस समय करुणा, कोमलता और माधुर्य की एक संयुक्त आभा उनके मुख-मण्डल पर नाचती-सी नजर आती है। उस समय ऐसा आभास होने लगता है, मानों कोई साक्षात् देवी आटा मंगाने नहीं, बल्कि वरदान देने आई हो। अतः इस दशा में उनके काम के लिए 'ना' करने

की हिम्मत भला देवर को कब हो सकती है ?

"अपनी ही भाभियों को देखिये; राजरानी भाभी, दयाधर्म का साक्षात् अवतार हैं। क्या मजाल कभी भी पैसों का हिसाब मुझसे ले लें या मेरे झूठ पर जरा-सा भी संदेह करें। जो कह दिया उन्होंने सच मान लिया, जो उनसे माँगा दे दिया। राम जाने, वह ज्योतिष जानती हैं या जादू जानती हैं, अपनी जेब का पता तो उन्हें इसी तरह चल जाता है जिस तरह चोरबजारी को किसी इन्स्पेक्टर की जेब का पता। अन्यथा भाई साहब से माँगो तो पहिले एक पर्चे पर पिछले पैसों के खर्च का हिसाब लिखकर उनके पास ले जाओ। बाद में उनकी दलीलों का झूठमूठ जवाब दो और अगले खर्च की तफसील बताओ। उस तफसील में कभी-कभी अपने राम को घाटा ही रहता है। रही अम्माजी की बात, उन्हें सिवाय राम-भजन या कीर्तन के और किसी बात से मतलब ही नहीं। बहुत रोने झींकने पर कभी दो-चार रुपये दे देती हैं अन्यथा कह देती हैं—ले आ अपनी भाभी से। तब भला मैं भाभी के काम को कैसे इंकार कर सकता हूँ।

"इनके बाद रही गीता भाभी की बात। उनकी आदत राजरानी भाभी के एकदम विपरीत है। जहाँ राजरानी भाभी अपनी हर बात बिना वाद-विवाद के मान लेती हैं, वहां गीता भाभी का तो हाल ही न पूछिये। समझिये दलीलों में पूरी वे वकील हैं। दिल्लगी में बच्चों के कान कतरती हैं और बातें बनाने की रफ्तार तो इतनी तेज है कि ट्रेन रन-थ्रू चलती है। बातों के दौर में विराम लगाना तो जानती ही नहीं हैं। बातों की ट्रेन जब रन-थ्रू होती है, तब उन्हें खुद को ही यह ख्याल नहीं रहता कि गाड़ी आगरे से शाहदरे कब पहुँच गयी। रही उनकी विचारधारा की बात ?—वह भी अलग है। नौकर की तरह से बाजार का काम भी करा लेती हैं और त्योहारों आदि पर पुरोहित भी बना लेती हैं। यानी अपने होते हुए वह दान-दक्षिणा किसी पंडित को देना बेवकूफी करने से कम नहीं मानतीं।

"साथ ही बाजार के मामले में पूरी घाघ हैं । बाल की खाल इस तरह से सीखती है कि उनको दस रुपये के सामान में से दो रुपये बचाते भी भय लगता है। परन्तु साथ ही कुछ गुण भी उनमें विशेष है। पहला तो यही कि जब भी उनके घर जाओ बिना कुछ खिलाये-पिलाये तो आने ही नहीं देतीं। दूसरा यह कि अपनी दौड़-घिसाई के बदले में छाया-धेली भी जेब में डाल ही देती हैं।

"यह ठीक है कि उनका काम करके पैसा लेना मुझे बुरा लगता है, यह तो मजदूरी हुई। इसलिये कई बार मैंने कहा भी—रहने दो भाभी, तुम्हारी सेवा करना तो मेरा फर्ज ही है। लेकिन, वह नहीं मानतीं। कह देती हैं—कुछ हमारा भी तो कर्तव्य है। तुम्हारे लेटरबक्स और पाकिट को देखना हमारा ही तो काम है। अब हम तुम्हें देते हैं, जब तुम चार पैसे कमाने लगोगे, तब वसूल भी तुमसे ही किया करेंगे। अब कुछ न देंगे तो तुम सूरत दिखानी भी छोड़ दोगे।

"मैं कहता ही रह जाता हूँ—नहीं भाभी, तुम्हारा ख्याल गलत है भाभी तुम न भी बुलाओ तब भी मैं आऊंगा—आता ही रहता हूँ।" प्रायः पूछ जाता हूँ—मँगाना है क्या कुछ भाभी जी बाजार से?

कुमार की विचारधारा चलती रही। कान्ता को वह अधिकतर सेठानी भाभी कहा करता था। उसने सोचा—"और वह सेठानी भाभी! उनका तो जैसा खुला हाथ है, वैसा ही खुला दिल है। उदासी या रुंआसी तो उनके चेहरे के आसपास आती कभी दीखी ही नहीं। जो भी हाथ में आया, दे दिया। चाहे हाथ में एक रुपये का नोट हो, दो का हो या पाँच का हो। दो रुपये का सामान मंगाया, तीन पकड़ा दिये। तीन का मंगाया, पाँच दे दिये। वास्तव में भाभी हो तो ऐसी हो! अलबत्ता एक अजीब सी ममता उनकी आँखों में कभी-कभी अवश्य दिखाई देती है।

"वह चमक कैसी है, यह तो राम जाने; किन्तु यह बात अवश्य है

कि ऐसी चमक दूसरी दोनों भाभियों में से एक की भी आंखों में नहीं।

"इस तरह तीनों भाभियाँ अपनी शान की निराली ही हैं। अर्थात् जहाँ भाभी राजरानी बुद्ध भगवान् की दया का अवतार हैं, वहाँ गीता भाभी पूरी खुर्राट और सेठानी भाभी खुशमिजाज रईस। जिनके चेहरे पर सदा मुस्कराहट कबड्डी खेलती रहती है।

"उनसे भी पैसे लेते वक्त कई बार कहता हूँ—रहने दो भाभी, यही तो मेरा फर्ज है। परन्तु वह भी कुछ न कुछ अपनी जेब में सरका ही देती हैं। कह देती हैं—लल्ला, तुम्हारे दिये से कौन कमी आ जायेगी—भगवान और ज्यादा देगा। तुम्हें देना तो दान देने के बराबर है।"

अपनी भाभियों के बारे में सोचते-सोचते कुमार ने सामूहिक ढंग से भाभियों के प्रश्न पर विचार करना शुरु किया—"वास्तव में देवरों की दृष्टियों में भाभियाँ तीन प्रकार की हैं—'कृपालु', 'झगड़ालू', और 'ईर्ष्यालु।'

"इनमें कृपालु किस्म की वह भाभी होती है जो अपने देवर पर सदा कृपा करती रहे। वह सहायता में भाई हो, प्यार में माता हो और परिहास में मित्र हो। उसकी चितवन में चंचलता हो, होठों पर उल्लासमिश्रित मृदुहास हो, वाणी में स्नेह हो और ताड़ना में मास्टर हो। अपनी प्रकृति पर सदा ज्यों की त्यों अटल रहे। ऐसी मृदुमयी भाभी की छत्रछाया में पढ़ता-लिखता देवर नित्य धोबी के गधे की तरह फूलता रहता है।

"इसके बाद नम्बर आता है झगड़ालू भाभी का। झगड़ालू भाभी, लड़ाका-किस्म की वह भाभी होती है जो बात-बात में देवर से झगड़ा करे और साथ ही देवर के हर सवाल को लेकर उसके भाई की जान को बवाल बन जाये।

"ऐसी भाभी के संग गरीब देवर की जिन्दगी तो हराम हो ही जाती

है; लेकिन भाभी साहिबा की जिन्दगी भी चैन से नहीं कट पाती। अक्सर ऐसी भाभियाँ या तो भैंस-बुद्धि की निरक्षर भट्टाचार्य होती हैं अथवा उन परिवारों की लाडली बेटियाँ होती हैं—जिनके यहाँ मूर्खता: नमो नमः का जाप, गायत्री मंत्र की तरह होता रहता है। अब रही ईष्यालु भाभियाँ! तोबा-तोबा!! इनसे तो खुदा बचाये। इनकी सूरत देखकर यमदूत भी दूर से ही नमस्कार कर रास्ता छोड़ देते हैं। यों समझिये कि ऐसी भाभी किसी प्राचीन पाप के फलस्वरूप ही वर्तमान जीवन में किसी युवक को प्राप्त होती हैं। या कहिये कि कोई पूर्व जन्म का शत्रु वर्तमान काल में भाभी के रूप में जन्म लेकर परेशान करने के लिए आ जाता है।

"ऐसी भाभी के चेहरे पर हमेशा मक्खियाँ कीर्तन करती नजर आती हैं। हर समय मुख की दशा ऐसी शोभायमान रहती है, मानो कहीं से अपमानित होकर भाभी जी आ रही हों। माथे पर भाखड़ा-नंगल डैम की लहरों के नक्शे जैसी रेखाएँ फैली रहती हैं। और मुख हौजखास की तरह सदा खुला रहता है।

"वाणी में मिठास के स्थान पर खटास और कड़वाहट मिलाकर ऐसी मधुर आवाज निकालती हैं, मानों बिना सुरों की बाँसुरी, को कोई बेवकूफ फूंक रहा हो। अतः इनका यह कर्णकटु स्वर घरेलू शान्ति में नई सिरदर्दों का सृजन मौके बे-मौके करता रहता है। यदि कभी भूल से देवर की ओर देखती भी हैं तो उतने ही निर्मल प्रेम से देखती हैं जितने निर्मल प्यार से बिल्ली कबूतर को या नेवला साँप को देखता है।

"देवर के लिए ऐसी भाभी से कुछ प्राप्त कर लेना रेत से तेल निकालने के प्रयत्न के समान होता है। उसके लिये यही बहुत होता है कि जान सलामत रहे और दिन बिना भाभी जी की चीत्कार या फुत्कार या कांव-कांय के कट जाय। क्योंकि न इसे देवर का खाना भाता है, न पहनना सुहाता है। देवर को खाता-पीता देख कर भाभी जी जल-भुनकर ईख की तरह ऐंठी दिखाई देती हैं। देवर को खाना खिलाना

और गधे को खेत चराना समान मानकर यह ईर्ष्यालु भाभी यदा-कदा व्यंग-बाण छोड़ती रहती है। उसके अच्छे कपड़ों को देखकर ताना कसती है—'अपनी कमाई में आग लगाओगे तब देखूंगी।' 'अब तो घर की मुफ्त की नौकरानी मैं हूँ। तीन दिन भी धुले कपड़े बाबूजी नहीं चला पाते।'

"भाई-भाई के सम्बन्धों की जड़ों में तो यह मट्ठा डाल ही देती हैं। लेकिन, कभी-कभी अपनी कपटकला में असफल होने पर आत्महत्या तक को उतारू हो जाती है। परन्तु ऐसी भाभियां भगवान् किसी विशेष समय पर ही बनाकर विशेष युवकों को ही भाभी रूप में भेंट किया करते हैं ताकि बिना बखेड़े के ही वह आदमी को घर पर ही सजा दे दें।

कृपालु, झगड़ालू और ईर्ष्यालु किस्म की भाभियों की मीमांसा के बाद कुमार ने भगवान से निवेदन किया कि हे परमपिता परमात्मा, दया-निधान भगवान, तुम चाहे किसी आदमी के हाथ में वधू की रेखा खींचा करो अथवा न खींचा करो लेकिन एक सुन्दर-सी भाभी उसके भाग्य में अवश्य लिख दिया करो। क्योंकि बिना भाभी के हर युवक की जिन्दगी इसी तरह से फीकी रहती है, जिस तरह बिना नमक के सब्जी या बिना तेल के दाल।

इसके साथ ही हे भगवान्, इतनी कृपा और कर दिया करो कि जहाँ तुम भाभी को सलोनी, मृदुभाषिणी बनाया करो, वहाँ उसकी बुद्धि में जरा सी बेवकूफी, थोड़ी-सी लापरवाही, नेकसा आलस्य और मिला दिया करो। इन विशेषताओं के अतिरिक्त प्रत्येक भाभी पर्दा-प्रथा की पूरी समर्थक और प्रशंसक हो। घर की चहारदीवारी के अन्दर वह इसी तरह से शोभायमान रहे जिस तरह से कोई योगी अपने आश्रम में रहता है या भेड़ बाड़े में रहती है अथवा मेंढक कुएँ में रहता है। और हरेक भाभी पढ़ी-लिखी भी केवल इतनी ही हो कि वह भाषा-विहीन भाषा में अपना नाम लिख लिया करे या राधेश्याम की रामायण के

कुछ अंश पढ़ लिया करे। मतलब यह है कि यदि पढ़ी-लिखी कतई न हो तो सबसे अच्छा और यदि हो तो बस इतनी ही। अन्यथा आपका भाभी देना भी न देने के बराबर है।

भाभी जितनी कम पढ़ी-लिखी होगी या पर्दे की जितनी पुजारी होगी, देवर के लिए वह उतनी ही लाभदायक रहेगी। भगवान् यह पढ़ी-लिखी भाभियाँ तो देवरों के लिए उलटे आफत होती हैं। बाजार से सामान मँगवाकर देवर को चार पैसे कमवाना तो अलग; यह उसके पैसे भी खा जाती हैं। अपना भी सामान खुद खरीद लायें साथ ही उसका भी ला दें। तिस पर भी यदि खुदा-न-खास्ता कभी कुछ मँगा लिया तो उन्हें बाजार की हर चीज का भाव इसी तरह से जबानी याद रहता है जिस तरह किसी मुनीम को मण्डी का।

इन गुणों के साथ-साथ भाभी जी का जबान की चटोरी होना तो और भी जरूरी है। तुम यह गुण भी उनमें थोड़ा-सा और डाल दिया करो। क्योंकि भाभी जितनी जबान की चटोरी होगी, गरीब देवर की सेहत उतनी ही अच्छी रहेगी। बिना देवर की सहायता के उसकी यह आदत अधिक दिन तक घर में चल नहीं सकती। अतः उसे देवर के हाथ में पैसे देकर यह कहना ही पड़ा करेगा—"लल्ला, ले आओ न आठ आने की जलेबी। जरा दौना ढुबकाकर लाना या थैले में रख लाना।" अथवा—"लल्ला, लो चुपके से दो रुपये का सोहन हलुवा ले आओ। लाकर अलमारी में रख देना। अम्माजी न देख लें कहीं?"

बस, देवर देवता साहों की तरह से बाजार गये और चोरों की तरह से दबे पाँव आकर मिठाई का दौना अलमारी में रखकर भाभी को इशारे से बता दिया। भाभी इधर-उधर बिल्ली की तरह लुकती-छिपती गईं; चुपचाप जाकर मिठाई चाटी, देवर का हिस्सा वहीं रखा और मुँह धोकर एक समझदार गृहणी की तरह सास से आकर लगीं पूछने, "अम्मा जी, दाल खाओगी या सब्जी, क्या बनाऊँ?"

इसीलिए जहाँ पर्दा और अविद्या जैसे सद्गुण देवरों के लिए बहुत

भाभी में आवश्यक है, वहाँ चटोरापन और भी जरूरी है—निहायत जरूरी।

किसी भाभी में इन सब गुणों का होना, सोने में सुगन्ध के समान होता है। इसलिए हे परमात्मा, खुदावन्द, रहीम-करीम, भविष्य में तुम ऐसी ही गुणों से भरपूर भाभियाँ बना-बनाकर देवरों को देते रहना और उनकी दुआएँ लेते रहना।

भाभियों के इस अलबेले संसार की आलोचना करते-करते कुमार की आँखें झप गईं।

सास जानकी तीर्थयात्रा पर काशी गई हुई थीं, और पति कम्पनी के काम से कलकत्ते। अतः राजरानी के दिन मुफ्त की खाने, मस्जिद में सोने वाले मुल्ला की तरह मौज से कट रहे थे। अपने और कुमार के लिए खाना बनाया—दिन भर छुट्टी! चली गयीं किसी पड़ौसिन से गप्पें हाँकने या स्वयं ही कुछ पड़ौसिनें अपने जिह्वा-व्यायाम के लिए वहाँ आ धमकीं। गप्प-सम्मेलन शुरू होता और लगातार प्रवाह गति से कांग्रेस के अधिवेशन की तरह चलता रहता।

दुर्भाग्य से यदि कोई पड़ौसिन न आ पाती या वही कहीं न जा पातीं तो दोनों देवर-भाभी ही काफी थे। बातों का सिलसिला जमता। न जमता तो बाजार की सैरगश्त को चल देते; किसी पार्क की घास अपने पैरों से खूँद आते या पहुँच जाते सिनेमा में। अभिप्राय यह कि राजरानी के दिन सोने के और रात चाँदी की तरह कट रही थीं।

आज भी ऐसा ही दिन था जब न किसी के घर राजरानी गई और न कोई राजरानी के घर आयी। अतः कुछ देर तक तो राजरानी

घरेलू कामों में उलझी रही, जब मन नहीं लगा तो उसने गीता के यहां जाने की ठहराई। कपड़े बदलकर जैसे ही राजरानी गीता के घर की ओर चली तैसे ही गीता आती दिखाई दी। राजरानी रुक गई।

"कहां की तैयारी है, जीजी? लगता तो ऐसा है कि बाजार की मटरगश्ती को जा रही हो या सिनेमा की शोभा बढ़ाने?" गीता ने हँस कर पूछा।

राजरानी बोली—"अरी, मैं तो तेरे घर की ओर ही आ रही थी। सोचा आज गीता के ही मेहमान बन चलकर?"

"स्वागत, एक नहीं दोनों। साथ ही यदि जेठजी आ गये हों तो उन्हें भी ले चलिये?"

"अभी ठेठ, सुस्ता लो फिर तब चलेंगे। आजकल तो हम तुम जैसी बहनों की ही तलाश में रहते हैं। कौन चौका-चूल्हा करे दो जनों के लिए गीता?"

"बात ठीक है जीजी, ऐसा करो, कुछ दिन के लिये तुम दोनों ही देवर-भाभी हमारे यहाँ चले चलो।"

राजरानी हँस पड़ी "लेकिन गीता दोनों ही निठल्लों को लिए जा रही हो। सोच लो यह मेहमान ऐसे नहीं जो तुम्हारा पैसा भर भी काम कर दें। साफ बात है—हम तो खायेंगे और लोट लगायेंगे। बोलो तैयार हो?"

"हाँ-हाँ, हम कब कहती हैं, तुम कुछ काम करो। काम के नाम पर दोनों में से एक भी कभी मत फोड़ना। और बोलो क्या चाहती हो?"

"तब मंजूर है चलेंगे। लेकिन, तुम्हारा दौरा आज कहाँ से आ रहा है?" राजरानी ने पूछा।

गीता बोली—"अपनी यात्रा बस आपके घर तक ही थी जीजी! परन्तु आपने नहीं बताया कि आपकी तैयारी कहाँ की थी और वह भी अकेले अकेले ही चुपचाप?"

"अपनी यात्रा भी तुम्हारे देवालय तक थी गीता?"

"लेकिन हमारा देवालय कहाँ है जानती हो ?" गीता ने मुस्करा कर पूछा।

राजरानी बोली—रहने दे कल की छोकरी, हम इतना भी नहीं जानते। समझ लो, वहीं जा रहे थे।"

"जाओ जी, तुम्हें रोकने वाले हाथ किसके पास हैं। आजकल मौज ही तुम्हारी है ?"

"कैसे गीता ?"

"सब तरह से सुखी हो बीदी। कमाऊ पति पाया है। सेवा के लिए आज्ञाकारी सेवक की तरह से देवर।"

"अच्छा तो यह बात है—मेरे देवर पर भी तेरी आँखें हैं। लेकिन गीता, देवर का पालना हाथी के पालने के बराबर होता है। यूं ही पराये पूत को नहीं पाला जाता। बड़े-बड़े नखरे बर्दाश्त करने पड़ते हैं देवर के ?"

गीता ने कहा—"अरे रहने दो जीजी, तुम देवर वाली हो, जो चाहे कहो। वरना तुम्हारा देवर हाथी घोड़ा कहाँ है। बेचरा सीधासाधा गऊ पुत्र है। बल्कि मैं तो कहूंगी, गऊ-पुत्र से भी कुछ कम ही है।"

"ले जाओ न, रस्सा पकड़ाये देती हूँ गऊ पुत्र का। खूब दाना-भूसा चराओ।"

गीता हँस पड़ी—"पहले यह तो बताओ आज उसे बांध किस स्थान पर रखा है—कहीं दिखाई ही नहीं देता ?" राजरानी ने कहा—"पास वाले कमरे में ही बंध रहा है—खोल लाऊँ ?"

गीता बोली—"तुम्हारा देवर तुम्हें मुबारिक बहन ! लेकिन जीजी एक बात तो मैं अवश्य कहूँगी कि यदि भगवान् किसी को लड़की बनायें और उस लड़की को किसी की पत्नी भी बनाये तो कृपा करके इतना सलूक उसके साथ अवश्य करदे कि जिस घर में उसे पत्नी बनाकर भेजें उस घर म दो चार छोकरे देवर बनाकर स्वागत के लिए पहिले ही भेज दे।"

गीता को रोकते हुए राजरानी ने कहा—"बाद में ही क्यों न भेज दे गीता, उसी में क्या हर्ज है। जैसी सूरत की बहू हुई, वैसी ही सूरत के देवर भेज दिये। दोनों में से किसी को एक दूसरे को चिढ़ाने की जरूरत ही न रहे।"

"कैसे भी भेजे दीदी, भेज दे जरूर। क्योंकि प्रत्येक पत्नी के लिए देवर भी उतना ही आवश्यक है, जितनी क्रीम की शीशी या पावडर का डिब्बा।

"पावडर का डिब्बा तो दीदी फिर भी कुछ मंहगा ही आता है, लेकिन देवर तो उससे भी सस्ता होता है। बिल्कुल बे—दाम का गुलाम ! रात-दिन का निःशुल्क।"

"बस बहुत ही यदि देवर की खातिरदारी की, तो इतना कर दिया कि उसके नाराज होने पर जरा उसकी तरफ टेढ़ी चितवन करके मुस्करा दिये ठीक है न दीदी—करती हो न ऐसा ही ? देवर देवता का चोला मगन हो जाता है।"

राजरानी हँस पड़ी। बोली—"हमें तो गीता न हँसने की जरूरत पड़ती है, न मुस्कराने की। इसलिए कि हमारा देवर तो यही नहीं जानता कि रूठा कैसे जाता है।"

"सिखा दिया होता किसी दिन रूठना भी उसे। तुम्हें तो बहुतेरा आता है ?"

"जरूरत ही नहीं पड़ती, क्यों नया रोग लगाया जाय उसे ?"

राजरानी की बात का उत्तर न देकर गीता बोलती रही—"जीजी, देवर भी हमारे समाज में कितना गरीब प्राणी होता है। इतना गरीब कि बेचारे की ओर देखकर बस मीठे-मीठे चार बोल बोल दो या जरा-सा मुस्करा दो -- फिर चाहे उससे जूतियाँ उठवा लो। उसे कोई ऐतराज नहीं, कोई इंकार नहीं, कोई गिला नहीं, कोई शिकवा-शिकायत नहीं। तब न वह बिगड़ता है, न रूठता है और न ही किसी और ऐसी भद्दी बात का प्रदर्शन करता है जिससे परिवार की शांति भंग हो।"

गीता कहती रही—"समाज के लिए-विशेषकर महिला समाज के लिये जितना उपयुक्त प्राणी देवर होता है, उतना दूसरा नहीं दीदी। बिना देवर हम जैसों की जिंदगी की गाड़ी तो एक दिन न चले। न पर्दा-न परहेज—जो मर्जी आये कहो। किसी पुरुष से नारी को यदि सब कुछ कहने का सामाजिक अधिकार प्राप्त है तो वह देवर ही है। देवर ही वह व्यक्ति है जो भाभी के लिए बहुत से कामों में भाई की कमी की भी पूर्ति करता है और सास की ड्यूटी भी बजाता है। सहेली का काम भी कर देता है और मनोरंजन के लिए...."

इतना कह कर गीता जैसे ही रुकी, राजरानी बोली—"रुक क्यों गयीं, कहो मनोरंजन के लिए पति का पद भी प्राप्त कर लेता है। या प्रेमी कहना चाहती थीं?"

"मैं रुक गयी तो तुमने बात पूरी कर दी। लेकिन, बात सच है दीदी! मुझे तो यह रिश्ता बहुत ही भाता है। देखो न घर का यह प्राणी नाराज बहुत ही कम होता है। खुदा-न खास्ता यदि उसका दिमाग कभी खराब हो भी जाय, तो न उसे पागलों के अस्पताल में ले जाने की जरूरत पड़ती है और न किसी दूसरे डाक्टर को दिखाने की। पतिदेव के इस छोटे भाई के आगे हाथ पैर जोड़ते हुए तो हमने आज तक एक भी बहू नहीं देखी।"

"और क्या देखा है? गीता आज तो तुम इस तरह बोल रही हो मानों कहीं 'देवर-पुराण' पढ़कर आई हो?"

गीता बोली—"वह पढ़ा तो नहीं दीदी, लेकिन लिखूँगी जरूर। जरा पहले मेरी पूरी बात तो सुन लो। हाँ, भला मैं क्या कह रही थी दीदी?" राजरानी ने बताया—"तू यह कह रही थी कि पति-देवता के छोटे भाई के आगे हाथ-पैर जोड़ते, हमने आज तक किसी बहू को कभी नहीं देखा।"

गीता बोली—"हाँ-हाँ दीदी! बस, यदि नाराज होकर देवर देवता कहीं पड़े हों तो थोड़ा सा गुद-गुदा दो। बैठा हो तो उसकी तरफ

देखकर थोड़ा सा मुँह बना दो। इतने से ही देवर देवता की तसल्ली हो जाती है—खुश हो जाते हैं और खुश होकर अपनी पुरानी नौकरी पर ईमानदार-वफादार नौकर की तरह दस्तबस्ता फिर हाजिर हो जाते हैं।"

"वाह-वाह, क्या कहने तुम्हारे अनुसंधान के गीता। लेकिन, यह तो बताओ तुमने देवर-चरित्र पढ़ा है, सुना है या देखा है।"। राजरानी ने पूछा।

गीता अपने प्रवाह में बहती रही—"पहले सुन तो लो दीदी, सुनने के बाद ही कुछ पूछना।"

राजरानी चुप हो गई। गीता की गाड़ी आगे बढ़ी—"बाजार से चाहे चाट मंगाकर खाओ या मिठाई मंगाकर खाओ। लाने वाला लाये खाने वाला खाये और मजा यह है कि दीवारों तक को भी पता न चले।

"मैं तो कई बार यही सोचा करती हूँ दीदी, जिन औरतों के पास देवर रूपी खिदमतगार नहीं होता, वह गरीब क्या करती होंगी। एक-एक पैसे की चाट के लिए तरसा करती होंगी। मेले तमाशों के लिये मन भटका करता होगा?"

"बात तो तू पते की कह रही है गीता?" राजरानी फिर टोक बैठी। गीता ने मुँह लटका कर कहा—"तुम उनकी पीर क्या जानो दीदी! उनकी पीर तो बेचारी वही जानती हैं जो घर में बैठी अकेली मक्खियां मारा करती हैं। सास हुई, मीठे-कड़वे बोल सुन लिये, वरना वह भी उनके कान में नहीं पड़ते।"

मुस्करा कर राजरानी ने पूछा—"आज विनोद से लड़ाई तो नहीं हो गई गीता, जो देवर की स्मृति सजग हो उठी है?"

"नहीं-नहीं दीदी, ऐसी बात नहीं है। वह लड़ना तो कतई जानते ही नहीं। भगवान् ने उन्हें लड़ने वाली चोंच ही नहीं दी।"

"फिर तुझे देवर की स्मृति ने कैसे सताया?"

गीता ने कहा—"वह तो बातों में बात आ गई इसलिये कह बैठी। लेकिन बात है सच यह मैं बार-बार कहूँगी।"

"तेरे हैं तो सही देवर। जैसा मेरा देवर, वैसा ही तेरा देवर। फिर देवर के लिये दुखी होने की क्या बात है गीता?"

"तभी तो मुझे देवर का अभाव नहीं खटकता दीदी। वरना मेरी गिनती भी उनमें ही हो जाती जिन बदनसीबों के पास देवर नहीं हैं।"

"नहीं-नहीं, तुम्हारी गिनती उनमें कभी नहीं होगी गीता। विश्वास रखो, कुमार तो तुम्हें मुझसे भी अधिक मानता है।"

"हाँ दीदी, यह बात तो है। बड़ा सीधा लड़का है। किसी भी काम को इन्कार करना तो कतई जानता ही नहीं। कभी गर्दन उठाकर चलना नहीं सीखा। एक बात कहूं दीदी कुछ सोचकर गीता ने पूछा।

आश्चर्य की मुद्रा में राजरानी ने गीता की ओर देखा—"क्यों गीता, क्या तुझे भी किसी बात के लिये मेरी स्वीकृति की आवश्यकता पड़ गई?"

"हाँ कुछ बात ऐसी ही है दीदी।" इतना कह कर गीता फिर चुप हो गई। राजरानी बोली—"पहेली न बुझा, जो कहना है वह कह दे न!"

"अच्छा बताओ दीदी, तुम कुमार की शादी कब करोगी?"

गीता की बात सुनकर राजरानी हँस पड़ी। बोली—"भला गीता यह भी मुझसे पूछने की बात है, जब तू कहे कर दें!"

"नहीं दीदी, यह तो तुम्हारी महानता की बात है। लेकिन मैं दिल्लगी में नहीं पूछ रही।"

"मिठाई खाने को जी चाह रहा है क्या?"

"हाँ और क्या? दूसरे ऐसे शुभ काम तो जितनी जल्दी हो जायें अच्छे।"

"लेकिन गीता, मुझसे पहले तो यह जिम्मेदारी उसके भाई की है। जब मुनासिब समझें करदे।"

"गलत बात है दीदी,—यह जिम्मेदारी तुम्हारी है।"

"मेरी कैसे गीता ?"

"इसलिये कि ऐसी बातों को हम लोग ही उनसे ज्यादा समझ सकते हैं। दूसरे बड़े आदमियों को इतनी फुर्सत कहां मिल पाती है कि वह यह सब कुछ जल्दी अनुभव कर सकें।"

राजरानी कुछ देर तक मौन रही। फिर कुछ सोचकर बोली—"लेकिन गीता उसकी ओर से भी तो कुछ ऐसी इच्छा प्रकट होती अभी नजर नहीं आ रही। अलबत्ता तुझ पर कभी प्रकट कर बैठा हो तो बता ?"

"नहीं-नहीं दीदी, वह तो बहुत ही सीधा-साधा लड़का है। फिर दीदी एक बात और भी है—वह यह कि जितने घुन्ने लड़के होते हैं, उनके दिल की थाह विष्णु भगवान् भी नहीं लगा पाते।"

"अच्छा गीता, इसके भाई के आने पर जिक्र करूँगी। वैसे दो-तीन जगह देख भी रही हूँ।" राजरानी कहकर चुप हो गयी।

राजरानी के इस कथन से गीता को एक झटका-सा लगा। संभल कर बोली—"आज मैं आपसे एक चीज मांगने आई हूँ, लेकिन भेद न खुले तो मांगू—बोलो ?"

राजरानी बोली—"घरबार तेरा, हम तेरे सब कुछ तेरा। जो तेरी मर्जी आये ले जा। मांगने की क्या जरूरत है री ! आज तू बातें कैसी पराये सी कर रही है ?"

"इंकार तो नहीं करोगी, सोच लो दीदी ?"

"सोच लिया—तू कह भी।"

"तो मैंने कुमार मांग लिया दीदी। कुमार अब हमारा हुआ। बोलो ?"

"कुमार ?"

"हाँ दीदी, अपनी छोटी बहन नीता के लिए कुमार को ही चुन लिया है। तुमसे माँगती हूँ। जैसे भी हम हैं, तुम्हारे हैं।"

राजरानी को चुप देखकर गीता फिर बोली--"क्यों दीदी, चुप क्यों रह गयीं। कहीं जबान दे बैठी हो क्या ?"

राजरानी ने कहा—"नहीं गीता, ऐसी बात तो नहीं है। लेकिन मेरी 'हाँ' से पहले उनकी 'हाँ' जरूरी है और उनकी से भी पहले कुमार की जरूरी है। मैं उनके आने पर जिक्र करूँगी।

"तुम तैयार हो जाओ। हमारे वे' भी उनसे बातें करेंगे। मुझ से भी उन्होंने कई बार कहा कि कुमार की भाभी से जिक्र करना। इसलिए अच्छा है, हमारा देवर हमारा ही बना रहे, सदा के लिए जीजी।"

"तरकीब तो ठीक सोची है गीता तूने। यूँ देवर हाथ न लगा तो यूँ सही। देवर का देवर'''बहनोई, का बहनोई डबल रिश्ता हो गया।"

तुम से भी तो डबल ही हो जाएगा दीदी। ईश्वर करे हमारे यह संबंध रोज पक्के होते जायें।

"अच्छा-अच्छा, मैं उनसे जिक्र अवश्य करूँगी तू निश्चिंत रह।"

"एक काम और था दीदी।" कुछ सोच कर गीत बोली—"कल मेरा व्रत का दिन है उन्हें तो छुट्टी मिलती ही नहीं, जरा दोपहर को कुमार को भेज देना, हमें मन्दिर ले जाकर देव-दर्शन करा लाये।"

"भेज दूँगी।"

नमस्ते कर के गीता चली गई। राजरानी अपने विचारों में डूब गई। वह सोचने लगी—"वास्तव में देवर का रिश्ता है तो ला-जवाब। जिन बेचारियों के पास देवर नहीं, वह कैसी छटपटाती फिरती हैं।"

राजरानी सोचती रही—"यदि आज मैं भी अकेली ही होती और अकेली ही इस घर में रहती तो......?" राजरानी काँप गई—"हे भगवान् ऐसा कभी न करना—किसी दुश्मन के साथ भी न करना। मैं आज निश्चिंत हूँ तो केवल अपने देवर की बदौलत। घर में अम्माजी

नहीं, 'वे' नहीं देवर है—कोई चिन्ता नहीं।"

सोचते-सोचते राजरानी की विचारधारा कुमार की ओर मुड़ गई—"कितना सीधा-शर्मीला लड़का है। जहाँ खड़ा कर दिया, खड़ा रहा। बैठने को कहा—बैठ गया। दौड़ने को कहा दौड़ पड़ा।

"दुनिया क्या है, कहाँ है—उसे कुछ खबर नहीं। खबर है तो केवल इतनी—भाभी जी कुछ पैसे न दे दोगी ! भाई साहब ने जो दिये थे, उनकी एक किताब ले आया। इसके आगे कुछ जानता ही नहीं। क्या मजाल अपने भाई के आगे मुँह खोल ले। उनके आते ही घर में ऐसा गायब हो जाता है, मानो घर में है ही नहीं। हमेशा चेहरे पर वही बच्चों जैसा भोलापन छाया रहता है। इतने पर भी गीता कहती है शादी कर दो। भला यह बेचारा अभी क्या जाने, शादी किसे कहते हैं और बच्चे किस पेड़ पर लगते हैं ?

"अभी तो कुम्भकरण से शर्त लगा कर जनाब सोते हैं और भाई की डाँट पड़ती है तो विधवा की तरह बिलख-बिलख कर रोने बैठ जाते हैं। हजारों में ही नहीं लाखों में एक लड़का है। ऐसा देवर भी भगवान् किसी पुण्य के प्रताप से ही किसी नारी को देते हैं। अन्यथा आजकल देवर-भाभी के रिश्ते तो चूहे-बिल्ली के रिश्तों को भी मात करने लगे हैं। खाने के लिये जो सामने रख दो—खा लेगा। उसे यही पता नहीं कि दाल में नमक ज्यादा है या सब्जी में कतई है ही नहीं। सच्चे वीतराग सन्यासी की तरह भोजन को प्रसाद मानकर ग्रहण करता है। उसकी इतनी भलमनसाहत से तो कभी-कभी मुझे भी उल्टे परेशानी में पड़ना पड़ जाता है।"

राजरानी का दिल कुमार की ममता से भर गया। सोचने लगी—"आज पता नहीं क्या मामला है। जब से कमरे में आकर पड़ा है, करवट तक नहीं ली। मालूम होता है जेब का दिवाला निकल चुका है, इसलिए कुटिया और खटिया का आश्रय ही ले लिया है। वरना जब तक जेब में पैसे होते हैं, तब तक चैन कहाँ—चलती हो भाभी सिनेमा देखने,

चलो बाजार में चलकर दहीबड़े खायें जायें—या यहीं ले आऊँ ? गरज यह है कि जब तक पैसे रहते हैं, तब तक उसके नये-नये प्रोग्राम बनते-बिगड़ते रहते हैं। जिस दिन पैसे नहीं होते, साफ पता चल जाता है कि आज महोदय कंगाल बैंक के साहूकार हैं—जिन्हें इमदाद की सख्त दरकार है।

"देखूँ तो चल कर जनाब का हुलिया किस दशा में है ?" कहकर राजरानी जैसे ही उठी तैसे ही—

"भाभी जी नमस्ते !"

"अच्छा विनोद जी हैं, आओ भइये।" कहकर राजरानी बैठ गई।

"बैठा भाभी।" कहकर विनोद भी बैठ गया।

"विनोद के बैठने पर राजरानी ने पूछा—"कहाँ से डोली आ रही है लल्ला ?"

"डोली ?" विनोद हँस पड़ा। बोला—"डोली की बजाय भाभी यदि डोला भी कह देतीं, तब भी बात बन जाती। डोली में तो महज औरतें ही बैठा करती हैं। डोले में पति-पत्नी दोनों तो बैठ सकते हैं।"

"अच्छा-अच्छा, डोला ही सही। लेकिन कहाँ से आ रहा है डोला तुम्हारा और आगे कहाँ जाने का इरादा है ?"

"बस भाभी आपके दर्शन करने ही आया था। सोचा भाभी के दर्शन भी करता आऊँगा और भाई साहब का भी पता लेता आऊँगा कलकत्ते से आये या नहीं।"

"यूँ कहो कहीं जा रहे थे, रास्ते में हमारा घर पड़ा। सोचा होगा चलो होते चलें यहाँ भी ?"

"नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं भाभी ! मैं तो केवल आया ही तुम्हारी राजी-खुशी लेने था।"

"कहाँ से ?" राजरानी ने फिर पूछा।

"घर से।"

"गलत बात है। भला मैं कैसे मान सकती हूं। अरे, अगर तुम घर

से आते तो दोनों जने साथ आते। गीता तो अभी यहाँ से उठ कर गई है।

"वह आई थी यहाँ ?" विनोद ने इस तरह पूछा जैसे कोई आश्चर्यजनक बात सुनी हो। राजरानी बोली—"क्यों, आजकल मियाँ-बीवी की खटपट हो रही है क्या ?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं। लड़ना तो भाभी उसने कभी सीखा ही नहीं।"

"जी हाँ, दुनियाँ में बस तुम दो ही तो शरीफ हो। तुम और तुम्हारी बीवी।"

"बिलकुल ठीक बात है भाभी !"

"अगर हम लड़ाई करा दें तो ?" राजरानी ने पूछा।

"तुम क्या 'सेई' का काँटा रख आओगी हमारे घर में ?"

"सेई का काँटा रखें या समूची सेई ही रख आयें, यह सोचना तो हमारा काम है।"

"अच्छा भाभी, तुम सेई नहीं—शेरनी रख आओ, हमारी लड़ाई होने से रही उल्टे, तुम हार जाओगी।"

"शर्त मत लगाओ विनोद, ऐसा न हो बिस्तरे बंध जायें। यह हमारे बाएं हाथ का काम है।"

"तुम दाहिना हाथ भी लगा लेना—परन्तु हार ही खानी पड़ेगी भाभी।"

"अच्छी बात है, चौकस रहना।" राजरानी के बात लग गई विनोद बोला—"बेशक, कोशिश करके देख लो। लेकिन भाभी आज कुमार नहीं दिखाई देता—न कई दिन से हमारे घर ही आता है ?"

राजरानी बोली—"मैं अकेली हूं न, इसलिए बाहर कम ही जाता है।"

विनोद हँस पड़ा। हँसमुख गया—"यूँ कहो कि तुम्हारी सुरक्षा के लिए पहरा लगाए रहता है ?"

राजरानी झेंप गई। बोली—"सुरक्षा तो नहीं, लेकिन अकेले मेरा जी भी तो नहीं लगता।"

"आज कहीं भेजा है क्या ?" विनोद ने फिर पूछा।

"नहीं, आज वह आरामगाह में है। कई घण्टे हो गए सोते हुए।

"हाँ, हजरत्ते दाग जहाँ बैठ गये बैठ गये—लेट गये—लेट गये। बड़ी मस्त आदत का छोकरा है यह भाभी।"

"इस उमर में सबकी आदत ही ऐसी होती है लल्ला ! कभी तुम भी इसी तरह लापरवाह रहे होओगे ?"

"हां भाभी, वह दिन अब याद आते हैं—लौटकर नहीं आयेंगे।" कुछ रुककर विनोद फिर बोला—"कल हमारे घर भेज देना। उसकी भाभी व्रत रखेगी। मन्दिर लिवा जाय, देव दर्शन करा लाये।"

"भेज दूँगी।"

"राजरानी को नमस्ते करके विनोद बाहर चला और राजरानी उठकर कुमार के कमरे की ओर चली।

कुमार के कमरे के बाहर जाकर राजरानी ने आवाज दी—"क्यों लल्ला, क्या हो रहा है ?" "जवाब नहीं आया।

राजरानी समझ गई कि कुमार सो रहा है। अतः उसने दरवाजा थपथपाना शुरू किया। बोली—"छोटे बाबू, अरे उठोगे भी या नहीं दिन तो ढलने लगा ?"

कई आवाजों के बाद आंखे मलते हुए कुमार उठा। दरवाजा खोला। बोला—"जरा नींद आ गई थी भाभी !"

राजरानी बोली—"जरा नींद कैसी—तुम तो आज ऐसे सोये, जैसे गधे बेचकर कुम्हार सोता है।"

राजरानी की इस सुन्दर उपमा से कुमार खिलखिला पड़ा। हँसते-हँसते बोला—"गधे तो बेचकर नहीं भाभी, अलबत्ता दो-चार किताबें बेचकर जरूर सोया था। सोचा, भाई साहब तो हैं नहीं, मुफलिसी की दशा है, वैसी ही दशा आपकी भी होगी, कुछ मांगना बेकार है आपसे भी।"

"अच्छा, बोलो आज कहाँ का प्रोग्राम है?" राजरानी ने सामने की कुर्सी पर बैठते हुए पूछा। कुमार बोला—"भाभी, प्रोग्राम तो कोई बनता दिखाई देता नहीं। किताबों की बिक्री के कुल दो रुपये पाँच आने मिले हैं। यदि सवा-सवा रुपये के सिनेमा के टिकट लिए, तब भी ढाई रुपये होते हैं—तीन आने कहाँ से आएंगे भाभी?"

आश्चर्य से राजरानी ने पूछा—"अरे तो मुफलिसी की नौबत यहाँ तक आ गई है कि तीन आने की औकात भी नहीं रही तुम्हारी?"

कुमार बोला—"तुम तो भाभी ऐसे कह रही हो गोया मेरी भी कहीं से पेंशन आती हो या कोई फर्म चल रही हो। तुम तीन आने की बात कह रही हो, यहाँ तीन पैसे भी फालतू नहीं।"

"सच?" राजरानी ने पूछा। कुमार ने कहा—"तुम्हीं सोचो भाभी, पैसा आये तो कहाँ से आये। भाई साहब यहाँ हैं नहीं, माता जी भी नहीं और यजमानों का यह हाल है कि कुछ पूछिये ही मत। लगता है उन्होंने कथा-कीर्तन तो सारे छोड़ ही दिए हैं, साथ ही अपने पुरोहित को भी भूल गए हैं।"

"मैं कुछ नहीं समझी।" राजरानी कुमार की ओर देखकर बोली।

कुमार ने कहा—"बात यह है भाभी, अपनी तुम तीन भाभियाँ हो, यानी यूँ समझो कि मेरे तुम तीन यजमान हो। सो तुम्हारी ओर से तो छुट्टी सी ही है। रही शीला भाभी, दो-तीन दिन से उनके यहाँ भी मेरा जाना नहीं हुआ और कान्ता भाभी ने भी याद नहीं किया।

तब दक्षिणा आए तो कहाँ से आये ?"

"कहीं ऐसा तो नहीं है पुरोहितजी कि तुम्हारे यजमानों का भी दिवाला खिसक रहा हो ?"

"लगता तो मुझे भी कुछ भाभी ऐसा ही है।"

"लेकिन, तुम्हारा एक यजमान तो काफी मालदार है लल्ला ?"

"कौन-सा भाभी ?"

"वही कान्ता, है न मालदार ?"

"हाँ भाभी, है तो मालदार लेकिन पुरोहितजी का उसके यहाँ भी दो-तीन दिन से जाना नहीं हुआ और यजमान ऐसा है नहीं जो दक्षिणा घर पर ही पहुँचा दे।"

"तब कैसे हो—प्रोग्राम कैंसिल ?"

"बस भाभी, कैंसिल ही समझो। दो रुपये पाँच आने हैं। इनमें से दो रुपये की तो मिठाई उड़ाओ और चार आने का नमकीन ले आता हूं, बस हो गई तफरीह। या ऐसा करो थोड़ी-सी रद्दी और निकाल दो—लाओ लगे हाथ उसके भी पैसे कर लाऊँ। सिनेमा का प्रोग्राम तो तभी बन सकता है।"

राजरानी बोली—"अच्छा सिनेमा कल देखा जायगा। क्या पता कोई तुम्हारा यजमान ही पसीज जाय ?"

कुछ याद-सा करके राजरानी फिर बोली—"अरे हाँ, तुम्हारा एक यजमान तो अभी-अभी गया है हमारे यहाँ से।"

"कौनसा ? क्या कान्ता भाभी ?"

"नहीं-नहीं, गीता आई थी।"

"क्या कहती थी ?"

"कह गई है कि कल कुमार को भेज देना, जरा मन्दिर के दर्शन करा लाये।"

"तब तो बन गया काम भाभी ; दो-चार रुपये तो अपने कहीं गए

ही नहीं, ज्यादा मिल जाये हमारी-तुम्हारी तकदीर ।"

"मेरे तो मन में एक बात आती है लल्ला ।"

"क्या भाभी ?"

"क्यों न हम तुम्हें किराये पर देना शुरू कर दें ।"

'बात तो ठीक है भाभी ; चार-छः रुपये तो आ ही जाया करेंगे ।"

"और क्या—किसी का साग—सब्जी ला दिया, किसी को बाजार घुमा लाये—किसी को मन्दिर दिखा लाए ।"

"सब काम कर लूँगा भाभी, तुम इस नई बिजनिस को जरा शुरू तो करो । फिर देखो आमदनी ही आमदनी है ।"

"अच्छी बात है, अब तो तुम इसी खुशी में एक रुपये की मिठाई ले आओ और बकाया रकम—एक रुपया पाँच आने मेरे खजाने में जमा करो ।"

जब लाला खैरातीलाल की बारहवीं पत्नी तारा भी लालाजी को रोता-धोता छोड़कर परमधाम सिधारी, तब कुछ दिन तक तो लालाजी बहुत दुखी रहे । कई बार शादी न करने की खुली घोषणाएँ भी कीं । लेकिन, कुछ लोगों ने जब उनकी जवानी के गीत गाये, तब वृद्ध लालाजी सचमुच ही अपने को जवान मानकर एक सत्रह वर्षीय लड़की को सत्रह हजार में समाज के लात मारकर ब्याह लाये ।

लालाजी अपनी स्थिति को न समझते हों—ऐसी बात नहीं थी । अतः उन्होंने अपनी शारीरिक स्थिति संभालने के लिये विभिन्न उपाय करने आरम्भ किये ।

उनकी बैठक में रखी एक अलमारी उनका बुढ़ापा दूर करने की प्रयोगशाला बनी। इस प्रयोगशाला में जगत्-विख्यात च्यवन ऋषि द्वारा आविष्कृत बुढ़ापा भगाऊ-चटनी-च्यवनप्राश, बालों को तीन दिन जवान रखने वाला खिजाब, चेहरे की झुर्रियां दूर करने की घोषणा करने वाली क्रीम, आँखों को नई रोशनी देने वाला अंजन, नकली दाँतों के दो जबाड़े और आँखें धोने के लिये त्रिफला तथा कमर-कमान को शहतीर की तरह सीधा रखने के लिये वंग और फौलाद-भस्म तथा टांगों की मालिश के लिये विषगर्भ तेल की बोतलें वहाँ लाकर रख दी गयी थीं।

अपनी इस रसायनशाला को लालाजी उस समय खोलते थे, जब यह देख लेते थे कि कान्ता की आँखों पर ताला पड़ चुका है और अब वह खैराती-भवन में न होकर स्वप्न-लोक में विहार कर रही है।

तब लालाजी धीरे से अलमारी खोलते, दो-तीन तोले चटनी चाटते, बाद में बुरुश लेकर वृद्ध बालों को जवान करते। उसके बाद आँखों में अंजन डालकर दो रत्ती बंग-भस्म या फौलाद-भस्म शहद में मिलाकर चाटते और तारे गिनते-गिनते सो जाते।

सवेरे कान्ता के जगने से पहिले उठते, त्रिफले के पानी से आँखें धोते और न्हा-धोकर "त्वमेव: माताश्च: पिता त्वमेव: ।" का जाप आरम्भ कर देते। संक्षेप में लालाजी की यही दिनचर्या थी। परन्तु इतने पर भी उन्हें जवानी वापस आने का कोई लक्षण जब दिखाई नहीं दिया, तब उन्होंने अपने साथ-साथ कान्ता की पवित्रता पर भी ध्यान देना शुरू कर दिया।

पर्दा-प्रथा के तो लालाजी पहले से ही प्रेमी थे। अब उन्होंने चारों तरफ की चहारदीवारी को और ऊँचा करा दिया ताकि यह प्रिय-प्रथा पूर्णता को प्राप्त हो जाय। बाजार जाने की कान्ता को कभी आज्ञा थी ही नहीं। लेकिन, मंदिर जाने की पूरी छूट थी। बल्कि मंदिर जाने का

सुझाव स्वयं लालाजी का ही था। कहते थे कि इससे आँखें और आत्मा दोनों तृप्त होते है। पर जब कान्ता ने आत्मा और आँखों को जल्दी-जल्दी तृप्त करना शुरू किया, तब लालाजी के हृदय का आसन हिला। अतः एक दिन वे कान्ता से बोले—"मेरी राय में तो जी, यह मंदिर-मंदिर का टंटा बेकार है।"

"क्यों लालाजी ?" कान्ता ने आश्चर्य से पूछा। लालाजी ने कहा—"भगवान् का मन्दिर तो हमारा दिल है। वह तो घट-घट के वासी हैं। इसलिए उन्हें तो हृदय में ही तलाश करना चाहिये, मन्दिर में क्या रखा है ? खाली पत्थर के टुकड़े है वहां तो !"

"फिर इतनी दुनिया मन्दिर में क्यों जाती है ?" कान्ता की जिज्ञासा जगी। लालाजी ने समाधान किया—" बावली है।"

इतने ही वाद-विवाद से लालाजी समझ गये कि कान्ता को मन्दिर का चस्का लग गया है और कान्ता समझ गई कि लालाजी की इच्छा अब मुझे मन्दिर जाने देने की भी नहीं है। अतः रूखे स्वर में बोली—"आखिर इस चहारदीवारी में कब तक पड़ी रहूं मैं लालाजी ?"

लाला जी का माथा ठनका। बोले—"अरे नारी का देश तो है ही घर। सारे ऋषि मुनि यही बता गये हैं। लेकिन तुम औरतों की समझ में कभी खाक नहीं आया।"

कान्ता ने रूठते हुए कहा—"तुम क्या जानों। जरा एक दिन घर में रहकर देखो तो पता चले। इतना तक भी नहीं होता कि एक नौकर या नौकरानी ही रख दो—बाजार से साग-पात तो ले आया करे समय पर ?"

लालाजी गम्भीर होकर बोले—"बात यह है जी, इस देश में जल्दी ही समाजवाद आने वाला है। समझीं न मेरा मतलब—यानी हर आदमी को अपना काम अपने हाथ से ही करना होगा। इसलिये अभी से ही अभ्यास अच्छा है।"

कान्ता ने पूछा—"तब तो लालाजी मुझे अभी से ही बाजार-हाट

जाने की आदत डाल लेनी चाहिये ?"

"नहीं-नहीं, यह काम तो तब भी मैं ही कर दिया करूँगा। तुम तो घर में बैठी मौज करे जाओ।"

"लेकिन, सवाल तो यह है अब क्या हो ? इतने तो कोई नौकर रख लो।"

"तुम तो पागल हो कान्ता। हर वक्त नौकर-नौकर ही चिल्लाती रहती हो। अरे, चार-पैसे बचाने चाहियें, पता नहीं किस दिन काम आयें तुम्हारे ?"

"तब साग-सब्जी कौन लाये। बाजार की दूसरी चीजें कौन लाये ?"

कुछ सोच कर लालाजी बोले—"अरे उसी छोकरे से मंगा लिया करो न, वह है तो राजेन्दर का भाई।"

"तुम भी लालाजी कैसी बातें कहते हो—पराया पूत है। उस पर हमारा क्या जोर है ? किसी दिन आया, आ गया। न आया, न आया उसकी भाभी की मर्जी भेजे न भेजे।"

लालाजी बोले—"अरे, ऐसे लौंडों से काम लेना भी क्या मुश्किल है। एक चवन्नी हाथ पर रख दो—जो चाहे करा लो। जानती नहीं आजकल के लड़के कितने चटोर होते हैं। जहाँ उन्हें जरा-सा चटाया—आगे-पीछे लग लिये।"

कुछ रुक कर लालाजी फिर बोले—"अरे मैं कहता जाऊँगा उसके घर कि दिन में एक बार हो जाया करे हमारे घर।"

यह कह कर लालाजी जैसे ही चलने को उठे, वैसे ही कान्ता ने उठकर लालाजी का हाथ पकड़ लिया—"आज जरा दूकान से जल्दी ही आ जाना सेठजी।"

आशा के विपरीत कान्ता का मृदु व्यवहार देख कर लालाजी भौंचक्के हो गये। बोले—"जी नहीं लगता है क्या तुम्हारा अकेले ?"

कान्ता ने उसी स्वर में कहा—"आपको पता नहीं, आजकल जमुना

में बाढ़ आ रही है। उसे हमें भी दिखा लाना। सारी गली की औ जा रही हैं ?"

लालाजी ने कहा—"अरे, इतने से काम को मुझे काहे को परेशान करती हो रानी ! उसी छोकरे को ले जाना। दे देना एक अठन्नी उसे आज।"

लालाजी यह कहकर चल दिये। कान्ता ने त्यौरियाँ चढ़ाकर दाँत पीसे और अपने कमरे में जाकर पलंग पर पड़ रही। बोली—"बुला लाना उस छोकरे को। बात-बात में यही जबाब। मैं भी यही चाहती हूं, यह छोकरा दिन भर यहीं बैठा रहे मेरे पास। मुझे तुम्हारी आवश्यकता है भी नहीं।"

कान्ता बुदबुदाती रही—"कहाँ यह बुड्ढा बन्दर, कहाँ यह गोरा-चिट्टा कुमार ! यह पास भी आकर बैठता है तो मेरे शरीर में आग लग जाती है। लगता है जैसे बाबा बैठा हो। पैसे के बल पर इसने मेरी जिन्दगी बर्बाद की, समाज की आँखों पर पट्टी बाँधी। लेकिन कब तक ? पैसे के बल पर आत्मा नहीं जीती जा सकती, दिल नहीं खरीदे जा सकते—हाँ जलाये जरूर जा सकते हैं। परन्तु याद रखो, एक दिन इन जले हृदयों की चिनगारियाँ तुम्हारे सारे समाज को जलाकर खाक कर देंगी। और उसके बाद समाज में किसी भी कान्ता से कोई बुड्ढा खैराती शादी नहीं कर सकेगा।"

कान्ता के ओठों पर कम्पन आ गया। उसकी आँखों में मोम-बत्तियाँ जल उठीं—"चलते हैं मुझे उपदेश देने, धर्मकर्म के आचरण समझाने और खुद बुड्ढे बकरे की तरह रात भर खों-खों करते हैं।"

लाला खैरातीलाल को श्रद्धांजलियाँ अर्पित करने के बाद कान्ता का ध्यान फिर कुमार की ओर गया—"कैसा सजीला छोरा है ?" कान्ता ने आँखें बन्द कर लीं—"लेकिन, अनाड़ी, कुछ नहीं जानता; कुछ नहीं समझता। उसे कैसे कोई कुछ समझाये। कैसे कुछ बताये। सिवाय बातें बनाने के और तो उसे कुछ आता ही नहीं।" ..

"लालाजी कहते हैं चवन्नी दे दिया करूँ। यह नहीं जानते पाँच-पाँच रुपये तक उसकी जेब में जबर्दस्ती खोंस देती हूँ। पर इतने पर भी कुछ नहीं समझता।

"उसके आने पर मेरा कैसा मन लगता है—यह मैं ही जानती हूँ। राजरानी से मिलने का तो बहाना है, मैं तो उसके घर जाती ही उसे देखने हूं।"

कुछ देर बाद कान्ता उठी। कपड़े बदले और राजरानी के घर की ओर चल दी।

कान्ता जिस समय राजरानी के घर पहुँची; उस समय राजरानी खाना बना रही थी। अतः बैठक में न बैठकर कान्ता सीधे रसोईघर में ही पहुँच गई। बोली—"जीजी, हम भी आ गये हैं, आटा थोड़ा गूँदा हो तो और तैयार कर लो।"

राजरानी ने हँसकर कहा—"हम तो रोज ही तुम्हारे नाम का भी गूँद लेते हैं, लेकिन तुम आती ही नहीं।"

"तब हमारा हिस्सा कौन खा जाता है ?"

"तुम्हारा हिस्सा खाने वाला भी है हमारे पास।"

"कौन है जरा नाम तो सुनें।"

"नाम तो तुम जानती ही हो।"

"शायद कुमार को कह रही हो।"

"और किस में इतनी हिम्मत है। तुम लोगों का हिस्सा तो उसे ही हजम करना आता है।"

"हां जीजी, बड़ा अच्छा लड़का है। भगवान् ऐसा देवर तो हर किसी को दे। मुझे तो इस मामले पर सच पूछो तो तुमसे ईर्ष्या होती है।"

"इसमें ईर्ष्या की क्या बात है कान्ता, उसे अब तू ले जा। इतने दिन हमने रखा, अब तू रख ले।"

"कह ही रही हो, जब ले जाऊँगी तो दांत दिखाने लगोगी। इतना तक तो करती नहीं कि दिन में एकाध बार भेजकर यह भी पुछवा लिया करो कि लल्ला जरा देख आ कान्ता मरती है या जीती है?"

राजरानी का दिल दया से भर गया। बोली—"ऐसी बात नहीं कान्ता! बात यह है कि वे घर नहीं, अम्माजी घर नहीं, यह भी चला जाय तो मैं अकेली रह जाऊँ। अकेले मेरा दिल भी नहीं लगता।"

"हां जी, तुम्हारा दिल अकेले क्यों, लगे। तुम्हें तो दिल लगाने के लिए कोई न कोई चाहिये ही।" कान्ता ने व्यंग्य कसा।

कान्ता कटाक्ष कर गई। राजरानी हँस पड़ी। बोली—"तुम्हें ही कौन मना करता है। तुम भी लगा लिया करो। कल से रोज भेज दिया करूँगी, चाहे जितना दिल लगाना।"

"तब तुम क्या करोगी जी?"

"अजी तुम हमारी बात छोड़ो—पहले अपना दिल लगाओ।"

"सच जीजी, उस चहारदीवारी में पड़े-पड़े तो मैं मर जाती हूं भगवान् से तो यह भी नहीं हुआ कि जो मन बहलाने के लिए एक देवर ही दे देता।"

राजरानी बोली—"हां कान्ता, वास्तव में इन बातों के लिए तो देवर उपयोगी जीव है।" कान्ता ने तुरन्त जवाब दिया—"जीजी, उपयोगी ही नहीं, अत्यन्त आवश्यक। देवर हो तो हँस बोलकर वक्त तो कट जाय। वह तो रात को आते हैं और खाना खाते ही मुर्दों से खर्राटे लगा लेते हैं।"

"हाँ-हाँ, यह तो मैं जानती हूँ कान्ता !—घर में कोई हो तो आदमी का समय तो कट जाया करे। मेरी राय में तो तू फिर पढ़ना शुरू कर दे।"

"पढ़ूं किससे, वह तो साग-सब्जी के लिए भी नौकर रखने को तैयार नहीं।"

"गर्मियों की छुट्टियों में तो कुमार पढ़ा ही दिया करेगा, आगे फिर देखा जायगा।"

"हाँ, लालाजी से कहूँगी। लेकिन जीजी, तुम्हारा देवर भी है देवता आदमी—बिलकुल सीधा साधा।"

"यानी गधा ?" राजरानी हंस पड़ी। कान्ता बोली—"गधा तो नहीं, अलबत्ता थोड़ा मूर्ख कह सकती हो। मेरा मतलब यह है कि जरा बात को समझता कम है।"

"यह उमर ही ऐसी होती है कान्ता। इस उमर में सभी ऐसे होते हैं। लेकिन तुम्हारी तो वह रात दिन तारीफ ही करता है।"

तारीफ शब्द से कान्ता चौंक गई। बोली—"सच बताना जीजी, क्या कहता रहता है ?"

"बस यही कि सेठानी भाभी बड़ी अच्छी हैं !"

"सच ?"

"हाँ-हाँ, तेरे सर की कसम। सबसे ज्यादा तारीफ तेरी ही करता है।"

कान्ता के चेहरे पर एक नया उल्लास आया। आँखों में एक नई चमक आई। परन्तु दिल का भाव दबाकर बोली—"मैं देती ही क्या हूँ बेचारे को। बस यही, कभी दो-चार आने पैसे चाट खाने को दे दिए।"

"यह तो तुम जानो या वह जाने। हमने तो महज यह बात बता दी है—जो वह कहता रहता है।"

कान्ता ने बात को नया मोड़ देकर कहा—"जीजी, यह देवर भी बड़े अजीब होते हैं। कोई बात इनके मन की कर दो, मन की कह दो, खुश हो जाते हैं। वरना, न तू मेरी भाभी, न मैं तेरा देवर। इसलिए इनसे चौकस ही रहना पड़ता है।"

"कभी आई है क्या ऐसी नौबत ?"

"अभी तो नहीं आई। लेकिन, तुम्हारे यहाँ तो आती ही रहती होगी ?"

"ना-ना, आज तक नहीं आई।"

"तब कोई खास जादू जानती होओगी जीजी ?"

"और क्या यूँ ही देवर पाले जाते हैं।"

"हमें भी सिखादो ऐसा जादू जिससे देवर पाले जाते हैं ?"

"यह सिखाया नहीं जाता कान्ता ! वह तो हर औरत अपने-अपने ढंग से आविष्कार किया करती है।"

"हमें क्या पता था जीजी यह बात भी है ?"

"अब पता चल गया ?"

"हाँ, अब तो चल गया।"

"क्या चल गया ?"

"यही कि तुम देवर-भाभी की खूब घुटती है।"

"अरे हमारा देवर है घुटे या छने। तुम्हें जलन क्यों होती है ?"

"हमें जलन क्यों होती जीजी, हम तो चाहते हैं तुम्हारी तरह सब की इसी तरह घुटे—इसी तरह छने और अगर हमें दूसरे जन्म में भी ईश्वर औरत ही बनाये तो एक देवर हमें भी जरूर दे दे भगवान् !" कान्ताआगे बोली—"लेकिन, पहले यह तो बताओ आज किसका संकट-हरण करने के लिए भेज रखा है—दिखाई नहीं देता ?"

राजरानी ने कहा—"कल गीता आई थी। आज उसका व्रत है, मन्दिर साथ ले चलने के लिए कल ही कह गई थी। अतः उसे देव-दर्शन कराने गया है।"

कान्ता को बहुत बुरा लगा—"अच्छा, देवीजी मन्दिर भी अकेली नहीं जा सकतीं ? व्रत तो हम भी रखते हैं । मन्दिर भी जाते हैं—लेकिन, हमें तो कभी किसी चौकीदार की जरूरत नहीं पड़ती ?"

बात को तूल न देकर राजरानी ने कहा—"मेलों के दिन हैं, भीड़-भाड़ जरा ज्यादा रहती है । इसीलिए ले गई है ।"

"तब तो यूँ कहो आजकल गीता के ही घर पड़ा रहता है । तभी हमारे घर आने के लिये हफ्तों बीत जाते हैं ।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं । उसके घर भी आज कई दिन में गया है । आजकल तो वह घर ही में पड़ा रहता है कान्ता !"

"फिर भी जीजी, ऐसी-वैसी जगह जवान लड़के को भेजना ठीक नहीं जहाँ औरतें हों ।"

राजरानी बोली—"ऐसा लड़का कुमार नहीं है कान्ता । दूसरे कौन रोज-रोज जाता है ।"

"तुम्हें अधिकार है जीजी, तुम्हारा देवर है । मैंने तो इसलिए कह दिया कि जितना जवानी की हवा से उसे बचाया जाय—उतना ही अच्छा है ।"

"जैसा मेरा देवर, वैसा ही तेरा । तेरी बात का मैं बुरा क्यों मानने लगी । आखिर हम लोग उसके हितचिन्तक ही तो हैं ?"

कुछ देर इधर-उधर की गप्पें हाँकने के बाद कान्ता ने कहा—"जीजी, जमुना में आजकल बड़े जोर की बाढ़ आ रही है, जी चाहता है—देख आएं । जरा तीन-चार बजे भेज देना कुमार को हमारे घर भी ।"

"भेज दूँगी ।" कहकर राजरानी चुप हो गई और कान्ता उठकर चली गई ।

कुमार जिस समय गीता के घर पहुँचा, उस समय वह हाथ मुँह धो रही थी। गीता को देखकर कुमार बोला—"इतनी देर में तो भाभी एक बारात भी तैयार हो जाती, लेकिन तुम अकेली भी तैयार नहीं हो सकीं ; ताज्जुब है !"

कुमार की बात सुनकर गीता मुस्कराई। बोली—"हाँ लल्ला, बात तुम्हारी ठीक है । इतनी देर में बारात तो बेशक तैयार हो सकती है ; लेकिन, दुलहन नहीं । दुलहन कितनी देर में तैयार होती है, यह भी जानते हो ? यह तुम नहीं जानते लल्ला ! मैं जानती हूँ।"

बेशक भाभी, दुलहनों की बाबत मैं कुछ नहीं जानता। यह तो तुम्हीं जानो क्योंकि उस पद का तुम्हारा अनुभव व्यक्तिगत है । लेकिन भाभी, आज तो आप भक्तिन बन कर देव-दर्शन को जा रही हो न कि दुलहन बनकर सुसराल को ?"

गीता ने मटककर कहा—"फिर भी लल्ला, चला तो जरा कायदे के साथ ही जाता है । जरा सोचो तो सही, यदि यों ही तुम्हारे साथ चल दूँ तो देखने वाले क्या कहेंगे ? यही कहेंगे न कि इन बाबूजी की कोई नौकरानी होगी ?"

"अच्छा-अच्छा, भाभी तुम जीतीं, मैं हारा। लेकिन, अब तो जरा जल्दी तैयार हो लो।"

गीता ने पूछा—'आज तुम्हें ऐसी जल्दी क्या है जो कपड़े तक नहीं बदलने देते ? कहीं और जाना है क्या ? और बार तो दो-दो घंटे तक चुपचाप बैठे रहते थे। आज तुम्हारी हालत ही कुछ और है ?"

गीता की बात से कुमार झेंपता हुआ बोला—न-न भाभी, ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने तो केवल इसलिए कहा कि जितनी देर करोगी, उतनी ही धूप और बढ़ेगी।"

"अच्छा-अच्छा, मैं अभी तैयार होती हूँ।" कहकर गीता दूसरे कमरे में चली गई। कुमार प्रतीक्षा करता रहा । गीता तैयार होती रही। ठीक डेढ़ घंटा बाद सजधज कर गीता बाहर निकली। गीता की

सजधज को देखकर कुमार बोला—"आज तो भाभी, तुम सचमुच ऐसी लग रही हो, मानो देव-मन्दिर न जाकर किसी सौंदर्य प्रतियोगिता में भाग लेने जा रही हो !"

गीता मुस्कराकर बोली—"आजकल तो तुम बातें बनाने में पारंगत होते जा रहे हो। कहाँ से सीख ली हैं तुमने यह बातें ?"

कुमार बोला—"यह सब भाभियों की सेवा का ही पुरस्कार है भाभी !"

"अच्छा सुन लिया, अब डबल चाल दिखाओ।"

"चलो।"

सड़क पर कुछ दूर तक तो गीता कुमार के साथ चलती रही। लेकिन, बाद में पीछे रहने लगी। आगे जाता हुआ कुमार रुका। गीता के पास आने पर बोला—"तुम तो भाभी इस तरह चल रही हो गोया पैरों में मेंहदी लगा रखी हो। ऐसे कितनी देर में पहुँचोगी मन्दिर ?"

"तब क्या बाजार में हम लोगों को हिरनों की तरह से दौड़ लगानी चाहिए ? अरे तुम चल रहे हो या घुड़दौड़ की नकल कर रहे हो ?"

कुमार बोला—"हाँ भाभी, कच्छप-गति से चलना तो मुझे आता ही नहीं।"

गीता ने कहा—"हाँ जी, हम तो चूहों की और कछुओं की गति से चलते हैं। तुम्हें भी ऐसे ही चलना हो तो हमारे साथ चलो, न चल सको तो दौड़ लगाकर पहुँच जाओ हमसे पहले ही—हम भी थोड़ी-बहुत देर में पहुँच ही जायेंगे।"

कुमार ने कहा—"तुम्हीं ने तो कहा था डबल चाल दिखाओ, देख ली मेरी चाल ?"

गीता हँसकर बोली—"हाँ हाँ देखली। अब जरा इन्सानों की तरह चलो।"

"तो पहले मैं क्या जानवरों की तरह से चल रहा था ?" कुमार ने पूछा।

गीता ने मुस्करा कर कहा—"भला यह मैं कैसे कह सकती हूँ। मैं तो केवल यही कह सकती हूँ कि ऐसी चाल इन्सानों की नहीं होती, यानी भले आदमियों की नहीं होती।"

कुछ देर तक गीता बातें करती कुमार के साथ चलती रही। लेकिन बाद में उसकी फिर वही दशा हो गयी। दोनों में फिर काफी अन्तर हो गया। मन्दिर भी अब पास आता जा रहा था।

पूर्णिमा का व्रत होने के कारण आज मन्दिर के आसपास भिखारियों की बहुत भीड़ थी। अतः जैसे ही कुमार मन्दिर के पास पहुँचा, वैसे ही एक वृद्धा भिखारिन लपक कर आई और कुमार के आगे खड़ी होकर बोली—"दे जा बाबू, दे जा। तेरे भैय्यों की जोड़ी बनी रहे, दे जा। तेरे चंदा-सी बहू आये, दे जा। बुढ़िया दुआ देगी बाबू दे जा!"

बुढ़िया के आशीर्वाद से तृप्त होकर कुमार ने जेब में हाथ डाला। बुढ़िया ने भी जेब में हाथ जाता हुआ देखकर आशीर्वादों में कमी करदी, किंतु कई मिनट तक भी जब कुमार बुढ़िया को कुछ न दे सका तो उस ने आशीर्वादों की गठरी फिर खोल दी—"बाबू, तेरे चंदा-सी बहू आये, दे जा। तेरे भैय्यों की जोड़ी बनी रहे—दे जा। बुढ़िया भूखी है—दे जा।"

तंग आ कर कुमार ने पीछे मुड़कर देखा। गीता स्वयं भी भिखारियों के चक्रव्यूह से निकल कर लपकी चली आ रही थी। गीता के कुमार के पास आते ही भिखारिन ने आशीर्वादों की बौछार में और वृद्धि करदी। अब वह कभी कुमार की ओर मुख करके आशीर्वाद देती—"दे जा बाबू, दे जा। तेरी चंदा-सी यह बहू बनी रहे दे जा। तेरी चाँदनी-सी बहू बनी रहे दे जा।"

इसके बाद आशीर्वादों की बौछार का रुख गीता की ओर कर

देती—"दे जा बहू, दे जा। तेरा यह सूरज-सा बन्ना बना रहे दे जा। तेरी चंदा-चकोरी-सी जोड़ी बनी रहे दे जा। तेरा कमाऊ जीता रहे दे जा। बहू, भगवान बेटा देगा दे जा। बहू तेरा सुहाग बना रहे दे जा। बहू, दूधों नहा, पूतों फले, दे जा। तेरे कमाऊ की जवानी बनी रहे दे जा।"

बुढ़िया के आशीर्वादों की गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। जैसे-जैसे गति तीव्र होती थी, तैसे-तैसे ही कुमार कुढ़ता था। उस समय बुढ़िया का प्रत्येक आशीर्वाद उसे चिंगारी जैसा लगता था। आशीर्वादों की इन्हीं बौछारों के बीच गीता ने एक इकन्नी निकाल कर बुढ़िया के हाथ पर रखी। बुढ़िया खुश हो गयी। इकन्नी लेकर बुढ़िया ने "सौभाग्यवती," "पुत्रवती" और "कमाऊ की जवानी बनी रहने" के पाँच छः आशीर्वाद और दिये।

बुढ़िया इकन्नी लेकर एक ओर चली। दूसरे भिखारियों ने भाँप लिया। अतः चार-पाँच भिखारियों ने फिर दोनों को आ घेरा और आशीर्वादों की वही बौछार फिर शुरू हो गई। प्रायः सभी ने गीता की जोड़ी सही सलामत बनी रहने के साथ-साथ उसके पुत्रवती होने की कामना की। फलस्वरूप इन्होंने भी बदले में गीता के हाथ से दान में एक-एक इकन्नी पाई।

भिखारियों से पीछा छुड़ाकर जब दोनों आगे बढ़े, तब कुमार ने कुढ़े हुए स्वर से कहा—"इसीलिये तो भाभी मैं तुम लोगों के साथ आना पसन्द नहीं करता।"

गीता ने मुस्करा कर पूछा—"आखिर क्यों? हमारे साथ आने में तुम्हें क्यों लाज आती है?"

कुमार बोला—"लाज क्या, देख लो न इन भिखारियों को, न जानते हैं न पूछते हैं। बस, दे जा बाबू दे जा, दे जा बहू दे जा।"

गीता बोली—"तो इसमें तुम्हारा क्या नुकसान हो गया?"

कुमार के स्वर में अब भी कड़वाहट थी। बोला—"कम-से-कम कमबख्त यह तो सोच लिया करें किसका किससे क्या रिश्ता है ?"

गीता हंस पड़ी। बोली—"अच्छा, यह बात है। मुझे तो इनके कहने से कोई ऐतराज है नहीं। भला यह तो सोचो, हम दोनों को इस तरह साथ देखकर सिवाय पति-पत्नी के और क्या समझते यह बेचारे ?"

"खाक समझते !" और चिढ़ कर कुमार बोला—"मेरे पास दो-चार पैसे होते तो मैं इन्हें पहले ही देकर टरका देता।"

गीता ने समझाया—"ऐसी जगह तो लल्ला दो-चार पैसे डाल कर चलना ही चाहिये।"

गीता के यह कहने पर कुमार और झुंझलाया। बोला—"यदि न हों किसी के पास तो कहां से लाये ?"

गीता फिर हंस पड़ी। बोली—"तब तो यूं समझूं कि आजकल तुम्हारी गाड़ी मुफलिसी में चल रही है ?"

धीरे से कुमार ने कहा—"हां भाभी, आजकल बात तो कुछ ऐसी ही चल रही है।"

मंदिर के द्वार पर पहुँच कर गीता ने कहा—"अच्छा यह होगा कि पहले तुम दर्शन कर आओ, तुम्हारे बाद मैं कर आऊँगी।"

"क्यों ?" कुमार ने पूछा।

"इसलिये कि भीड़ ज्यादा है। ऐसा न हो कि कहीं दोनों को ही यहां से नंगे पैर रास्ता नापना पड़े।" कुमार बोला—"आप चली जाइये मैं खड़ा रहूँगा।" गीता ने प्रतिवाद किया—"नहीं-नहीं, जब यहां तक आये हो तो भगवान् के दर्शन भी अवश्य करने चाहियें।" कुमार ने जवाब दिया—"न भाभी, मुझे भगवान् से कुछ नहीं मांगना है। तुम्हें जो कुछ मांगना हो मांग लाओ।" गीता ने फिर जिद की—"अरे चलो भी तुम्हारी ओर से हम ही कुछ मांग देंगे।"

"धन्यवाद, मैं नहीं जाऊँगा।" इतना कह कर कुमार मौन हो

गया। गीता ने समझा कुमार आगे पीछे दर्शन करने के प्रश्न पर नाराज हो गया। अतः बोली—"जूते राम नाम पर छोड़ो, चलो दोनों साथ-साथ ही चलें।"

भगवान् का दर्शन करके जब दोनों लौटे, तब मंदिर में भक्तों की अपार भीड़ को देखकर कुमार का सर्वांग कांप गया। क्योंकि भगवान् के यह भक्त जिस तरह से महिलाओं का सत्कार कर रहे थे, उसे देखकर कुमार को निश्चय हो गया था कि इन भेड़ियों के गोल से गीता को निकालना आसान काम नहीं है। अतः जैसे ही गीता भक्तों के पास आई, तैसे ही गीता को पीछे हटा कर कुमार आगे बढ़ा और उन्हीं की भाषा में—"हटना भाई जी, बचना ताऊ जी, जरा एक ओर को भाई साहब, देख कर चलो चाचा साहब"—कहता गीता के लिये रास्ता बनाता चला गया। जूते सही सलामत थे। दोनों पुनः भगवान् को नमस्कार कर चल दिये।

मंदिर से कुछ दूर जाने पर कुमार ने रुक कर जूता खोलना शुरू किया।

गीता ने पूछा—"क्या है ?"

कुमार बोला—"अंगूठे के पास कागज-सा लग रहा है।"

गीता बोली—"तब तो कोई नोट होगा !"

कुमार ने पूछा—"कैसे ?"

गीता ने कहा—"शायद भगवान् को तुम्हारी मुफलिसी पर दया आ गई हो।"

कुमार भी हंस पड़ा—"उम्मीद तो नहीं भाभी, फिर भी देखता हूँ।" यह कह कर कुमार ने जूता उतारा और हाथ डाल कर कागज को निकाला। कागज गीता को दिखा कर बोला—"मैं पहले ही कहता था न कि ऐसे हमारे भाग कहाँ हैं ? पता नहीं किस कम्बख्त ने मेरे जूते में डाल दिया इसे।"

कुमार के फेंके हुए परचे को गीता ने उठा कर फिर कुमार को

दे दिया—"अरे देखो तो सही किसका है—क्या लिखा है ?" कुमार ने पर्चा लेकर जैसे ही—"खाक लिखा हूँ।" फाड़ना चाहा तैसे ही गीता ने कुमार का हाथ पकड़ लिया—"नहीं लल्ला, आखिर देखो तो सही इसमें क्या लिखा है। कभी-कभी कोई पर्चा भी काम का निकल आता है—जरा पढ़कर सुनाओ।"

"तुम्ही पढ़ लो भाभी !"

कुमार ने पर्चा गीता की ओर बढ़ाया। गीता बोली—"अरे पढ दो तुम्हीं, एक परचा पढ़ने हुए भी नखरे दिखाने लगे।"

लाचार हो कर कुमार ने पर्चा खोल कर पढ़ना शुरू किया।

"मेरे प्यारे, आँखों के तारे······।"

कुमार के इतना पढते ही गीता ने रोक दिया। बोली—"सड़क पर इस तरह "प्यारे और आँखों के तारे" पढ़ना ठीक नहीं, चलो मन्दिर के पीछे की बगीची में बैठ कर पढ़ना। पर्चा तो कारामद मालूम होता है।"

"खाक कारामद है, मुझे तो किसी की बकवास-सी लगती है। चलो घर को। हम नहीं जाते कहीं भी।" लेकिन गीता नही मानी। कहने लगी—"जरासी देर तो लगेगी, थोड़ा-सा सुस्ता भी लेंगे और इसका भी पता चल जायेगा।"

बगीचे में पहुँच कर दोनों घास पर बैठ गये। गीता ने कहा—"हाँ लल्ला, अब करो शुरू। प्यारे और आँखों के तारे से आगे क्या लिखा है ?"

"तुम्हीं पढ़ लो भाभी, मुझे तो यह सब कुछ वाहियात बात पसंद नहीं है।"

गीता ने मुँह बनाया—"फिर वही बात। अरे इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है। पढ़ो भी।"

गीता के अनुरोध पर कुमार ने पर्चा फिर पढ़ना शुरू किया—"मेरे प्यारे, आँखों के तारे·········,"

कुमार के इतना पढ़ते ही गीता भी हँस पड़ी—"आँखों के अंधे, गाँठ के पूरे—नहीं लिखा ?"

कुमार बोला—"जो कुछ इसमें लिखा है वही पढ़ रहा हूँ। कहो पढ़ूँ कहो बन्द कर दूँ ?"

गीता बोली—"नहीं-नहीं पढ़ो। मैंने तो यों ही पूछ लिया था—शायद यह भी लिखा हो इसीलिये ?"

"जी नहीं, यह नहीं लिखा। लिखा होता तो मैं अवश्य पढ़ता।"

"अच्छा जो लिखा हो वही पढ़ो।"

कुमार ने फिर पढ़ना शुरू किया—"मेरे माथे के बिन्दे ……।"

गीता खिलखिला पड़ी—"वाह-वाह, क्या सुन्दर शब्द लिखे हैं। जी चाहता है लिखने वाली के हाथ चूम लूँ।"

कुमार झुँझला कर बोला—"हाथ चूमो या पैर ! लेकिन सुनना हो तो सुनो ; वरना यह पड़ी है चिट्ठी।" कह कर कुमार ने चिट्ठी फेंक दी।

हँसती-हँसती गीता चिट्ठी उठा लाई—"अरे रहने दो ज्यादा मत बनो हम सब कुछ जानते हैं।"

कुमार की झुँझलाहट ज्यों-की त्यों थी। बोला—"क्या जानती हो भाभी ?"

गीता बोली—"यही कि यह तुम्हारी चिट्ठी है। लेकिन आप लोगों ने परस्पर चिट्ठियाँ भेजने का निःशुल्क जो आविष्कार किया है—वह वास्तव में कमाल का है ?"

गीता के इन शब्दों से कुमार के चेहरे पर झुँझलाहट के स्थान पर भीरुता आ बिराजी। फिर भी हिम्मत करके बोला—"बिल्कुल गलत बात है भाभी !—इस चिट्ठी या चिट्ठी वाली से मेरा क्या मतलब ? तुमने कहा—मैंने पढ़ दिया।"

लेकिन गीता कहाँ मानने वाली थी। बोली—"अरे, इसमें झेंपने की क्या बात है। आखिर किसी न किसी दिन तो किसी के माथे के

बिन्दे और आँखों के चंदे तुम बनोगे ही। पर जरा हमें भी दिखा देते तो अच्छा रहता कि किसके माथे के बिन्दे और आँखों के चंदा बन गये।"

कुमार कसम खा कर बोला—"तुम्हारे सर की कसम भाभी! मैं नहीं जानता किसकी चिट्ठी है। अलबत्ता मेरा इस चिट्ठी से कोई मतलब नहीं।"

कुमार के चेहरे पर एक सरसरी दृष्टि डाल कर गीता ने कहा—"लल्ला, मैं तो तभी समझ गई थी, जब तुम मेरे एक बार कह आने पर ही दौड़े चले आये थे हमारे घर। वरना इतने भले तुम कहाँ हो जो एक बार के कहने पर ही किसी काम को तैयार हो जाओ—पचासों खुशामदें कराते हो।" गीता कहती रही—"और दूसरी बात यह है कि तुम मन्दिर की ओर पता तोड़ उड़े जा रहे थे—मुझे भी पीछे छोड़ कर। तुम्हारे तो पैर ही जमीन पर नहीं पड़ते थे।"

हताश होकर कुमार बोला—"तो तुम्हारा मतलब यह है कि मैं इसीलिये तेज चल रहा था?"

गीता ने कहा—"वह तो साफ ही जाहिर है।"

"अच्छा मैं आगे पढ़ता हूँ, शायद तुम्हारा भ्रम दूर हो जाय।" गीता ने मुँह बिचकाया—"पढ़ो या न पढ़ो। लेकिन, वास्तविकता को छिपाने की कोशिश क्यों करते हो? इस दिन की तो पता ही नहीं, हम कब से इन्तजार में थे। अच्छा हुआ भगवान् ने यह दिन जल्दी ही ला दिया।"

कुछ सोच कर कुमार फिर बोला—"लेकिन भाभी, मुझे कुछ ऐसा ख्याल आ रहा है कि यह पर्चा मन्दिर में नहीं, मेरे जूते में शायद पहले से ही था। जल्दी में ध्यान नहीं दे सका इसकी ओर।"

कुमार के इस कथन पर गीता फिर हंस पड़ी—"यह लीपा-पोती अब बेकार है लल्ला! यह चिट्ठी तो तुम्हारे जूते में वहीं रखी गई है। शर्त लगा कर कह सकती हूँ मैं?"

इस बार कुमार को झुँझलाहट आई। बोला—"अच्छा, सच्ची

बात है। कर लो क्या करती हो ?"

गीता ने कहा—"तब रोते क्यों हो ? खिलाओ मिठाई । अरे हम तो मिठाई खाने वालों में हैं। गीत गायेंगे, मिठाई खायेंगे।"

"लेकिन, पहले बाकी चिट्ठी तो सुन लो। या दावे से पहले ही फैसला कर रही हो।" कुमार को अधिक अधीर देख कर गीता ने गर्दन हिला दी। कह दिया अच्छा सुनाओ । कुमार ने चिट्ठी फिर पढ़नी शुरू की।

"मेरे दिल के दीपक, मेरे हृदय की धड़कन······ ।"

इतना सुनते ही गीता फिर उछल पड़ी—"शाबाश—शाबाश !! खूब लिखा है। दिल चाहता है अभी जाकर लिखने वाली के हाथ चूम लूं।" कुमार बोला—"हाथ चूमो या पैर—किन्तु पहले सुन तो लो।" गीता ने कहा—"पढ़ते चलो—बड़ा आनन्द आ रहा है। ध्यान से सुन रही हूँ, मन लगा कर।"

"सुन कहाँ रही हो, तुम तो आलोचना कर रही हो भाभी !"

गीता ने मुंह पर हाथ रख लिया । कुमार ने फिर चिट्ठी शुरू की—"मेरे स्वप्नों के संसार, मेरे अरमानों के शृंगार ! मेरे बाग के फूल ! मेरे सर की धूल ! मेरे जीवन गाड़ी के एंजिन······ ।' गीता इस बार चुपचाप सुनती रही। कुमार पढ़ता रहा—"मुझ पपीहे की स्वाति की बूंदें ! मेरे कलेजे के टुकड़े ! प्यारे विनोद······ ।"

कुमार के विनोद कहते ही गीता चौंक गई। मानों किसी ने उसके सुई चुभा दी हो—"क्या पढ़ा लल्ला तुमने ? जरा फिर पढ़ना।" कुमार ने पूछा—"सारी चिट्ठी ही फिर पढ़ूं भाभी या विनोद से आगे पढ़ूं ?"

"नहीं-नहीं, यहीं से पढ़ो—सारी पढ़ने की जरूरत नहीं है।" गीता के स्वर में कम्पन था।

कुमार फिर पढ़ने लगा—"प्यारे विनोद; तुम्हारे तो मुझे अब दर्शन ही दुर्लभ हो गये। मेरे लिए तो ईद के चाँद बन गये। तुमने

किस लिए अब मंदिर आना छोड़ दिया ? आज आये भी तो मुझे नहीं मिले। पता नहीं मंदिर में ही कहाँ छिप गये ?

"याद रखो विनोद ! मैं एक दिन कुछ खाकर मर जाऊँगी। और स्वर्ग में बैठ कर तुम्हें श्राप दिया करूँगी। परन्तु यमदूतों के आने से पहले दो-तीन चिट्ठियां तुम्हें और लिखूँगी। यह चिट्ठी मैं मंदिर से बाहर पेंसिल से लिख कर तुम्हारे जूते में खोंसे जा रही हूं और कल फिर इसके जवाब के लिये यहाँ आऊंगी।

केवल तुम्हारी ही--
—रीता"

कुमार ने चिट्ठी समाप्त कर गीता की ओर देखा। गीता ने कुमार की ओर देख कर इस तरह रुका हुआ साँस छोड़ा मानो किसी साइकिल ट्यूब से रेत में पंचर हो रहा हो। इस समय गीता की दशा विचित्र थी। उसकी परिहास प्रवृत्ति कभी की छुट्टी कर गई थी। उसके स्थान पर दीनता, मलीनता और हीनता आ विराजी थी। मुख-मकान के चारों ओर मक्खियाँ मटरगश्त कर रही थीं।

गीता की विचित्र स्थिति देख कर कुमार ने पूछा—"क्यों भाभी, मिजाज कैसा है ?" मरे मन से गीता बोली—"ठीक ही है लल्ला !"

कुमार ने फिर टोका—"अगर ठीक है तो इस तरह से फिर क्यों बोल रही हो, जिस तरह सांप के गले में फँसकर छछून्दर बोला करती है ?"

गीता रुआँसी होकर बोली—"मुझे यह पता नहीं था, पुरुषों की जाति इतनी लपटी-कपटी होती है।" कुमार बोला—"जाति-बिरादरी की बात तो तुम जानो भाभी। परन्तु मैंने तो पहिले ही कहा था यह चिट्ठी मेरी नहीं है। भला मुझ गरीब का किसी के लिम्हे-जम्हे वमले से क्या मतलब ? लेकिन तुम मानी ही नहीं। अब तो मान गयीं न ?"

गीता का होश हिरन हो चुका था। बोली—"लाओ यह चिट्ठी

मुझे देदो लल्ला, नहीं तो बहिनजी भी तुम पर ही नाराज होंगी। वह भी यही समझेंगी जो मैं समझी थी।"

"चलो?" कहकर कुमार ने चिट्ठी गीता को दे दी। बदले में गीता दो रुपये देती हुई बोली—"लो इसका कुछ खा लेना। तुमने आज घर भी शायद कुछ नहीं खाया होगा?"

कुमार ने पहले तो कुछ आनाकानी की। बाद में रुपये जेब के हवाले किये।

कुमार जैसे ही मन्दिर से लौटकर आया, तैसे ही राजरानी ने पूछा—"कहो बाबू क्या कमाया गीता से? आज तो गीता का व्रत था—हाथ गहरा रहा होगा?"

कुमार बोला—"भाभी कुल दो ही रुपये पल्ले पड़े हैं?"

आश्चर्य से राजरानी बोली—"आज के दिन भी बस दो ही रुपये? आज के दिन तो तुम्हें वह जो कुछ भी देती—अगले जन्म में वही पाती। फिर भी दो ही रुपये दिए?"

"मामला ही ऐन-मौन हो गया भाभी! यह भी बहुत समझो जो दो रुपये भी पल्ले पड़ गये? मैंने तो आशा ही बिलकुल छोड़ दी थी। सोच लिया था आज कुछ नहीं मिलेगा।"

"क्यों-क्यों, ऐसा क्या हुआ? कहीं दोनों का लड़ाई-झगड़ा तो नहीं हो गया था रास्ते में?"

"लड़ाई-झगड़ा हम दोना का तो नहीं, लेकिन उन दोनों का जरूर आज हो जायगा?"

राजरानी की उत्सुकता जाग गई। समझ गई कि चिट्ठी अपना

काम कर गई। बोली—"जरा बताओ तो हमें भी मामला क्या हुआ ?"

कुमार बोला—"बात यह हुई भाभी, मन्दिर तक तो कोई खास बात नहीं हुई। परन्तु जब हम दोनों मन्दिर से घर की ओर चले तो मेरे पैर को ऐसा लगा—मानो मेरे जूते में किसी ने नोट छिपा दिया हो।"

"नोट, तुम्हारे जूते में ? अरे, तब तो रोज मन्दिर जाया करो। कल को कोई गिन्नी अशर्फी भी छिपा देगा जरूर।"

"पहले सुन तो लो ?"

"हाँ-हाँ, सुनाओ। कितने का नोट था भला ?"

"नोट कहाँ था।"

"तब क्या किसी इम्तहान की सनद थी ?"

"मेरा सर था ?" झल्लाकर कुमार बोला—"पहले पूरी बात तो सुनती नहीं। बीच में ही अपनी टांग अड़ा देती हो।"

"अरे तो लड़ते काहे को हो—नोट पाओ तुम, और लड़ो हमसे—जाओ नहीं सुनते।" कहकर राजरानी ने मुँह फेर लिया।

कुमार बोला—"सुनोगी कैसे नहीं। जबर्दस्ती सुननी पड़ेगी। तुम्हीं ने तो भेजा था गीता के साथ।"

"हम काहे को भेजते। रोज क्या हमीं भेजते हैं ?" अपनी विद्या की कसम खाकर कह दो क्या तुम खुद ही दस-दस चक्कर गीता-कान्ता के घरों के नहीं लगाते ?"

कुमार हँस पड़ा—"यह तो आमदनी की बात है। कभी तुम भेज देती हो—कभी मैं खुद ही चला जाता हूँ। अच्छा छोड़ो यह झगड़ा, अब सुनो आगे की कहानी।"

"जी तो नहीं चाहता। खैर, जब तुम जिद ही करते हो तो सुने ही लेती हैं।" कुमार ने कहा—"जब मैंने 'जूते से कागज निकाला तो वह नोट न होकर एक चिट्ठी निकली।"

"चिट्ठी और वह भी तुम्हारे जूते में !" राजरानी हँसी ।

कुमार चिढ़ा—"हाँ-हाँ मेरे जूते में !"

"ठीक बात है। तभी तुम मंदिरों के बहुत चक्कर लगाया करते हो। पकड़ ली होगी गीता ने आज तुम्हारी चोरी ?"

"पहले सुन तो लो ?" कुमार झुँझला उठा।

राजरानी शान्तरही—"सुन भी लिया और समझ भी लिया। आगे कहो क्या कहते हो ?"

"खाक समझ लिया तुमने—क्या समझा ?"

"यही कि कोई लड़की चिट्ठी लिखकर, भीड़ में तुम्हारे हाथ में न देकर जूते में रख गई।"

"बस-बस, तुम तो सबको अपने ही जैसा समझती हो—पहले गीता भाभी भी ऐसे ही कह रही थीं। बड़ी खिलखिला रही थीं वह भी।

कुमार को बीच में रोककर राजरानी ने पूछा—"क्यों जी, यह क्या कहा कि सबको अपना-सा ही समझती हो। हमने शादी से पहले कब चिट्ठी लिखी तुम्हारे भाई को ? एक भी लिखी हो तो पुछवा दो, आ जाने दो उन्हें ?"

कुमार भी झुँझला गया—"तब पूरी बात क्यों नहीं सुनी ! ऐसे ही गीता भाभी नहीं सुन रही थीं। अपनी ही कहे जा रही थीं।"

"अच्छा अबकी बार अगर मैं टोकूँ तब भी तुम मत रुकना सुनाते चले जाना।"

कुमार ने गर्दन हिलाई—"चिट्ठी में लिखा था·········।"

"किसने ?" राजरानी ने फिर टोक दिया।

कुमार के मुँह से निकल गया—"तुमने।"

राजरानी का चेहरा एक दम फक्क पड़ गया। पहले तो वह समझी कि शायद कुमार ने उसे चिट्ठी लिखते देख लिया है। लेकिन बाद में साहस बटोर कर बोली—"भला मैं क्यों किसी को चिट्ठी लिखने लगी ?"

कुमार बोला—"तब टोकती काहे को हो ? मेरे मुँह से निकल गया गुस्से में ।"

"अच्छा सुनाओ चिट्ठी में क्या लिखा था ? अब नहीं टोकूँगी ।"

चिट्ठी में लिखा था—कुमार कुछ रुककर बोला—"मेरी आँखों के तारे, मेरे माथे के चंदे ।"

"गांठ के पूरे अक्ल के अंधे"—यह भी लिखा होगा आगे जरूर ?"

"आगे लिखा था तुम्हारा सिर !" कुमार चिढ़ा ।

राजरानी हँसी—"यानी आँखों के तारे, माथे के चन्दे, कुमार की भाभी राजरानी के सर यही न ?"

'हाँ-हाँ, यही । और बोलो क्या चाहती हो ?"

"और यह पूछती हूँ कि क्या इसके आगे हाथ पैर नहीं लिखे थे उसने मेरे ?"

"सब कुछ लिखा था । नहीं सुनना है मना करदो !"

"अच्छा सुनाओ—सुनती हूँ । अब बिलकुल भी नहीं टोकूँगी ।"

"आगे लिखा था —मेरे दिल के दीपक, मेरे हृदय······।" कुमार के इतना कहते ही राजरानी फिर खिलखिला पड़ी । बोली—"मेरे हृदय की चौखट, मेरे कलेजे के किवाड़ । क्यों भई, यह भी लिखा ही होगा ? "

"हाँ-हाँ, आगे साला-साली, का भी जिक्र किया था ।"

"अच्छा पढ़ो ।"

"बोलोगी तो नहीं अब, कसम खाओ ।"

"नहीं-नहीं कसम ले लो ।"

"अच्छा सुनो······।"

"सुन तो रही हूं । लेकिन सुनने से पहले यह तो बताओ कि यह

लड़की कौन है जिसने तुम्हें पत्र लिखा और तुम दोनों का यह पत्र व्यवहार कितने दिन से जारी है ?"

"सब कुछ पता चल जायगा, पहले सारी कथा सुनो तो ।"

कुमार सुनाने को उत्सुक था ।

आगे बोला—"लिखा था, अब तो तुम मुझको भूलते जा रहे हो ।"

"हाय राम, यह तो लल्ला बहुत बुरी बात है । किसी को धोखा देना तो महापाप लिखा है शास्त्रों में ।" राजरानी ने कहा । "अच्छा खैर आगे क्या लिखा था ?"

और यह लिखा था—"मैं आत्महत्या कर लूँगी······।"

"रुकना-रुकना जरा । आत्महत्या क्यों कर लेगी, हम तुम्हारी शादी ही उससे करा देंगे । कह देना उससे कल जाकर ।"

"मालूम होता है तुम पूरी बात ही नहीं सुनना चाहती ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है । मुझे तो यह कहानी बड़ी अच्छी लग रही है । अब की बार तुम फिर शुरू से सुनाओ तो और भी अच्छी लगे ।"

कुमार तैयार हो गया ।

"सुनो,—जब मैंने चिट्ठी को पढ़ना शुरू किया तो गीता भाभी बोली—"चलो मंदिर के पीछे बगीची में बैठेंगे ।"

"अच्छा ।"

"हाँ, हम दोनों बगीची में चले गये । मैंने चिट्ठी पढ़नी शुरू की और जैसे ही आँखों के तारे और माथे के चन्दे-बिन्दे की बातें आयीं तो उछलने लगीं गीता भाभी । बोलीं—"यह तो लल्ला किसी लड़की ने तुम्हें ही लिखा है ।" राजरानी चुप रही । कुमार सुनाता रहा ।

"मैंने उन्हें लाख समझाया कि भाभी मेरा इन बातों से कोई मतलब नहीं । चिट्ठी वाला तो कोई और ही बेवकूफ होगा । लेकिन वह

क्यों मानने लगीं। कहने लगीं—न-न, यह चिट्ठी तो तुम्हारी ही है। बता दोगे तो क्या बिगड़ जायेगा ?

'मैं परेशान, कहूँ तो क्या कहूं। वह सुनतीं और सुन-सुन कर लोटनकबूतर हो रही थीं।"

कुछ रुककर कुमार फिर बोला—"और जब चिट्ठी में आगे लिखा हुआ नाम मैंने पढ़ा—प्यारे विनोद……। बस, भाभी साहब के मुख-मकान की सारी सुन्दरता साफ हो गयी। लगीं उल्टे सीधे सांस लेने।"

"क्या विनोद का नाम लिखा था ? वह चिट्ठी तुम्हारी नहीं, विनोद की थी ?" मन के ,भाव दबाकर आश्चर्य से राजरानी ने पूछा।

कुमार बोला—"मैं तो पहले ही कह रहा हूं—ऐसी चिट्ठियों से मेरा क्या मतलब। परन्तु तुम सुनती ही कहाँ थीं मेरी बात।"

"अच्छा, फिर गीता क्या बोली ?"

"फिर कुछ बोलने का हौसला ही कहाँ रहा था। उनके होश-हवास तो बगीची में ही बिखर गये। कहने लगीं—घर चलो, देर हो रही है।"

"अब समझ गयी कि आज तुम्हें आमदनी कम क्यों हुई। खैर, यह तो बताओ आज तुमने सवेरे-सवेरे मुँह देखा किसका था। यानी जब सोकर उठे थे ?"

"क्यों ?"

"यह फिर बताऊँगी।"

"सच ही बता दूँ ?"

"बिल्कुल सच बताओ।"

"तब तो भाभी जैसे ही मैंने उठकर छत से जंगल की ओर देखा तैसे ही क्या देखता हूं कि एक गधा मेरी ओर मुँह किए हँस रहा है।"

"कुमार की गधे की घटना पर राजरानी हँस पड़ी। बोली—"उसके

हँसने का रहस्य समझ में आया तुम्हारे ?"

"नहीं तो।"

"वह कह रहा था आज का दिन तुम्हारा शुभ है। तुम भी आज मेरी ही तरह खुश रहोगे।"

"लेकिन शुभ रहा कहाँ ? आमदनी हुई कुल दो रुपये की ?"

"अभी और होगी। तुम्हारे मंदिर जाने पर कान्ता आई थी, कह गई है कुमार से कह देना हमें जरा जमुना की बाढ़ दिखा लाये।"

कुमार बोला—"तब तो तुमने इतनी देर नाहक ही कर दी। अब तक तो मैं उन्हें जमुना क्या शाहदरा तक भी दिखला कर लौट आता ?"

"नहीं वह चार बजे को ही कह गई है। इतने खाना खाओ, लेट लगाओ और चार बजे राम का नाम लेकर पहुँच जाओ कान्ता को लेकर जमुना-दर्शन कराने।

ठीक चार बजे कुमार कान्ता के घर पहुँचा। कान्ता कभी की सजी-बजी तैयार बैठी थी। कुमार को देखते ही पूछा—"छोड़ दिया आज गीता ने तुम्हें ?"

"अभी का, मैं तो इसलिये देर करके आया क्योंकि तुम भाभी से कहकर ही चार बजे के लिए आई थीं।"

"मैं तो चार बजे के लिए इसीलिये कहकर आई थी कि तुम दोनों ही भगवान् के भक्त हो। दो-चार घंटे तो पूजा के लिए चाहियें ही। इससे पहले क्या लौटोगे।"

"अजी कहाँ, हम तो सभी आ गये थे।"

"क्यों, गीता ने तो आज तुम्हारी अच्छी खातिरदारी कि होगी ?" कान्ता ने बात को नया मोड़ दिया।

"खातिरदारी तो आज तुम्हारे जिम्मे है।" कुमार हंस पड़ा। कान्ता ने पूछा—"उसने क्या सूखा ही टाल दिया तुम्हें ?"

"नहीं, उनसे, दो रुपये वसूल हुए।"

"रसीद दे आये गीता को उन रुपयों की ?"

"रसीद तो भाभी हमारी मार्फत किसी ने पहले ही लिख दी थी।"

"क्या मतलब ?" कान्ता कुमार के उत्तर को नहीं समझ सकी। कुमार ने कहा—"फिर किसी दिन बताऊंगा। अब तो चलो जमुना जी।"

"आते देर हुई नहीं, चलो-चलो की जल्दी लगा दी। हमारे घर कौन से कांटे हैं और गीता के घर कौन से फूल हैं जो घंटों वहीं पड़े रहते हो ?"

"मैं तो इसलिए कह रहा हूँ भाभी, ताकि लौटने में देर न हो जाय ?"

"इसकी चिन्ता तो मुझे होनी चाहिए। जरा हाथ मुँह तो धो लूँ। चलते हैं।"

"अभी हाथ-मुँह धोने की भी कसर रह गई। आज तुम लगती हो ऐसी हो मानो किसी चित्र का श्रृंगार करके आ रही हो।"

"बस-बस रहने दो, कहीं नज़र मत लगा देना। सुना है औरतों को रंडुओं की नजर बड़ी जल्दी लगती है।" कहकर कान्ता ने इस तरह से मुँह बनाया कि कुमार हँस पड़ा। बोला—"लेकिन यह तो बताओ बिना शादी के ही मैं रंडुआ कैसे हो गया, शादी मेरी नहीं हुई। बहू मेरी नहीं मरी ?"

"शादी को बड़ा जी ललचा रहा दीखता है ?" कान्ता हँसी।

"अजी राम का नाम लो। मैं तो भाभी शादी करने वालों को ज्यादा अक्लमन्द समझता ही नहीं।"

हूँ।

"तब अक्लमन्द किसे समझते हो ?"

"अपने जैसों को।"

"वास्तव में तुम अक्लमन्द हो। लेकिन, देखना अपनी अक्लमन्दी को खो मत देना कहीं !"

"बिल्कुल नहीं भाभी, पर अब चलो जल्दी।"

"बैठोगे नहीं कुछ देर ?" कान्ता की वाणी में आग्रह था।

कुमार बोला—"आकर बैठेंगे—अब तो चली चलो।"

"कहाँ ले चल रहे हो ?" कान्ता कपट कला की ओर बढ़ी। कुमार नहीं समझा—"जहाँ तुम्हारा जी चाहे चलो। अपने लिए सब दिशाएँ खुली हुई हैं।"

कान्ता के चेहरे पर कपट साफ झलक रहा था—"आज तुम्हारी मर्जी पर ही अपने को छोड़ा—चाहे जहाँ ले चलो।"

"चलो जमुना ही चलो। मैंने भी सुना है नदी में बाढ़ बहुत जोर से आ रही है।" कुमार कह गया।

कान्ता ने पूछा—"कभी किसी की बाढ़ देखी है ?"

कुमार बोला—"देखी है भाभी, एक बार देखी है। बड़ी भयानक बाढ़ थी।"

"किसकी ? मेरी कसम सच-सच बताना ?" कान्ता ने कुमार के चेहरे पर आँखें गड़ा दीं।

"कुमार ने कहा—"गंगाजी की भाभी ! बाढ़ क्या थी मानो प्रलय थी।"

"गंगाजी की बाढ़।" कान्ता के मुख से धीरे से निकला—"मूर्ख कहीं का।" प्रकट में बोली—"अच्छा अब जमुना जी की देखना।"

रास्ते भर कान्ता धीरे-धीरे कुमार से परिहास करती गई। जमुना के किनारे पहुँच कर बोली—"चलो तुम और आगे चलो। यहाँ तो बहुत आदमी घूम फिर रहे हैं। घूर-घूर कर देखते हैं मुझे।"

कुमार बोला—"हाँ भाभी, मुझे यह सब खुद बुरा लग रहा है।

बाज-बाज आदमी तो तुम्हें इतनी बुरी तरह घूर कर देखता है कि जी चाहता है उसकी गर्दन पकड कर जमुना में गोते दे दूँ।"

"तुम्हें क्यों बुरा लगता है?" कान्ता मुस्कराई। कुमार ने कहा—"इसलिए कि ऐसे क्यों देखते हैं जिससे तुम्हें नजर लग जाय?"

"अच्छा मैं समझ गई—तुम्हें यह डर है कि कहीं मुझे नजर न लग जाय।"

"और क्या।"

'लेकिन, यदि आज तुम्हारी ही नजर लग गई तो?"

"तब तो मैं भी तुम्हारी तरफ नहीं देखूँगा।"

हिसाब उल्टा हुआ। अपनी बात बदल कर कान्ता ने कहा—"नहीं-नहीं लल्ला! देवरों की नजर भाभियों को नहीं लगा करती कभी।"

"हाँ, मैं भी यही सोच रहा था। देखो न राजरानी भाभी को तो मेरी नजर कभी लगी ही नहीं। लगती तो कहतीं न?"

"मैं भी तो कह रही हूं देवरों की नजर नहीं लगा करती। चलो अब आगे चलो।"

नदी के किनारे एक साफ पत्थर देखकर दोनों बैठ गये। बैठने पर कान्ता ने कुमार से पूछा—"देखा, जमुनाजी में कैसी बाढ़ आ रही है?"

सहज भाव से कुमार बोला—"हाँ भाभी, बड़े-बड़े जहरीले सांप और लक्कड़ बह रहे हैं।"

कान्ता की कुटिलता वापस आ चुकी थी। बोली—"और यह भी जानते हो जब बाढ़ और भी बढ़ जाती है, तब क्या होता है?"

"हाँ, तब बाँध को तोड़ देती है।" कुमार आगे बोला—"मगर भाभी! क्या रेल का पुल भी तोड़ देगी—यह तो बड़ा मजबूत है। दूसरे अब की बार पुश्ता भी तो मजबूत बनाया गया है।"

"बाँध कहते किसे हैं जानते हो?" कान्ता ने भौंहें चढ़ायीं।

"हाँ, रुकावट को बाँध कहते हैं।" कुमार ने बाँध की व्याख्या की।

"जब बाढ़ आती है तो वह हर रुकावट को उठाकर फेंक देती है लल्ला !" लम्बी साँस लेकर कान्ता बोली।

कुमार ने कहा—"और यह इतने भारी-भारी बड़े-बड़े पत्थर जो पड़े हैं भाभी, क्या इन्हें भी बाढ़ फेंक देगी ?"

"इनकी बाढ़ के आगे क्या बिसात है लल्ला ? चढ़ी बाढ़ को रोकें और पत्थर क्या—पहाड़ भी नहीं रोक सकते।"

धीरे-धीरे कान्ता की कुटिलता पराकाष्ठा को पहुँच रही थी। परन्तु कुमार को रेल के पुल की चिन्ता सता रही थी। बोला—"तब तो भाभी, रेल का पुल खतरे में ही है।"

"दरिया की रवानी जवानी पर है—तुम्हारा बूढ़ा पुल क्या करेगा ?"

"तब तो भाभी सरकार को जल्दी ही और कुछ इंतजाम करना चाहिए।" कुमार सकपका रहा था।

"तुम पुल को रोक कर क्या करोगे ? क्यों रोकते हो, बह जाने दो न ?"

"न-न, भाभी यातायात जो रुक जायेगा ?"

"यातायात कभी रुका भी है कहीं का ?"

"मुश्किल तो पड़ ही जाती है भाभी !"

"मुश्किल तो हरेक काम में होती है। लेकिन जरा जमुनाजी की ओर ध्यान से तो देखो।"

"देख तो रहा हूँ भाभी, बड़ी-बड़ी पछारें उठ रही हैं और लहरें ......।"

कुमार को रोकते हुए कान्ता बोली—"यह मेरे दिल से पूछो।"

"दिल तो तुम्हारा टुक-टुक कर रहा होगा घड़ी की तरह—वह क्या बतायेगा—तुम्हीं बताओ ?"

कान्ता समझ गई कि इससे कुछ भी ज्यादा कहना-सुनना भैंस के आगे बीन बजाने से अधिक लाभदायक नहीं है। इसलिये उसने लहरों

की बातें छोड़ कर पूछा—"एक बात बताओगे ?"

"एक नहीं, दो ?"

"अच्छा बताओ—मेरी ओर देख कर बताओ, कभी तुम्हारे दिल में भी बाढ़ आती है—पठारें उठती हैं ?"

"भला दिल में भी कभी बाढ आती है। अलबत्ता पेट की कहो तो मान भी लूँ। हाँ पेट में तो कभी-कभी पठारें उठा करती हैं मेरे। वह भी तब जब हाजमा खराब होता है।"

"तुम्हें तो सदा पेट की ही फिकर पड़ी रहती है। मैं दिल की पूछ रही हूँ—तुम पेट की बता रहे हो। अजीब जवाब है।"

"अच्छा अब दिल की बताऊँगा—पूछो ?"

"तुम्हारे दिल में कभी बाढ आती है।" कान्ता ने पुनः प्रश्न किया।

"नहीं—और तुम्हारे में ?" कुमार ने उलटा सवाल कर दिया।

"हर वक्त आती रहती है।"

"अब भी आ रही है ?"

"हाँ-हाँ, बड़े जोर से आ रही है कुछ मत पूछो।"

"और पठारें भी उठ रही होंगी ?"

"हाँ पठारें भी उठ रही है।"

"अच्छा यह भी बताओ कि नदी की बाढ़ में तो सांप सपोले और लक्कड़ बह रहे हैं, परन्तु तुम्हारी बाढ़ में क्या बह रहा है ?"

"अरमानों के तूफान हैं।" कह कर कान्ता गम्भीर हो गई।

"यह कैसे होते है भाभी ?"

इस बार कान्ता विवेक खो बैठी। अपना सिर कुमार के कंधे पर रख कर बोली—"कैसे बताऊँ तुम्हें—कहाँ तक पढ़ाऊँ तुम्हें ?"

"पढ़ाओ नहीं बताओ।"

"सुनो-सुनो—तुमने नदी की बाढ़ देख ली है न ?" कान्ता काँप रही थी।

"देख ली है।"

"कैसी लग रही है तुम्हें बाढ़?"

"बहुत बढ़िया।"

"मेरी तरफ मुँह करके बताओ।"

कुमार ने सीधे स्वभाव कान्ता की ओर गर्दन घुमाकर कहा--"बहुत बढ़िया।"

"बहुत बढ़िया?" और मैं कैसी लग रही हूँ अब?' कान्ता ने चिबुक पर हाथ रखकर कुमार की ओर देखा।

कुमार बोला—"यह तो मैं पहले ही बता चुका था। कहा था न, जब घर से चले थे। तुम तो भूल बड़ी जल्दी जाती हो।"

"जब की बात छोड़ो—अब की बात बताओ।"

"बहुत सुन्दर।" कुमार ने कह दिया।

कान्ता ने फिर पूछा—"सचमुच।"

"इसमें भी भला कोई झूठ बोलने की बात है।"

"यानी मैं आज तुम्हें बहुत सुन्दर लग रही हूँ।" कान्ता ने कुमार की आँखों में आँखें डाल कर पूछा।

कुमार बोला—"वास्तव में भाभी! तुम तो आज बहुत ही सुन्दर लग रही हो—जैसा परियों की कहानियों में लिखा रहता है।"

"तुम भी आज मुझे बहुत सुन्दर लग रहे हो कुमार!" कान्ता फिर आगे बढ़ी।

कुमार बोला—"यह तो भाभी मुँह छुआई की बात कह रही हो?"

"क्यों झूठ बोल रहे हो—मैंने तुम्हारा मुँह कहाँ छुआ है अब तक?"

"मैंने तो भाभी वैसे ही उपमा दे दी थी, तुम बुरा मान गयीं।"

"मैं बुरा क्यों मानने लगी—मैं तो सच्ची बात कह रही थी। कहीं सतूर म्हारी सूरत तो सदा मेरी आँखों में फिरती रहती है।"

"भला भाभी इतनी बड़ी सूरत और इतनी छोटी आँखें—कौन मान लेगा इस गप्प को ?"

"यकीन नहीं आया ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"अच्छा, यकीन नहीं आता तो देख लो मेरी आँखों में।"

कुमार ने कान्ता के सामने बैठकर उसकी आँखों में ध्यान से देखना शुरू किया। कान्ता और समीप खिसक आई। कुमार को कान्ता की आँखों में जैसे ही अपनी सूरत घूमती दिखाई दी। तैसे ही टकटकी लगाकर काफ़ी देर तक देखता रहा। बाद में खुश होकर बोला—"वाकई भाभी, मैं तुम्हारी आँखों में पहुँच गया हूँ।"

"कभी के······।" कहकर कान्ता ने आँखें बन्द कर लीं।

कुमार बोला—"आँखें क्यों बन्द कर लीं भाभी ?"

"इसलिए कि कहीं तुम निकल न भागो मेरी आँखों से।"

"लेकिन मैं तो निकल आया हूँ। लाना जरा फिर दिखाना खोलना पलक।"

"पलकें तो खुलती ही नहीं हैं।"

"क्या बिलकुल ही जाम हो गयीं भाभी ?"

"हाँ बिलकुल ही जाम हो गयीं।"

"लाओ तो मैं खोले देता हूँ।" कहकर कुमार ने कान्ता की एक आँख की पलक दोनों हाथों से पकड़ कर खोलनी शुरू की।

कान्ता ने हाथ पकड़ लिये। बोली—"लल्ला, पलकें हैं आँखों की, फूल की पंखुड़ियों-सी कोमल, लोहे के किवाड़ नहीं हैं। इतनी बेदर्दी से मत खोलो।" कहकर कान्ता ने स्वयं ही पलकें खोल दीं।

कुमार ने कुछ देर फिर अपनी सूरत कान्ता की आँखों में देखी।

अपनी सूरत देखकर जैसे ही कुमार ने गर्दन घुमायी । कान्ता ने कुमार का मुँह पकड़ लिया। बोली—"यह धोखेबाजी अच्छी नहीं लगती लल्ला ! हमारे नम्बर पर भाग चले । जरा हम भी तो देख लें कि हमारी सूरत भी तुम्हारी आँखों में दिखाई देती है या नहीं ?"

कुमार फिर मुड़ गया। इस बार कान्ता कुमार का कन्धा पकड़ कर बहुत देर तक उसकी आँखों में अपनी सूरत देखती रही। बाद में बोली—"तुम बड़े चोर निकले, मुझे अपनी आँखों में छिपाये कभी के फिरते हो और बताया आज तक नहीं ?"

कुमार बोला—"कसम भाभी, मुझे तो कतई पता ही नहीं चला कि तुम्हारी तस्वीर मेरी आँखों में कब खिंच गई। शायद तुम्हारे घर मैं कई बार गया हूँ इसलिये ऐसा हो गया होगा ?"

"बिना ध्यान से देखे कहाँ होता है ऐसा। जब किसी को ध्यान से देखो, तभी तो तस्वीर खिंचा करती है आँखों में।"

कुमार आश्चर्य से बोला—"भाभी जरा अब की बार और देखो। मेरी आँखों में कहीं गीता भाभी की भी तस्वीर न खिंच गई हो।"

अब कान्ता ने समझ लिया कि वास्तव में कुमार स्त्री-पुरुष के रिश्ते से बिलकुल अनभिज्ञ है। इसे अभी कुछ पता नहीं। कितनी ट्रेनिंग और देनी पड़ेगी। यदि कहीं अपनी भाभी से सारी बातें सुना दीं तो बदनामी मुफ्त में होगी। अतः प्रकट में बोली—"बात यह है लल्ला, असल में यदि किसी की भी आँखों में देखो तो अपनी सूरत उसकी आँखों में दीखने लगती है।"

"तब तो भाभी आपका यह आविष्कार बहुत लाभ की चीज है। यानी शीशे की तो इसमें कतई जरूरत ही नहीं रही। सामने किसी को भी खड़ा कर लो बाल ठीक कर लो, कमीज का कालर ठीक कर लो। मतलब यह है कि कुछ भी कर लो ?"

"हाँ-हाँ, कुछ भी कर लो। कालर भी ठीक कर सकते हो।"

कान्ता आगे बोली—"तुम आया तो करो। पता नहीं ऐसे-ऐसे कितने आविष्कार मुझे आते हैं, सब सिखा दूंगी तुम्हें।"

आँखों के आविष्कार के चमत्कार ने दिन छिपा दिया। कान्ता चौंकी। बोली—"चलते हो या अभी और जमते हो?"

"बस अब तो चलो ही भाभी!" कहकर कुमार उठ खड़ा हुआ।

चलते-चलते दोनों सिनेमाघर के पास आये। कान्ता ने पूछा—"क्या इरादा है?"

कुमार बोला—"इरादा तो अच्छा ही है भाभी, लेकिन कुछ दिनों से अपने से लक्ष्मीजी नाराज हैं।"

"टिकट मैं ले लूंगी।"

"लेकिन भाभी, मेरे पास तो अपने टिकट के भी पैसे नहीं हैं। मेरा टिकट भी तो तुम्हें ही लेना पड़ेगा—हैं इतने पैसे?"

कान्ता धीरे से बोली—"तुम्हारे लिए पैसे का क्या घाटा। कहो अभी जेब भर दूं?"

"तो चलो फिर देर क्या है?"

"नहीं लल्ला, देर बहुत हो जायेगी। किसी दिन, दिन में चलेंगे।" कहकर कान्ता ने पाँच रुपये का एक नोट कुमार की जेब में खिसका कर कहा—"जो तुम चाहो तो देख आना।"

अपनी आदत के मुताबिक पहले तो कुमार ने ना-ना की—"रहने दो भाभी! तुम कहोगी बिना पैसे के कुछ काम ही नहीं करता, इसलिए घर आता है। कह कर कुमार ने पैसे जेब में डाल लिये।"

"नहीं लल्ला, मेरा दिल ऐसा कभी नहीं सोचता। तुम तो इसी लिये आते हो क्योंकि मैं तुम्हें अच्छी लगती हूँ।"

कुमार के मुँह से निकल गया—"हाँ भाभी!"

घर में घुसते ही विनोद का माथा ठनका। चौका-चूल्हा ठण्डा पड़ा था। सारा घर ऐसा लग रहा था, मानों घर खखोड़ कर चोर अभी भागे हों। गीता का भी कहीं पता नहीं था। इस दृश्य को देखकर विनोद पहले तो सन्नाटे में आ गया। बाद में हिम्मत बाँधकर गीता को आवाज दी—"अजी कहाँ हो?" लेकिन जब विनोद की आवाज के जवाब में कोई जवाब नहीं आया तो वह झपटकर अन्दर के कमरे की ओर बढ़ा। सामने गीता कोपभवन आबाद किये पड़ी थी। विनोद ने समझा बुखार आ गया है। इसलिए धीरे से पलंग की पट्टी पर बैठते हुए बोला—"तबियत कैसी है?"

गीता ने इस बार भी जवाब न देकर करवट बदल ली। गीता को करवट बदलते देखकर विनोद समझ गया जाड़ा-बुखार कुछ नहीं है, आज तो कुछ और ही चढ़ा है। फिर भी हिम्मत बाँध कर पूछा—"आज तबियत कुछ खराब है क्या तुम्हारी?"

इस बार गीता उबल पड़ी। बोली—"जी नहीं, बहुत अच्छी है, बहुत ठीक हूँ। तुम्हें मेरी तबियत से क्या? तबियत उसकी पूछो जो तुम्हारी कुछ लगती है। मैं कौन लगती हूँ तुम्हारी?"

गीता के धाराप्रवाह भाषण को रोककर विनोद ने कहा—"आखिर हुआ क्या, कुछ पता तो चले?"

"चल गया सब पता। सौ दिन चोर के होते हैं, एक दिन साहू का भी होता है।"

"मैं तो कुछ भी नहीं समझा?" विनोद का आश्चर्य बढ़ रहा था। गीता की स्थिति इस समय 'न तू मेरा, न मैं तेरी' जैसी थी। कहने लगी—"तुम क्यों समझने लगे हो, अब मैं जो समझ गई हूँ।"

आवेश में आकर विनोद बोला—"पता नहीं कुछ दिन से तुम्हें क्या होता जा रहा है गीता! जब देखो तब तुनकी ही नजर आती हो। कभी मेरे देर से लौटने पर बिगड़ती हो, कभी किसी दूसरी बात पर।"

गीता बोली—"पहले तो मैं सोती थी, अब जागती हूँ। तुम देर से क्यों आते थे—आज पता चल गया है। आज तुम्हारी शराफत की सारी नकाब उतर गई है। बड़े भोले बन कर कहा करते थे—आज कल तो दफ्तर में काम बहुत रहता है, इसलिए देर हो जाती है।"

"तो इसमें झूठ ही क्या कहता था मैं ?"

"कसम खाकर कहते हो, सच कहता था ?"

"हाँ, कसम खाकर कहता हूँ।"

"अब भी झूठ बोल रहे हो। मन्दिर में मुलाकात करने नहीं जाते थे अपनी उस लगती-बगती से ?"

"मन्दिर में ·····।"

विनोद को बीच में ही रोककर गीता बोली—"हाँ-हाँ, मन्दिर में। जाते नहीं थे तुम मन्दिर में सजधजकर।"

मन्दिर तो जाता था और अब भी जाता हूँ। लेकिन यह लगती-बगती कौन है ?"

गीता का क्रोध यथापूर्व था। बोली—"यह मुझसे ही पूछ रहे हो कौन है ? मुझे पता है छिनाल कौन है ?"

"गीता ! तुम सदा बेसिर-पैर की बातें ही किया करती हो।" आजिज आकर विनोद बोला।

गीता ने जवाब दिया—"हाँ जी, मैं तो सदा बिना सिर-पैर की ही बातें करती रहती हूँ। आँखों के अन्धे और माथे के बिंदे तो वह बनाती है। दैय्या री दैय्या ! देवस्थान में भी ऐसी बातें करते शर्म नहीं आती लोगों को।"

"करता कौन है ? यह तो तुम्हारा नाहक भ्रम है।"

"हाँ भ्रम तो है ही। अब तक भ्रम ही था। होता कैसे न, कोई कल्पना करेगा कि देवस्थान में भी लोग धूर्तता करते हैं।"

"अरे जरा धीरे-धीरे तो बोलो ; कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?" विनोद ने गीता को समझाया।

"मुझे क्या किसी का डर पड़ा है ; जब तुम्हें ही शर्म नहीं आती तो मुझे क्यों हो ?" गीता चीख पड़ी।

"पहले यह तो बता दो मैंने बेशर्मी का काम किया कौन-सा है ?"

"यानी जो कुछ करते हो वे सब शर्म के ही हैं ?"

"और क्या, नहीं तो तुम बता दो एक भी कि तुमने यह काम बुरा किया।"

"तब बताओ तुम मन्दिर क्यों जाते थे ?"

"तुम क्यों जाती हो—पहले तुम बताओ ?"

"मैं तो देवदर्शन को जाती हूँ और तुम ?"

"मैं भी देवदर्शन को जाता हूँ।"

"फिर वही झूठ, अरे यों क्यों नहीं कहते कि अपनी चहेती के दर्शन करने जाता हूँ।"

"गलत बात है, बिल्कुल झूठ।"

"यानी तुम किसी को जानते ही नहीं ?"

"हाँ मैं किसी को नहीं जानता।"

"तो चिट्ठी किसको लिखा करते थे ?"

"कब लिखी चिट्ठी मैंने ?"

"अरे, न जाने कितनी लिखी होंगी—क्यों बनते हो।"

"मैंने एक भी नहीं लिखी, कसम ले लो अगर एक भी कार्ड या लिफाफा कभी खरीदा हो।"

कार्ड या लिफाफा खरीदने की जरूरत ही क्या थी। तुम लोगों ने तो आविष्कार ही नया कर रखा है ?"

"कौनसा, वह भी बता दीजिए ?"

"वह भी मुझे ही बताना पड़ेगा। जूतियों में चिट्ठियाँ रखो तुम, बताऊँ मैं, यह अच्छी रही।"

"गीता ! यह बिलकुल गलत बात है ; सफेद झूठ है।"

"मेरे पास सबूत है।"

"क्या सबूत है ?"

"दिखाऊँ सबूत, तब तो यकीन कर लोगे ?"

"हाँ शायद तब कर लूँ।"

"अच्छा तो लो।" यह कहकर गीता ने चिट्ठी निकालकर विनोद के हाथ में दे दी। बोली—"जरा जोर से पढ़ना ताकि मैं भी सुनलूँ।"

चिट्ठी पढ़कर विनोद हँस पड़ा। बोला—"तुम बड़ी भोली हो गीता ! यह चिट्ठी बनावटी है। अगर थोड़ी भी अक़्ल से काम लो तो पता चल जाय।"

गीता ने कहा—"बनाना किसी और को। अब तक मैं तुम्हारी बातों में आई, अब नहीं आने की। जाओ, जल्दी जाओ नहीं तो बेचारी आत्महत्या कर लेगी।"

"अच्छा बताओ, तुम्हें यह चिट्ठी कहाँ मिली ?"

"कुमार के जूते में।"

"डालने वाली ने उसके जूते में क्यों डाली ?"

"तुम्हारे जूते समझकर।"

"बस यहीं सोच लो। मैं आज अभी तक मन्दिर गया ही नहीं। तब उसने मुझे कब देख लिया और कैसे मेरे जूते समझ कर कुमार के जूतों में चिट्ठी डाल गई।"

"इसका क्या सबूत है तुम मन्दिर नहीं गए ? तुम गए, जरूर गए और उसने तुम्हें मन्दिर में भी जरूर देखा है।"

विनोद बोला—"खैर मन्दिर में न जाने का तो मेरे पास कोई सबूत नहीं। लेकिन ऐसी भाषा कोई किसको कैसे लिख सकती है ?"

"क्यों नहीं लिख सकती ?" गीता ने फिर पूछा—"तुम्हारे-हमारे पत्रों में भी तो कभी ऐसे ही लिखी जाती थी।"

"तुम्हारी-हमारी बात और है। तब तो अपनी सगाई हो चुकी थी,

इससे पहले कहाँ लिखी जाती थी ?"

"इससे भी कुछ तो वायदा किया ही होगा ?"

विनोद चिढ़ गया—"खाक किया है । जान न पहचान बड़े मियाँ सलाम !"

"बिना जान-पहचान के ही जब सलाम का यह हाल है तो जान-पहचान के बाद हमारा तो भगवान ही मालिक है ?"

"अरे भई मैं किसी को नहीं जानता । अपना दिमाग खराब मत करो न मेरा करो । कसम खिला लो, धर्म उठवा लो ।"

"यकीन कैसे हो जब तुम्हारा नाम साफ लिखा है ।"

"लेकिन गीता ! यह नाम मेरे अलावा शहर में और भी तो किसी का हो सकता है । पता नहीं कितने विनोद भरे पड़े होंगे यहाँ ।"

इस बार गीता असमंजस में पड़ गई । बोली—"हाँ, मैं यह मानती हूँ ।"

"मान गयीं ?"

"मान गयी ।" कहने को तो गीता ने कह दिया लेकिन सन्देह का अंकुर दिल में उगा ही रहा । उसका पूर्णरूपेण विनाश नहीं हुआ । मन ही मन कुछ निश्चय करके गीता ने कहा—"अच्छा मैं जल्दी खाना बनाती हूँ ।"

"अजी काहे को कष्ट करती हो, उस मन्दिर वाली से ही कह आता हूँ वही ले आयेगी आज !"

"बस-बस सुन लिया । कूद रहे होंगे पेट में चूहे ?"

"चूहे तो कूदकर कभी के भग गये—अबतो महज तुम्हारी बातें ही फुदक रही हैं ।"

"यों क्यों नहीं कहते चिट्ठी कूद रही है ?"

"वह तुम्हारे पेट में कूद रही है ।"

"मेरे तो पेट क्या तन बदन में दोपहर से आग लग रही थी जब से यह चिट्ठी मिली है ।"

"अब भी ठंडी पड़ी या नहीं ?"

"अब छोड़ो भी इस किस्से को, नाहक ही घर में कलह हो गई ।"

अब पुनः 'तू मेरा मैं तेरी' वाली स्थिति आ चुकी थी । खाना खाते समय विनोद ने पूछा—'तुमने राजरानी से जिक्र किया था क्या ? आज फिर उनकी खबर आई है कि नीता का विवाह इसी साल करना है । कोई लड़का तलाश करके पक्का करलें ।"

"कल ही किया था, लेकिन उसने तो दोनों भाइयों पर ही बात छोड़ दी ।"

कुछ सोचकर विनोद फिर बोला—"ठीक ही है । पहले तो जिसे विवाह करना है—उसे लड़की पसन्द कर लेनी चाहिए । इसीलिए मैंने अभी जिक्र नहीं किया ; राजेन्द्र के आने पर करूँगा ।"

"फिर दिखाया कैसे जाय, नीता को यहाँ बुला लें ?"

"नहीं-नहीं, कोई ऐसा उपाय सोचो जिससे लड़के को यह पता ही न चले कि विवाह के लिए उसे लड़की दिखा रहे हैं ।"

गीता बोली—"यह कौन मुश्किल काम है । कुछ दिन बाद मैं मायके जाऊंगी ही, मुझे लिवाने तुम स्वयं मत आना इसे ही भेज देना । इतने में नीता भी पहुँच ही लेगी घर ।"

जमुना जी से लौटकर कान्ता घर तो आ गई, लेकिन उसे लग रहा था मानो आधा शरीर वहीं रह गया हो । अतः पहले तो खाट पर कुछ देर सुस्ताई । सुस्ताने के बाद उठी और बड़े आइने के सामने खड़ी हो गई । अपनी सुन्दर सूरत पर स्वयं ही मोहित होकर बोली—

"वाकई लगती तो सुन्दर ही हूं, कुमार ही गलत क्या कहता था। लेकिन मेरी यह सुन्दरता······?" उसने स्वयं अपने से ही प्रश्न किया—"क्या यह जवानी इस बूढ़े खूसट की जान को रो-रो कर ही नष्ट होगी? नहीं-नहीं, इसने जो किया है, उसका जवाब वही है जो मैं करने जा रही हूँ। यह फक्त हुक्म का ग़ुलाम रहेगा मेरा।"

कान्ता बहुत देर तक शीशे के सामने खड़ी रही। बुदबुदाती रही—"यह छोकरा नहीं जानता कि औरत के दिल में भी बाढ़ आती है, उसके हृदय में भी पठारें उठती हैं। वह बेवकूफ तो बस नदियों की ही बाढ़ जानता है या उनमें बहते देखता है लक्कड़ और सांप-सपोले। अरमानों को नहीं देखता किसी के। पता नहीं कैसे जानेगा, कब जानेगा?"

कान्ता की विवेकहीन विचारधारा चलती रही—"आता भी तो कम ही है हमारे घर। पता नहीं गीता ने क्या घुट्टी पिला रखी है—"वहीं पड़ा रहता है।" कान्ता कांपी—"कहीं वह भी तो मेरी तरह······ही······कौन जाने किसी के दिल की बातें। चल जायगा पता इसका भी किसी न किसी दिन। उगलवा लूंगी सब बातें उसी से।"

शीशे के सामने से हटकर कान्ता फिर पलंग पर जा पड़ी। यहां अधिक देर तक उसका मन नहीं लगा। वह फिर उठी और पागलों की तरह कमरे के चक्कर लगाने शुरू किए। बोली—"इस सुहाग से तो रंडापा भला। लोग क्या समझते होंगे मेरे साथ इस बुड्ढे खूसट को देखकर? यही न कि बाप-बेटी जा रहे हैं।"

घुमाई करते-करते कान्ता की दृष्टि एक अलमारी पर जा कर रुक गई। इस अलमारी में क्या हो सकता है? अलमारी के पास खड़ी होकर कान्ता ने सोचा। लालाजी कभी-कभी इसके पास बड़ी देर तक खड़े रहते हैं। एक दिन पूछने पर कहते थे गला साफ करने की मिठाई है। कुछ डिबियों में जूते की पालिश है।

वहाँ से कुछ सोचकर कान्ता लौट पड़ी । सोचने लगी—"याद ही नहीं रहा, आज कुमार का गला भी कुछ खराब-खराब-सा नजर आता था । उसे ही थोड़ी सी मिठाई दे देती । वाह, दवाई की दवाई, मिठाई की मिठाई । वह भी क्या याद रखता, कल बुला कर दूंगी जरूर ।"

लौटकर कान्ता फिर पलंग पर पड़ गई । पड़े-पड़े कान्ता की कब आँखें लगीं, कुछ पता नहीं । उसे पता तब चला जब उसकी आँखों पर लगा मानों किसी ने छोटी-छोटी टोकरियाँ रख रखी हों ।

कान्ता चौंक कर उठ बैठी । देखा उसके पलंग की पट्टी पर बैठे खैरातीलाल अधीर से हो रहे हैं ।

"कहिए ?" कान्ता ने तनिक खिसाई से उठकर पूछा । खैराती-लाल बोले—"थक गई होगी—आराम करलो । शायद तुम कोई स्वप्न देख रही थीं ?"

"तुम्हें कैसे पता चला ?"

"तुम बाढ़-बाढ़ । बांध, पहाड़.........उछलकूद, पता नहीं क्या कह रहीं थीं । मैंने सोचा आँखों पर हाथ रख दूँ, ताकि डर न जाओ ।"

"हाँ, इससे ज्यादा न तुममें अकल है, न शक्ति ।"

"क्यों जी, मैंने क्या बुरा कर दिया । एक तो डरने से बचा लिया और उल्टी तोहमत । यह देखो तो क्या बढ़िया नाईलोन की साड़ी लाया हूँ तुम्हारे लिये ।"

कान्ता ने साड़ी खोलकर देखी । शरीर को लगा कर देखी । बोली—"हाँ लालाजी है तो बहुत बढ़िया ।"

लालाजी खुश होकर बोले—"नया माल आज ही आया है, उसमें से पहले ही छांट कर रख ली थी तुम्हारे लिये ।"

"आप बहुत अच्छे हैं ।" कान्ता ने साड़ी की तह बनाते हुए मुस्करा कर लालाजी की ओर देखा । लालाजी नकली दांतों को चमका

कर बोले—"अजी मैं अच्छा कहाँ हूँ तुम्हारे आगे। अच्छी तो तुम हो। सबज परी-सी बन रही हो। मैं तो तुम्हारे पैरों की धूल भी नहीं।"

"नहीं लालाजी, तुम तो मेरे सरताज हो। ऐसी बातें क्यों कहते हो?"

सरताज बनकर लालाजी और फूल गये। बोले—भारतीय स्त्रियों का आदर्श वाकई यही रहा है। पति तो उसका परमेश्वर रहा ही है सदा।"

कुटिलता से कान्ता बोली—"मैं भी तो तुम्हें यही समझती हूँ। दुनिया भले ही बाप-बेटी समझे।"

लालाजी बाप-बेटी शब्द से कट गये। किन्तु प्रत्यक्ष में बोले—"अजी दुनिया के मारो गोली—वह तो सबसे जलती है। उसकी तो परवाह ही मत किया करो।"

"अजी, दुनिया की परवाह तो लालाजी करनी ही पड़ती है।"

"बेकार है दुनिया की परवाह, जितनी करोगी—पापड़ बेलोगी, नहीं करोगी, आनन्द करोगी।" अपनी बात को और पुष्ट करते हुए लालाजी ने कहा—"मुझे ही देख लो न, दुनिया की परवाह करता तो आज तुम यहाँ न होतीं और ही किसी उल्लू के पट्ठे के घर होतीं।"

"मगर तकदीर में तो मेरी तुम लिखे थे।" कान्ता की कुटिलता जारी थी। नारी-हृदय के व्यंग्य-बाण थे। लालाजी इस मामले में बुद्धू बने हुए थे। अतः बोले—"हमारी-तुम्हारी जोड़ी जो बदी हुई थी।"

"वाकई—जोड़ी भी क्या सुन्दर है, लाखों में एक है।"

"और क्या, देख लो जब मैं चुन्नटदार धोती पहन कर चलता हूँ तो गली में लोग मेरे कन्धों को देखते ही रहते हैं।"

"मर्द के कन्धे मजबूत ही अच्छे लगते हैं लालाजी।"

'अभी क्या पूछती हो मेरे कांधों का हाल, जवानी में देखे होते मेरे कन्धे। ऐसे चोड़े लगते थे कि लोग समझते—कन्धे नहीं, लालाजी ने कन्धों के पास कुतिया के दो पिल्ले छिपा रखे है।"

अपनी बात समाप्त करके लालाजी को कुछ होश आया। सोचा कि उन्होंने जवानी की बात कह कर कुछ अच्छा नहीं किया। और यही बात हुई भी।

कान्ता तुरन्त बोली—"अभी तुम कौन बुड्ढे हो। तुम्हारे सर की कसम लालाजी मुझे तो कभी-कभी तुम्हारी उम्र उस छोकरे कुमार से भी कम ही लगने लगती है।"

लालाजी अब भी नहीं समझे। बोले—"ऐसी बात तो नहीं है। हूँ तो मैं उसके बाप के बराबर। लेकिन मेरा शरीर खाये-पिये का है—आजकल के लौंडों को क्या खाने को मिलता है। मेरे लिये घर पर एक बकरी बंधी रहती थी। बकरी का दूध पिया है मैंने—बकरी का।"

"तभी आप अब भी उसके बच्चे से लगते हैं।"

कान्ता के इस जवाब पर लालाजी चिढ़ गये बोले—'तुम तो पढ़ी-लिखी हो—ऐसी उपमा हमें अच्छी नहीं लगतीं तुम्हारे मुँह से।''

हँस कर कान्ता बोली—"माफ करो—आइन्दा और किसी जानवर को उपमा के लिए चुन लूगी। तुम तो मेरे सरताज, नाहक ही बुरा मान गये।"

"जानवर को ही क्यों चुनती हो उपमा के लिये ?"

"इसलिये कि आदमी की उपमा तो आदमी से वही दे सकता है जो दिन-रात आदमियों को देखता फिरे, उन्हें जानता हो। और मैं केवल देखती हूँ सूरज-चन्दा, या यह दीवारें या आप को बस। या कभी कोई पक्षी।"

लालाजी की बात समझ में आ गई बोले—"अच्छा, छोड़ो इन

बातों को यह बताओ आज जमुना पर क्या-क्या देखा। दिल कुछ बहला भी या नहीं ?"

"सच बताऊँ ?"

"सब ही बताओ—झूठ बोलने की क्या जरूरत है।"

"तब तो लालाजी बाढ़ देख कर दिल और बिगड़ गया।"

"बिगड़ गया ?"

"हाँ, बिल्कुल।"

"क्यों भला ?" लालाजी ने आश्चर्य से पूछा। कान्ता बोली—"बाढ़ देख कर ऐसा लगता था—मानों मेरे दिल में ही बाढ़ आ रही हो—पछारें देख कर ऐसा लगता था—मानो हृदय में उठ रही हों मेरे।"

लालाजी कुछ सोच कर बोले—"यह असल में मौसम की खराबी है। इन दिनों हाजमा खराब हो जाता है और कोई खास बात नहीं। जरा वहीं लेट जातीं।"

कान्ता ने अपने होंठ काट लिये। परन्तु फिर भी संभल कर बोली—हाँ जब दिल ज्यादा बिगड़ने लगा तो मैं वहां ज्यादा देर ठहरी ही नहीं।"

"तुमने बड़ा ही अच्छा किया। कल से मै तुम्हें कुछ धार्मिक किताबें भी लाकर दिया करूँगा ताकि तुम्हारा तन और मन दोनों ही पवित्र रहें।"

"क्या सुन्दर बात कही लालाजी ! बात भी ठीक है, जैसा पवित्र शरीर भगवान् ने दिया है—वैसा ही उसके घर जाय। भगवान् ने चाहा तो आपकी कृपा से यह गौरव तो मुझे मिल ही जायेगा।"

"ऐसे भी गौरव हममे तुम्हें न मिलेंगे तो और किससे मिलेंगे ? मेरा इरादा तो तुम्हें अगले साल बद्रीनाथ ले जाने का भी है।"

"सुना है वहां से स्वर्ग भी थोड़ी ही दूर रह जाता है लालाजी ! है न ? यही सौ-पचास गज ही ऊपर और होगा ?"

"तू तो पागल है। अरे आत्मा का स्वर्ग तो वहीं है। शंकर भगवान् का क्षेत्र वहीं तो है।"

"अच्छा जी, तब तो जरूर चलूँगी—अब जरा चल कर रोटी बना दूँ। आपको भूख लगी होगी।"

"नहीं नहीं, तुम दो परांवठे अपने ही लिए डाल लो।"

"आपने क्या व्रत रख रखा है?"

"यूं ही पेट में कुछ खराबी-सी है। दूकान पर दो पैसे के छोले लेकर खा लिए थे।"

कान्ता उठी। धीरे से बोली—"जहर लेकर नहीं खा लिया" और रसोईघर की ओर चली गई।"

कुमार कान्ता को रास्ते में छोड़ कर जिस समय अपने घर आया, राजरानी खाना बना रही थी। कुमार को देखते ही बोली—"यहाँ आओ लल्ला, सूरत तो तुम्हारी यह बता रही है कि दक्षिणा अच्छी मिली है। क्या पाया?"

"पाँच रुपये भाभी!" कुमार कहता हुआ राजरानी की तरफ आया। बोला—"रुपयों कि बात छोड़ो भाभी, लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि कान्ता भाभी ने एक ऐसी अद्भुत बात का आविष्कार किया है जिसे तुम तो शायद जिन्दगी भर भी न जान पातीं।"

राजरानी चकराई। पूछा—"ऐसे कौन से जादू की खोज की है उसने जिसे कोई जानता ही नहीं।"

कुमार ने कहा—"अरे कुछ मत पूछो भाभी! कमाल कर दिया।

बेमिसाल कान्ता भाभी की सूझ है, बड़े फायदे की चीज है।"

"बड़े फायदे की चीज ?"

"हाँ-हाँ, बड़े फायदे की और मजा यह है कि हम सबके पास है भी। परन्तु हम उससे लाभ उठाना आज तक नहीं जानते थे।"

"ऐसी क्या चीज है, जरा बताओ तो—हम भी फायदा उठाने लगेंगे ?"

कुमार बोला—"हाँ क्यों नहीं, उठाना ही चाहिये। यह समझो भाभी कि घर में शीशे की तो कोई जरूरत ही नहीं—शीशे का खर्च बिलकुल बच जाता है क्योंकि भाभी का बताया शीशा ऐसा मजबूत है जो न कभी टूटता है, न फूटता है और हर समय आदमी के साथ रहता है।"

"तब तो लल्ला बहुत लाभदायक बात है।"

"हाँ, इसीलिए तो कह रहा हूँ कि उनका यह आविष्कार संसार भर के लिये बड़ा लाभदायक है। उनकी खोज वास्तव में एक अद्भुत खोज है—बड़ा अच्छा दिमाग है कान्ता भाभी का तभी तो ऐसी बारीक बात उनके दिमाग में आ गई।"

"हाँ दिमाग तो उसका तेज है। लेकिन, उस आविष्कार के बारे में तो बताओ वह क्या है, उसमें कितना खर्च आता है या कितना परिश्रम करना पड़ता है ?"

कुमार बोला—"एक छदाम भी खर्च नहीं आता और न ही परिश्रम करना पड़ता है। बस जरा-से अभ्यास की जरूरत है—जो चाहे कर सकता है—लाभ उठा सकता है।"

"ऐसी बात है।" राजरानी का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। कुमार ने कहा—"और क्या, अभ्यास करने के बाद बिना शीशे के ही चाहे बालों को ठीक करलो, कमीज के कालर को ठीक करलो। दिल में आये गले में टाई बाँध लो।"

"अभ्यास कैसे किया जाता है ?" राजरानी ने पूछा।

कुमार ने पूछा—"बोलो सीखोगी ?"

"हाँ, जरूर सीखूँगी ?"

"अच्छा पहले मिठाई खिलाओ। इतनी फायदे की बात मुफ्त कोई नहीं सिखाता।"

"तुमने भी कान्ता को मिठाई खिलाई होगी ?" राजरानी ने पूछा।

"नहीं मैंने तो नहीं खिलाई। उन्होंने तो मुझे यह विद्यादान नि:शुल्क ही किया है।"

"तब तुम ही शुल्क क्यों लेते हो ?"

"बात यह है भाभी, वह तो मालदार मास्टर है और मैं हूं गरीब छात्र। गरीब छात्र ट्यूशनों से ही कमाते हैं ?"

"लेकिन, मैं पढ़ कहाँ रही हूँ—एक बात सीख रही हूं।"

"वह भी है तो विद्या ही। पढ़ो, सुनो, या सीखो बात एक है। रूप अलग-अलग हैं।"

विवाद समाप्त करते हुए राजरानी ने कहा—"अच्छा मंजूर है, मगर शर्त यह है कि अगर तुम्हारी बात लाभदायक नहीं हुई तो एक धेला भी नहीं दूँगी ?"

"आखिर जमा रखो भाभी, सीखते ही दुआएँ न देने लगो तो कहना मुझे ही नहीं कान्ता भाभी को भी दुआएँ दोगी।"

"अच्छा, बोलो कब सिखाओगे ?" राजरानी ने पूछा।

"अभी दो मिनिट में, सारा मामला ही दो मिनिट में समझ में आ जाता है।" कुमार ने कहा।

"मैं तैयार हूँ।" रोटी बेलते हुए राजरानी ने कहा।

राजरानी के पटरे के पास बैठता हुआ कुमार बोला—"बस, जरा मुँह इधर की ओर करलो भाभी !"

"तुम्हारी तरफ को, बैठी ही रहूँ या खड़ी हो जाऊँ ?"

"बैठे-बैठे ही काम चल जायेगा, बस जरा मुँह ही करलो मेरी तरफ।"

राजरानी ने कुमार की ओर गर्दन घुमाई। कुमार बोला—"बस ठीक है। अब मैं जैसा कहूँ तुम वैसा ही करना।"

"अच्छी बात है—बोलो क्या करूँ?"

"तुम यह करो भाभी, मेरी ओर इस तरह देखो जैसे मैस्मिरेज्म वाले किसी निशान की ओर देखते हैं।"

राजरानी ने कुमार की ओर देखा। देखकर बोली—"कुछ तो नहीं दिखाई देता?"

"तुम्हें कौन समझाये भाभी! अरे ऐसे क्या खाक दिखाई देगा, जैसे तुम देख रही हो?"

"तो कैसे दिखाई देगा, जैसे कहो—करूँ?"

"मेरी आँखों की तरफ देखो, और जरा खिसक आओ न पास।"

"लो अब भी कुछ दिखाई नहीं देता।"

कुमार ने कहा—"ऐसे नहीं, अपनी आँखों का कन्क्शन बिल्कुल मेरी आँखों से मिलाओ। जब दोनों के कन्कशन मिल जायें, तब बताना क्या दिखाई दिया तुम्हें?"

"अच्छा, तो आज कान्ता ने तुम्हें आँखों का कन्कशन मिलाना सिखाया है?"

"हाँ-हाँ, और क्या। जरा तुम भी मिलाओ तो कन्कशन, नाहक ही दिमाग चाटे जा रही हो। नहीं सीखना है, मना करदो। मेरा समय क्यों बर्बाद कर रही हो।"

"बस-बस सीख लिया। अपनी विद्या तुम अपने पास ही रखो।" राजरानी हँस कर बोली।

कुमार ने कहा—"हँसने की बात नहीं है भाभी, जरा ट्राई करके देखो तो!"

इस बार राजरानी मान गई। उसने कुमार की ओर ध्यान से देखा।

कुमार ने पूछा—"दिखाई दे रहा है तुम्हें कुछ मेरी आँखों में ?"

"हाँ, अपनी ही सूरत दिखाई दे रही है तुम्हारी आँखों में।"

"शाबाश, विद्या पक्की ! जरा ऐसे ही बैठी रहना। मैं भी अपनी सूरत तुम्हारी आँखो मे देख लूँ—झूठ तो नहीं बोल रही हो ?"

"सच बोल रही हूं—लो बैठी हूँ देख लो।"

राजरानी की आँखों में अपनी सूरत देखकर कुमार बोला—"हाँ, अब मामला पक्का हो गया। कान्ता भाभी का आविष्कार सच्चा।" आविष्कार का महत्व समझाते हुए कुमार आगे बोला—"जब कभी घर में शीशा न हो और तुम्हें बाल वगैरा ठीक करने हों—झट से किसी को अपने आगे खड़ा कर लिया—आँखों का कनक्शन मिलाया और बाल ठीक कर लिये।"

कुमार के इस नये आविष्कार से राजरानी के दिल में एक हलचल सी मची। उसे कान्ता पर क्रोध आया कि ऐसे लड़कों के सामने भी कहीं ऐसी बातें कही जाती हैं। किन्तु यह सोचकर उसे संतोष हो गया कि देवर-भाभी का रिश्ता है, दिल्लगी के तौर पर इस आविष्कार को चमत्कार के रूप में वह दिखा बैठी। अतः प्रकट स्वर मे बोली—"हाँ बाबू, जब ऐसी जरूरत पड़ा करेगी तब तुम दोनों भाइयों में से किसी को सामने खड़ा कर लिया करूँगी।"

राजरानी के विचारों को और साफ करते हुए कुमार बोला—"हम दोनो में यदि कोई न हो तब भी कोई बात नहीं भाभी! आँखों का कनक्शन तुम किसी से भी मिला सकती हो। तुम्हारी सहेलियाँ ही काफी आती रहती हैं—बैठा लिया किसी को भी अपने आगे।"

"और क्या कह रही थी कान्ता ?" बात खोदने की उत्सुकता फिर राजरानी के दिल में जगी।

कुमार बोला—"वाक् के विषय में प्रश्न कर मेरा इम्तहान ले रही थीं।

लेकिन ऐसे सबक तो अपने कितने ही रटे पड़े थे। लिहाजा अच्छे नम्बरों से उसमें भी पास हुए।"

अपनी बात का सिलसिला आगे बढाता हुआ कुमार बोला—"मगर भाभी, न जाने लोग तुम लोगों को इतने घूर-घूर कर क्यों देखते हैं। इसलिए मेरा मन तुम लोगों के साथ जाने को नहीं करता।

"सवेरे गीता भाभी के साथ मन्दिर गया। लोगों से पीछा छूटा तो भिखमंगे आ चिपटे।"

"वह भी घूर-घूर कर देख रहे थे क्या ?" राजरानी ने हँस कर पूछा।

कुमार ने बताया—"घूर-घूर कर तो नहीं देख रहे थे, लेकिन उनकी बिल्कुल अकल ही मारी हुई थी।"

"यानी ?" राजरानी को कुमार की बातों में आनन्द आ रहा था कुमार मौज में आकर सुना रहा था—"यही कि पता नहीं हम दोनों को समझ ही क्या रहे थे वह लोग।"

"कैसे जरा पूरी बात बताओ।"

मुझसे कह रहे थे—"तेरी सबज परी-सी बहू बनी रहे—दे जा, अपने हाथ से चार पैसे दे जा।" और गीता भाभी से कह रहे थे—"तेरी चन्दा चकोरी-सी जोड़ी बनी रहे—दे जा, भगवान् तुझे बेटा देगा—दे जा।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर वही हुआ जो आप लोग किया करती हैं। उल्टी अक्ल होती है न। इतने पर भी भाभी ने एक अठन्नी उन्हें दे दी और कुछ पैसे बाँट दिये।"

"अच्छा और क्या हुआ ?"

"बाद में उन्हें लोगों की भीड़ में से मन्दिर से निकालना मुश्किल पड़ गया। जिसे देखो वही सट कर चलना ही पसन्द करता था।"

"मेलों-ठेलों में ऐसा ही होता है लल्ला !" कह कर राजरानी ने बात बदली। बाद में राजरानी रात भर चिट्ठी के बारे में सोचती रही। उसके दिल में चिट्ठी का परिणाम क्या निकला ? गीता और विनोद में कैसी झड़प हुई ? यह सब जानने की उत्सुकता थी। अतः दिन निकलने पर कुमार से बोली—"लल्ला खाना खाकर गीता के घर की ओर चक्कर लगा आना। पूछ आना कुछ मँगाना हो तो।"

"और कान्ता भाभी के यहाँ भी होता आऊँ ?"

"हो आना वहाँ भी या फिर किसी समय चले जाना।"

*

दोपहर को बारह बजे कुमार गीता के घर की ओर रवाना हुआ। विनोद दफ्तर जा चुका था। गीता आँगन में बैठी बर्तन साफ कर रही थी। कुमार को देख कर बोली—"आओ लल्ला !"

"आया भाभी।" कहकर कुमार पास ही खाट पर बैठ गया। गीता ने कुमार के बैठने पर पूछा—"खाना तैयार है, खा लो।"

"खा कर ही आया हूं भाभी।"

"अरे कभी रूखा-सूखा हमारे घर भी खा लिया करो।"

"यह भी घर तुम्हारा ही तो है भाभी। दूसरे जब भूख होती है तो स्वयं मांग कर खा लेता हूँ।"

"हमने तो तुम्हारी शाम को भी बहुत इन्तजार देखी—सोचा घूमते-घामते हमारे घर भी चले आओगे।"

"शाम कहीं, घूमने गया ही नहीं भाभी। कान्ता भाभी को जमुना जी से लौटा कर लाया था तो बत्तियाँ सभी जल गयी थीं।"

"कान्ता जमुना पर क्या करने गई थी ?" चौंक कर

गीता ने पूछा ।

कुमार बोला—"गई तो नदी की बाढ़ देखने थीं । लेकिन भाभी, उन्होंने वहाँ मुझे एक ऐसी विद्या सिखाई कि कुछ न पूछो । सुनो तो कहो वाह, क्या कमाल है ?"

"ऐसी क्या विद्या सिखा दी ?" गीता की उत्सुकता जगी ।

कुमार ने कहा—"बड़े फायदे की है भाभी, काफी पैसों की बचत हो जाती है घर में ।"

"तब तो बड़ी अच्छी बात है ."

"हाँ-हाँ, बहुत अच्छी । ऐसी बात की जानकारी तो घर-घर होनी चाहिये । बड़ी सुन्दर खोज है कान्ता भाभी की ।"

"हमें नहीं बताओगे ?" गीता ने पूछा ।

कुमार बोला—"बताना क्या उसे तो विद्यार्थी को सिखाना पड़ता है । परन्तु मुझे तो आश्चर्य यह है कि तुम इतनी बड़ी हो गयीं, लेकिन तुम्हें आज तक भी पता नहीं ?"

"होती हैं बहुत सी बातें ऐसी जो हरेक को न आकर किसी-किसी को ही आती हैं ।"

"खैर यह बताओ कि सीखना चाहती हो कि नहीं उस विद्या को ?"

"हाँ, सीखना तो अवश्य चाहती हूँ । हाथ धो लूँ जरा अपने ।"

"अरे नहीं भाभी ! हाथ धोने की जरूरत नहीं, वह हाथों से नहीं सीखी जाती । तुम जरा मेरी ओर को गर्दन करके बैठो । वह तो आँखों से सीखी जाती है ।"

गीता ने गर्दन कुमार की ओर घुमाई । कुमार बोला—'बस, रेडी हो जाओ ।"

"वह कैसे ?"

"यानी और कहीं न देख कर सिर्फ मेरी ओर देखो ।"

"देख तो रही हूँ और कैसे देखूँ ?"

"ऐसे नहीं । इस तरह अपनी आँखों का कन्वशन मेरी आँखों से

मिला लो जिस तरह बिजली के स्विच से लट्टू का मिलता है।

"क्या मतलब ?" गीता चकराई।

कुमार बोला—"मतलब पूछना पीछे। पहले तुम जरा अपनी आँखों का कनक्शन मेरी आँखों में मिला तो लो।"

"आखिर होना क्या है ?"

"होना यह है कि मेरी आँखों में तुम्हें अपनी तस्वीर घूमती दिखाई देगी।"

"मेरी तस्वीर ?" गीता का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। कुमार कुढ़ रहा था। बोला—"तुम भी कैसी मंद-बुद्धि भाभी हो जो जरा-सी बात भी नहीं समझी। ऐसी बातें तो इशारे से ही समझ लेनी चाहियें।"

"कुछ समझ में भी तो आये ? मेरी समझ में तो खाक भी नहीं आया ?"

"राजरानी भाभी भी पहले ऐसा ही कह रही थीं। जब तक कनक्शन नहीं मिलाया था। जब कनक्शन मिल गया लगीं तारीफ़ें करने।"

"इसका मतलब यह है कि कान्ता ने तुम्हें जमुना जी पर आँखों का कनेक्शन मिलाना सिखा दिया ?"

"हाँ-हाँ, अभी तो तुम देखना और क्या-क्या सिखायेंगी वह मुझे।"

"बेशक। लेकिन तुम सीखोगे ?" गीता ने आश्चर्य प्रकट किया।

कुमार बोला—"क्यों नहीं, सीखूँगा। सीखकर और लोगों को सिखाऊँगा। मैंने इस विद्या को आते ही भाभी को सिखा दिया।"

"बड़ा अच्छा किया—उन्हें भी नहीं आती होगी यह विद्या ?"

"बिलकुल नहीं। वह भी पहले तुम्हारी तरह ही कोरी थीं।"

"अब तो सीख गईं ?"

"हाँ, सीख गईं।"

"तुम भी सीख लो। लो मिलाओ शर्ट कन्क्शन फिर देखो तमाशा।"

कुमार ने मास्टर की तरह फिर गीता को समझाया—"तब यह होगा कि तुम शीशे की आवश्यकता भाई साहब की आंखों से पूरी कर सकती हो और वह भी तुम्हारी आँखों का कन्क्शन मिलाकर शीशे का काम ले सकते हैं।"

"समझ गई मैं।" झेंपती हुई गीता बोली।

कुमार ने कहा—"अगर अब भी न समझी हों तो फिर एक बार समझ लो। अभी तो मैं यहाँ बैठा हूँ—मेरे सामने ही ट्राई कर लो।"

"मैं तुम्हारा मतलब समझ गई। आगे यह बताओ और क्या-क्या बातें हुईं तुम्हारी कान्ता से?"

गम्भीर होकर कुमार बोला—"कोई खास बात तो और हुई नहीं लेकिन बाढ़ के लिए वह पूछ रही थीं।"

"क्या?" गीता की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। कुमार बोला—"पूछ रही थीं कि तुमने कभी बाढ़ देखी है? मैंने बता दिया कि गंगा की देखी है।"

"और?"

"लहरें देखी हैं वह जो दिल में उठती हैं। यह भी उन्होंने पूछा था। लेकिन मैंने उनकी भूल सुधार दी। बता दिया भाभीजी यूँ पूछो कि पठारें भी देखी हैं या नहीं?"

"ठीक ही जवाब दिया तुमने। और क्या पूछा?"

"पूछने लगीं—मैं कैसी लगती हूँ?"

गीता ने कुमार का उत्तर सुनने के लिए अपना सांस रोक लिया। कुमार ने कहा—"मैंने कह दिया बहुत बढ़िया।"

एक घण्टे तक घुमा फिराकर गीता जमुना की बातें पूछती रही। कुमार बताता रहा।

बातों के इस सिलसिले को समाप्त करके गीता ने कुमार से पूछा—

"एक काम हमारे कहे से करोगे लल्ला ?"

"जरूर करूँगा भाभी, क्योंकि तुम्हारे काम तो सारे लाभदायक ही होते हैं।"

"लाभदायक तो वह भी है। परन्तु शर्त यह है कि उसकी खबर किसी को न हो।"

"नहीं होगी।" विश्वास की मुद्रा में कुमार बोला।

"तुम्हारी भाभी को भी नहीं ?"

"उनको भी नहीं होगी।"

"कसम खाओ।"

"तुम्हारे सर की कसम, काम बताओ ?"

"कुछ नहीं। घूमने-फिरने का काम है!"

"बताओ तो सही कहाँ घूमना-फिरना होगा ?"

"बस, यही कुछ देर के लिए एक जगह जाना पड़ेगा रोजाना।"

"आजकल तो छुट्टी है—तुम चाहो दिन भर घुमाओ।"

"नहीं-नहीं कुल दो घण्टे। लेकिन लोगे क्या ?"

"कुछ भी दे देना भाभी, या कुछ भी मत देना। लेकिन काम तो बताओ।"

गीता आहिस्ता से बोली—"ध्यान से सुनो लल्ला! देखो तुम्हें जेब-खर्च दो रुपये रोज दिया करूँगी। तुम चार बजे बाबू जी के दफ्तर पर पहुँच जाया करो और शाम को जब पांच बजे वह दफ्तर से चलते हैं, तब कहाँ कहाँ जाते हैं, किस-किस से बातें करते हैं, उसकी मुकम्मल रिपोर्ट मुझे दूसरे दिन दे दिया करो। समझ गये न ?"

"समझ गया भाभी! यानी मुझे भाई साहब के ऊपर आपने जासूस नियुक्त करना है ?"

गीता और भी आहिस्ता से बोली—"हाँ लल्ला, अब तुम यह बताओ, दो रुपये जेब खर्च कम तो नहीं है ?"

कुमार ने अनमने मन से कहा—"ठीक है भाभी! लेकिन, भाभी

जासूस का काम जरा कठिन होता है। देखो न, गाई साहब दफ्तर से निकल कर किसी टैक्सी में बैठकर कहीं चल दिये या और किसी सवारी में बैठ कर कहीं चल दिये, तब तो पीछा करना कठिन ही हो जायेगा ?"

गीता ने कहा—"ऐसे मौके पर जो तुम्हारा अतिरिक्त खर्च हुआ करेगा—"मैं दे दिया करूँगी। लेकिन बात बस तुम और मुझ तक ही सीमित रहे।"

"अरे तुम यकीन रखो भाभी, चिड़ियों तक को पता नहीं चलेगा। अब तो यह बताओ कि अपनी इस ड्यूटी को कब से सँभालूँ ?"

"आज से ही। यह लो अपना शुल्क एडवान्स में।" कह कर गीता ने दो रुपये कुमार के हाथ पर रख दिए।

कुमार रुपये लेकर बोला—"मैं ठीक टाइम पर दफ्तर के पास लग जाऊँगा।"

"हाँ, जरा होशियारी से काम करना।" गीता ने फिर समझाया।

"तुम देखना मेरा काम। एक-एक कदम की रिपोर्ट दूँगा रोजाना भाभी।" कहकर कुमार चल दिया।

आँखों का कनफशन और जमनाजी की अन्य बातें जो कुमार ने गीता को बताई थीं, उसके पेट में बराबर फुदक रही थीं। वह चाहती थी कि उन्हें आज ही जा कर राजरानी को बता दिया जाय। अतः चार बजे कुमार विनोद के दफ्तर को जासूसी के लिए अपने घर से चला और गीता राजरानी से मिलने चली।

राजरानी के सामने दार्शनिकों की भाँति बैठकर गीता ने कहा—

"कुछ सुना दीदी ?"

चौंककर राजरानी ने पूछा—"क्या हुआ गीता ?"

गीता बोली—"तुम तो ऐसे पूछ रही हो दीदी जैसे कुछ पता ही नहीं है ।"

"सचमुच मुझे कुछ पता नहीं गीता !"

"यह भी पता नहीं, कल चार बजे कुमार कहाँ गया था ?"

"हाँ, यह पता है । कांता को जमनाजी की बाढ़ दिखाने ले गया था ।"

"और कुछ पता नहीं ?"

"और किसी खास बात का पता नहीं ।"

गीता ने गम्भीर होकर कहा—"दीदी ! कांता जमनाजी की बाढ़ देखने नहीं ले गई थी कुमार को । वह तो अपनी बाढ़ दिखाने ले गई थी ।"

"यह तुमने कैसे जाना गीता ?"

"जाना ऐसे कि पहले तो उसने कुमार को आँखें मिलानी सिखलाईं और बाद में पूछा—तुम्हारे दिल में भी कभी ऐसी लहरें उठा करती हैं ?"

राजरानी बोली—"आँखों के कनक्शन की बात तो उसने मुझे बताई थी । लेकिन लहरों और घटाओं का जिक्र नहीं किया मुझसे उसने ।"

"वह मुझसे कर दिया ।" गीता कहती रही—"मुझसे भी कहाँ करता, वह तो मैं खोद-खोदकर उससे पूछती रही । छोकरा है उगल गया ; वरना हजम ही थी ।

राजरानी ने कहा—"आखिर है तो वह भी उसकी भाभी ही । दिल्लगी कर रही होगी । ऐसी बातों के लिए अधिक सोचना खोपड़ी पर पानी के भरे घड़े रखना ही है गीता !"

गीता को राजरानी का जवाब जँचा नहीं । कहने लगी—"नहीं दीदी, मैं नहीं मानती । नये छोकरों से क्या ऐसी दिल्लगी की जाती है ? संभलकर चलो दीदी ! ऐसी बातें तो तुम जानती ही हो कैसी औरतें किया करती हैं ।"

"लेकिन कुमार के मन पर तो ऐसी बातों का कोई असर नहीं जान पड़ता ?" राजरानी ने बात खत्म करनी चाही । किंतु गीता फिर भी अड़ी रही । बोली—"बस यही तो खैर हो गई दीदी ! वह लड़का अभी तो कुछ समझता है ही नहीं । लेकिन कबतक नहीं समझेगा, जब रोज ही उसे बाढ़ दिखाई जाया करेगी ।"

"नहीं-नहीं गीता ! ऐसी बात नहीं है । कांता की आदत ही दिल्लगी की है ।"

गीता ने राजरानी को रोका—"यह पूछना भी क्या दिल्लगी है—मैं कैसी लगती हूँ ? यह कहना कि जब जल्ला बाढ़ आती है तब किसी बाँध की परवाह नहीं करती ।"

"अच्छा तेरा खयाल क्या है ?"

"मेरा खयाल तो दीदी पक्का यही है कि कांता कुमार पर डोरे डाल रही है । उसके घर इसे भेजना ठीक नहीं है ।

"अच्छी बात है । यदि मामला ऐसा वैसा देखूँगी तो रोक दूँगी ।"

गीता को अब भी सन्तोष नहीं हुआ । बोली—"कैसी बातें करती हो दीदी ! भला तब भी कोई रुकता है । कांता तो अन्धी हो रही है ; इसे तो अन्धा मत होने दो ।"

"नहीं कांता ! यह अन्धा नहीं होगा । ऐसा हुआ तो अन्धा होने से पहले ही इसकी आँखों का इलाज कर दिया जायगा ।"

गीता समझ गई । कहने लगी—"मेरी राय में तो दीदी इलाज जल्दी से जल्दी करदो । मेरी बहन हजारों में एक है ।"

"और मेरा देवर ?" गीता को रोककर राजरानी हँस पड़ी ।

गीता बोली—"लाखों में एक।"

"मेरा खयाल है करोड़ों में एक।"

यह सुन कर गीता और राजरानी दोनों की गर्दनें एक साथ घूम गईं। कांता खड़ी हँस रही थी। वस्तुतः वह यह जानने के लिए आई थी कि कहीं कुमार ने आँखों के कनक्शन की विद्या अपनी भाभी को बताकर भंडाफोड़ तो नहीं कर दिया। यदि कर दिया हो तो जल्दी ही उस कांड पर लीपापोती करदी जाय। और यदि नहीं किया हो तो अपने आप ही पहले कह दिया जाय कि मैं तो उसकी बेवकूफी की परीक्षा ले रही थी।

चार बजे तक तो उसने कुमार के आने की प्रतीक्षा की ताकि उसी से बात उगलवा ले। परन्तु जब कुमार नहीं आया तब उसका दिल धुक-धुक करने लगा कि यदि दाल में कुछ काला नहीं तो गड़बड़झाला जरूर है। अतः जल्दी से चल कर उस पर लीपापोती कर देनी चाहिए।

"कौन है करोड़ों में एक कांता ?" गीता ने व्यंग्य भरे शब्दों में पूछा।

कांता समझ गई—भंडाफोड़ हो चुका। लेकिन संभलकर बोली—"वही है जो लाखों में एक है।"

"आखिर वह है कौन ?" गीता ने फिर पूछा।

राजरानी नम्बरवार दोनों का मुख देखती रही। कांता बिना झिझक के बोली—"वही न जिसका तुम जिक्र कर रही थीं।"

"हम तो काले चोर का ज़िक्र कर रहे थे। शायद तुम किसी दिल चोर की तारीफ कर रही हो ?"

कांता ने नहले पर दहला मारा—"चोरों और डकैतों की तारीफ तो तुम्हारा ही दिल करता है—मैं तो भले आदमियों की तारीफ किया करती हूँ।"

"तो बताओ न वह कौन है ? यही तो हम जानना चाहते हैं।"

"कुमार है।"

गीता ने एक अद्भुत दृष्टि से उसकी ओर देखा—"बड़ी प्रशंसक बन रही हो कुमार की आजकल ?"

"थी कब नहीं ?"

"कल से पहले।"

"नहीं जीजी ! कल तो उसके सदाचार की परीक्षा थी।"

"फेल किया या पास ?" गीता इस बार हँस पड़ी।

कांता भी हँसकर बोली—"बिलकुल पास और वह भी अच्छे नम्बरों से।"

"कितने नम्बरो से ?"

"फर्स्ट आया है। अब नम्बर सुनकर क्या करोगी ?"

"लालाजी क्या सैकिंड रहे ?" गीता ने कटाक्ष किया।

"नहीं, सैकिंड विनोद रहे।" कांता ने तड़क कर जवाब दिया।

"उनका इम्तिहान भी ले लिया ?" गीता फिर संभली।

"कभी का। तुम्हें पता भी नहीं ?" कांता एक साँस में कह गई।

कांता के इस जवाब ने गीता को परेशानी में डाल दिया। एकबार उसके मन में आया कांता ही तो वह मन्दिर वाली नहीं है। इसलिए न चाहते हुए भी उसके मुख से निकल गया—"पता है।"

गीता के इस जवाब से कांता को महसूस हुआ कि कोई राज़ गीता का भी जरूर है। परन्तु इस समय इस राज़ को जानने की अपेक्षा उसे अपनी सफाई देना अधिक आवश्यक था। अतः बोली—"जीजी ! कुमार, कुमार है। कल मैंने उससे कहा—"देखो लल्ला ! तुम्हारी तस्वीर मेरी आँखों में घूम रही है। चाहो तो अपने बाल ठीक करलो। बस लगा बन्दरों की तरह झाँकने मेरी आँखों में।"

कांता कहती रही—"झाँकने के बाद बोला—'वाकई भाभी, तुम्हारा आविष्कार है तो बहुत बढ़िया। शीशे की तो जरूरत ही खत्म हो गई।"

राजरानी बोली—"यह विद्या तो उसने हमें भी सिखादी ।"

गीता ने अपना मुँह बनाया—"यह आँखें चार करना लड़कों को सिखाना मैं तो अच्छा समझती नहीं दीदी !"

बात काटकर कांता बोली—"मैं तो महज यही परीक्षा कर रही थी कि देखू' लड़का अभी कुछ समझता है या नहीं । समझता हो तो पढ़ाई से पहले इसकी शादी के लिए कहूँ । लेकिन वह तो निरा बच्चा है ।"

कांता कहती रही—"जब मैंने पूछा—'मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ ?' कहने लगा—"जैसी कहानियों में सब्ज परियाँ ।".

"यह तो उसने सच ही कहा कांता ! तुम सब्जपरी से कौनसी कम हो ।" राजरानी ने कहा ।

कांता बोली—"लेकिन जीजी ! उसकी दृष्टि में सब्जपरी और सब्ज गधी में कोई विशेष अन्तर नहीं है । वह तो अभी पूरा लल्लू है लुल्लू नहीं । अतः अभी उसकी शादी की चिंता से तो तुम बहुत दिनों तक मुक्त हो ।"

गीता को कांता के यह शब्द अखरे । बोली—"तब क्या यही चाहती हो लल्लू जब लुल्लू बन जाय, हाथ से निकल जाय, तभी शादी की जाय ?'

कांता अपनी बात पर डटी रही । बोली—"गीता ! छोटी उमर में शादी करने से पढ़ाई में बड़ा हर्ज पड़ता है, जानती हो ?"

"यह तुम्हारा ही अनुभव होगा जीजी, मेरा तो है नहीं ।"

"तुम्हारा क्या है ?"

"तुम्हारे विपरीत ।"

"अपना-अपना दृष्टिकोण है गीता ! मेरा अनुभव यही है कि अभी लड़का शादी के लायक नहीं है ।"

इस बार कांता ने कटाक्ष किया—"हो सकता है मेरे अनुभव से

तुम्हारा अनुभव ज्यादा हो क्योंकि वह तुम्हारे सम्पर्क में अधिक रहता है ।"

गीता कट गई । बोली—हाँ, सम्पर्क में मेरे रहता है । लेकिन, इम्तिहान तुम्हारे यहाँ लिया जाता है ?"

कांता के चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई । कहने लगी—"यह काम भी यदि तुम अपने यहाँ शुरू करदो तो मैं अपना परीक्षा केन्द्र भी समाप्त करदूँ ।"

राजरानी ने बात को विवाद में बदलते देखकर कहा—"बात यह है गीता, हर भाभी हर देवर की माता भी है, सच्ची शिक्षिका भी है, बहन भी है और मनोरंजन के क्षणों में प्रेमिका भी । उसे विभिन्न रूपों में विभिन्न अभिनय करने पड़ते हैं देवरों के सामने ।"

"यह कौनसा अभिनय करती है ?"

"जिसे तुम छोड़ देती हो ।"

"यानी प्रेमिका का ?"

"यही समझ लो ।"

"तब, किसी दिन हमारे सामने भी रिहर्सल हो जाय । कुछ हम भी सीख लें ? "

कान्ता उसी लहजे में बोली—"किसी दिन क्या आज ही लो । बुलाओ कुमार को ?"

कान्ता की स्पष्टवादिता से गीता घबराई । वह जानती थी कुमार यहाँ नहीं है जासूसी करने गया है । अतः उसे बात बदलने के लिये विवश होना पड़ा । कहने लगी—"जीजी, वास्तव में तुम तो बड़ी ही हँसमुख हो । ऐसा सुन्दर परिहास तुमने कहाँ से सीख लिया बता दो हमें भी वह जगह ?"

"आया करो हमारे घर । लेकिन, आज कुमार कहाँ गया है जीजी ?" गीता को जवाब देकर, कान्ता ने राजरानी से सवाल किया ।

गीता का कलेजा उछलने लगा। अतः राजरानी से पहले ही बोल उठी—"छुट्टी के दिन हैं, पहुँच गया होगा किसी यार-दोस्त के घर।"

चार बजकर कुछ मिनट पर कुमार विनोद के दफ्तर पर जा लगा। छुट्टी होने में देर थी। इसलिये पहले तो पटरी पर इधर-उधर घूमता रहा। जब पाँच बजने को आये तब दफ्तर के दरवाजे पर दृष्टि जमाये एक बिजली, के खम्भे की ओट में खड़ा हो गया।

पाँच बजकर पाँच मिनट पर विनोद दफ्तर से निकला। कुमार ने घड़ी देखी और डायरी में टाइम नोट कर लिया। बाद में कुमार ने विनोद का पीछा करना शुरू किया। विनोद आगे-आगे, कुमार लुकता-छिपता पीछे-पीछे चलता रहा। कुछ दूर चलने पर विनोद रुक गया। एक सजी-धजी महिला उससे कुछ पूछ रही थी। कुमार पेड़ की ओट में खड़ा रहा। दोनों के पास तक पहुँचने के लिये दूसरी कोई आड़ नहीं थी। वहीं खड़ा हुआ वह दोनों के संकेतों को ध्यान से देखता रहा। अन्त में महिला ने हाथ जोड़े। जवाब में विनोद ने भी हाथ जोड़े। कुमार ने हाथों की जुड़ाइयाँ अपनी डायरी में लिख लीं। महिला एक रिक्शे में बैठकर चल दी। विनोद घर की ओर मुड़ गया।

दूसरे दिन कुमार गीता के घर की ओर चला। विनोद दफ्तर जा चुका था। गीता रसोई घर का काम समाप्त कर रही थी। कुमार को देखते ही बोली—"मैं तो तुम्हारी दस बजे से इन्तजार कर रही थी लल्ला ?"

"मुझे नहाने-धोने में देर हो गई भाभी! दूसरे आता भी तो तभी जब भाई साहब चले जाते। वह भी तो अभी गये होंगे ?"

"अरे, वह तो नौ बजे से ही चल देते हैं—तुम दस बजे आ जाया करो। अच्छा कल की रिपोर्ट सुनाओ ?"

कुमार ने जेब से डायरी निकाली। पढ़नी शुरू की—"ठीक पांच बजकर पाँच मिनट दस सेकिण्ड पर वह दफ्तर से निकले। कुछ दूर तक योंही भटकते से चले। हम दोनों का फासला तब लगभग सत्रह गज का था।"

"अच्छा आगे ?" गीता की उत्सुकता बढ़ रही थी।

कुमार बोला—"सुनती रहो, मैंने सब कुछ लिख रखा है। आगे इन्हें एक औरत मिली। कुछ देर तक दोनों में बातें हुईं। उंगलियों के इशारे हुए और बाद में दोनों ओर से हाथों की जुड़ा-जुड़ाई हुई। इसके बाद वह एक रिक्शे में बैठकर चलदी।"

"तुमने बातें नहीं सुनीं ?" गीता ने पूछा।

कुमार बोला—"वहाँ छिपने के लिये कोई आड़ ही नहीं थी। इसलिये दूर ही खड़े रहना पड़ा।"

कुछ देर गीता विचारमग्न रही। बाद में बोली—"अच्छा, अब तुम अपने दिमाग को उसी जगह फिर ले जाओ। समझ लो वहीं खड़े हो और जो कुछ मैं पूछूँ, उसका जवाब दो।"

"पूछो भाभी !"

"पहले तो यह बताओ लल्ला, उसकी उम्र क्या होगी ?"

कुमार बोला—"यही तुम्हारी-हमारी उम्र की होगी।"

"यानी बीस-बाईस वर्ष ?"

"हाँ या चार छः साल—इधर-उधर ?"

"चार छः साल में तो बहुत अन्तर पड़ जाता है।"

"यह तुम जानो मैंने उसकी जन्मकुण्डली थोड़े ही देखी थी ?"

"अच्छा, साड़ी कैसी पहने थी ?"

"कुछ हरी हरी।"

"पैरों में चप्पल थे या सैण्डिल ?"

"सैण्डिल।"

"ऊँची एड़ी के या नीची के ?"

"अरे यही नये फैशन के ?"

"यानी ऊँची एड़ी के ?"

"हाँ-हाँ।"

"अन्दाजन कितनी ऊँची एड़ी के ?"

"यों समझ लो इतने ऊँचे थे जिनके नीचे से छोटा-मोटा साँप आसानी से निकल जाय।"

कुमार की इस उपमा से गीता को हँसी आ गई। बोली—"तुम्हारी उपमा बहुत सुन्दर है। लेकिन यह तो बताओ आँखों पर क्या चश्मा लगा था ?"

"यह याद नहीं रहा भाभी !"

"इन्होंने उसे कुछ दिया-लिया तो नहीं ?" इस बार गीता ने जबाब सुनने के लिये साँस रोक लिया।

कुमार बोला—"लेनदेन नकद तो कुछ नहीं हुआ भाभी ! अलबत्ता नमस्कारों का आदान-प्रदान खूब सुन्दर हुआ।"

"पहले हाथ किसने जोड़े ?"

"उसी ने।"

"हँसकर ?"

"नहीं, मुस्कराकर ?"

"यह भी मुस्कराये होंगे ?"

"इनका मुँह मुझे नहीं दीखा।"

"ठीक; तुम्हारा काम बहुत सुन्दर रहा।" गीता ने आगे पूछा—"और तो कुछ खर्च नहीं हुआ तुम्हारा ?"

"नहीं भाभी !"

"तो लो यह आज का एडवांस। लेकिन भेद न खुले—तुम जानो या मैं ?"

"बेफिक्र रहो भाभी ! दोनों के अलावा तीसरा जान ही नहीं सकता।" कहकर कुमार रुपये जेब में डालकर चल दिया। गीता बैठी-बैठी हिसाब-सा लगाती रही।

दूसरे दिन कुमार फिर विनोद के दफ्तर की ओर चला। चार बजे थे, मन में विचार आया कि इतना जल्दी आकर वहाँ पहरा देना निरर्थक ही है। अतः क्यों न थोड़ी देर कान्ता भाभी से ही गप्पें हाँकता चले। उसके पैर कान्ता के घर की ओर मुड़ गये।

कुमार जिस समय कान्ता के घर पहुँचा, उस समय कान्ता उपन्यास में उलझी हुई थी। कुमार की आवाज पर उठी—द्वार खोला और मुस्कराती हुई बोली—"तुम तो लल्ला, ईद के चाँद बन गये। फिर लौटकर सूरत ही नहीं दिखाई। कल तुम्हारी दिन भर इन्तजार की।"

कुमार बोला—"छुट्टियों के लिए एक छोटा-सा काम मिल गया है भाभी, रोजाना की नकद मजदूरी है। इसलिए मैंने मंजूर कर लिया।"

"तब तो यों कहो की नौकरी करली है ?"

"नहीं-नहीं, नौकरी तो नहीं कह सकते, समझो कि वह यों ही थोड़ा-सा काम मिल गया है।"

"इसीलिए शायद नहीं आये। मैंने तो समझा था गीता के यहाँ गप्पें हाँक रहे होंगे ?"

"नहीं, वहाँ नहीं था—काम पर था।"

"अब कहाँ की तैयारी है ?"

"काम पर जाने की ही ।"

"किस काम पर ?" कान्ता ने कुमार को बातों के पेंच में उलझाना शुरू किया ।

कुमार के मुँह से निकल गया । "—गीता भाभी के काम पर !"

"गीता क्या काम कराती है ऐसा तुमसे जिसके लिए रोज तुम्हें कहीं जाना पड़ता है ?"

"एक दफ्तर पर भेजा करती हैं ।" कुमार कह गया ।

"किसी आदमी के पास ?" कान्ता का माथा ठनका । बात उगलवाने का प्रयत्न उसने पुनः प्रारम्भ कर दिया ।

"हाँ, एक आदमी के पास ?"

कहने को तो वह इतनी बात कह गया । लेकिन उसे तुरन्त ही गीता की सौगन्ध की याद आई, संभल गया ।

कान्ता ने पुनः पूछा—"शायद कोई चिट्ठी-विट्ठी देकर भेजती होगी ?"

"नहीं यों ही भेजती है ।" कुमार ने बात टाली ।

"आखिर तुम्हें भेजकर वह कराती क्या है—यह तो तुमने बताया ही नहीं ?"

कुमार बोला—"बस, भाभी इससे ज्यादा मैं बताऊँगा भी नहीं—गीता भाभी ने कसम देदी है ।"

"मैं समझ गई लल्ला, इससे ज्यादा मुझे पूछने की आवश्यकता भी नहीं है ।"

"तो अब भी वहीं जाओगे लल्ला ?"

"हाँ, भाभी !"

"अच्छा, लेकिन तुमने आँखों वाली बात अपनी भाभी को भी बता दी और गीता को भी बता दी । ऐसी बातें भी भला बताने की होती है ?"

कुमार बोला—"भाभी, विद्या का प्रचार जितना हो, उतना ही अच्छा। मैंने तो महज यही समझ कर बता दिया ताकि इस ज्ञान से वे भी लाभ उठा लें।"

"खैर, जो किया अच्छा किया। लेकिन आयन्दा जो कुछ मैं बताऊं वह किसी को मत बताना।"

"अजी राम का नाम लो भाभी। मुझमें तो एक भाभी की बात दूसरी भाभी से कहने की आदत ही कतई नहीं है, तुम जानती ही हो।"

कान्ता मुस्कराई—"वास्तव में यह आदत तुम में सबसे सुन्दर है।'

"नहीं, सुन्दरता की बात तो भाभी सारी तुम पर ही लागू होती है।"

"सच ?"

"हां भाभी !"

"तो जरा बैठो न ?"

"नहीं भाभी, फिर आऊँगा—वरना वहाँ के लिए देर हो जायेगी। कह कर कुमार कान्ता के घर से विनोद के दफ्तर की ओर चल पड़ा।

विनोद के दफ्तर पर पहुँच कर कुमार एक दीवार की ओट में खड़ा हो गया। नियत समय पर जैसे ही विनोद दफ्तर से निकला, तैसे ही उसने पीछा करना शुरू कर दिया।

कुछ दूर तक आज भी कोई खास बात नहीं हुई। दोनों आगे-पीछे चलते बाजार के मोड़ पर आ गये। बाजार के मोड़ पर अचानक एक युवती ने विनोद को आज भी नमस्ते किया। कुमार एक पेड़ की ओट में खड़ा हो गया। युवती की नमस्ते के बाद विनोद ने युवती के साथ के युवक को नमस्ते की।

युवती बोली—"बस रहने दो काहे को यह ढोंग है। अब तुमने हमारे घर न आने की बिल्कुल ही कसम खा ली है।"

विनोद शर्माता-सा बोला—"नहीं, यह बात तो नहीं है। असल में आजकल दफ्तर में ही काम बहुत बढ़ गया है। शाम को खाना खाकर

मन्दिर चला जाता हूँ।"

"गलत बात है मन्दिर में तो तुम एक दिन भी दिखाई नहीं दिये?"

"तुमने तलाश ही कब किया होगा?"

"तलाश किया हो या न किया हो। जाते तो किसी दिन दिखाई देते?"

"शायद तुम कभी-कभी जाती हो?"

"नहीं, मैं तो रोज जाती हूं। हां, एक दिन तुम दिखाई दिये भी थे, पर पता नहीं तुरन्त ही किस मूर्ति के पीछे छिप गये कि लाख तलाश करने पर भी तुम्हारा पता नहीं चला। और बताऊँ?"

"हां-हां, बताओ।"

"तो उस दिन तुम्हारी बीवी साहिबा भी गई थीं अपने नौकर के साथ। वह तो यह कहो न आने की बहानेबाजी है। वह दिन तो तभी थे जब रात-रात भर हमारे घर पड़े रहते थे।"

"नहीं मैं तो अब भी वही हूं।"

"तब क्या मैं बदल गई?"

'खैर, चलो यहाँ अधिक बातें करना ठीक नहीं। वहाँ होटल में बैठकर बातें करेंगे।" कहकर युवती विनोद का हाथ पकड़ कर होटल में ले गई।

अब कुमार के लिए केवल प्रतीक्षा के और चारा ही क्या था। अतः होटल के बाहर तीनों के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा।

ठीक एक घंटा बारह मिनट बाद तीनों होटल से बाहर निकले। बाहर निकल कर फिर तीनों में एक बार हाथों की जुड़ाई हुई और विनोद ने किसी दिन आने का वचन दिया। युवती मुस्कराती हुई अपने साथी युवक के साथ चली गई।

कुमार की बातों का निष्कर्ष कांता ने यह निकाला कि निश्चय ही गीता का प्रेम दफ्तर के किसी बाबू से है और उसने अपने पत्र-व्यवहार का साधन लालच देकर कुमार को बनाया हुआ है। अत: जितनी जल्दी इस समाचार को राजरानी तक पहुँचा दिया जाय, उतना ही अच्छा। इससे सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि आँखों के कनक्खन के मामले पर लीपापोती और भी अच्छी तरह हो जायेगी और राजरानी को विश्वास हो जायेगा कि सच्चरित्र गीता नहीं, मैं हूँ। साथ ही कुमार का आना-जाना गीता के यहाँ रुक भी जायेगा।

जैसे ही कुमार विनोद के दफ्तर की ओर चला, तैसे ही कान्ता राजरानी के घर पहुँची। तनिक सुस्ता कर बोली—"कुछ पता है दीदी!"

"किस बात का कान्ता?"

"यही कि आजकल गीताजी नये रंग पर आ रही हैं।"

"नये रंग पर?" राजरानी मुस्कराई—"वह रंग कौनसा है कान्ता?"

लम्बी साँस लेकर कान्ता बोली—"आजकल उनपर प्रेम का भूत सवार है। अपना-अपना दृष्टिकोण है दीदी! किसी को यह रंग शादी से पहले आता है, किसी को बाद में।"

"क्या कह रही है तू कान्ता?" राजरानी चकराई।

"कान्ता बोली—"सोलह आने पक्की बात।"

"प्रमाण क्या है?"

"तुम्हारा देवर?"

"यानी कुमार?"

"हाँ-हाँ कुमार। चिट्ठी-पत्री लाने-ले-जाने का काम कुछ दिन से गीताजी उसी से ले रही हैं। पता है वह रोज चार बजे कहाँ जाता है?"

"मैंने तो कभी ध्यान नहीं दिया?"

"मैंने दिया है, वह जाता है गीता का पत्र लेकर दफ्तर के एक बाबू के पास और उसका जवाब लाकर देता है गीता जी को—समझीं ?"

"विश्वास नहीं होता कान्ता ?" बहुत भोली है गीता तो ?"

"भोली भाली शक्ल वाले होते हैं जल्लाद भी; यह शेर सुना है दीदी ?"

"सुना तो है। लेकिन, यह गीता पर घटता नजर नहीं आता कांता।"

"आज कुमार से जरा ढंग से पूछोगी तो उगल देगा सारी बातें लेकिन मेरा जिक्र न करना दीदी ! तुम्हें मेरे सर की कसम !"

"नहीं-नहीं कान्ता, भला कहीं ऐसी बातें इस तरह पूछी जाती हैं ? तू निश्चिन्त रह मैं सब पूछ लूँगी।"

"हाँ, पूछने के बाद कभी जाने भी मत देना गीता के घर। गधा-पचीसी में चल रहा है लड़का, बिगड़ न जाय ?"

"इस बात का मैं ख्याल रखूँगी कान्ता !"

"अच्छा दीदी मैं तो एक काम से आई थी।" कान्ता ने बात बदली—"लालाजी, बम्बई जा रहे हैं। दो-तीन दिन कुमार को हमारे यहाँ ही सोने के लिए कह देना यदि जेठ जी आज आ जायें तो ?"

"हाँ-हाँ, वह तो आज आ जायेंगे। उनका सवेरे तार आ गया है—भेज दिया करूँगी।"

दूसरे दिन ग्यारह बजे कुमार गीता के घर पहुँचा। गीता बड़ी उत्सुकता से कुमार के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। कुमार

को देखते ही बोली—'शाम को तो ये काफी देर से आये—तुम कहाँ थे ?"

"इनके पीछे पीछे ही आ गया ?"

"तो बताओ न कल की क्या रिपोर्ट है । यह कहाँ-कहाँ गये थे ?"

कुमार बोला—"ठीक टाइम पर दफ्तर से निकले । बाजार की मोड़ तक कोई खास बात नहीं हुई ।"

"बाद में ?" गीता ने सुनने के लिए कान खड़े किये ।

कुमार ने कहा—"एक युवती को इन्होंने नमस्ते किया ?"

"अकेली थी क्या वह ?"

"नहीं दुकेली थी । साथ में एक आदमी भी था ।"

गीता को कुछ शान्ति-सी मिली । पूछा—"उसके बाद क्या हुआ लल्ला ?"

कुमार बोला—"मुँह बनाकर बोली—तुम तो अब आते ही नहीं हमारे घर ?"

"यह क्या बोले तब ?"

"कहने लगे, समय ही नहीं मिलता । दफ्तर से लौटकर घर जाता हूँ—खाना खा पीकर मन्दिर चला जाता हूँ ।"

"फिर ?"

"उसने कहा—"मन्दिर तो हम भी जाते हैं, वहाँ तो तुम दिखाई नहीं पड़ते । एक दिन तुम्हारी पत्नी तो अपने नौकर के साथ दिखाई दी थी । पहले तुम्हारी भी झलक मिली थी । बाद में पता नहीं—कहाँ मूर्तियों में जाकर छिप गये ?"

"यह बात है, तब तो भेद खुल गया, मन्दिर वाली वही औरत थी । आगे बोलो ?"

"आगे यह हुआ कि युवती ने इनसे कहा—'पहिले तो रात-रात भर हमारे यहाँ पड़े रहते थे—अब तुम वह नहीं रहे ।"

"अच्छा, समझ गई पता चल गया। यह बताओ वह कहाँ रहती है। तुम तो गये होगे उसके पीछे?"

"बात यह हुई भाभी!" कुमार ने सफाई देनी शुरू की—"बातचीत के बीच में ही वह इनका हाथ पकड़कर होटल में ले गई।"

"तब तुम्हें अन्दर की बातों का क्या पता चला होगा लल्ला?"

"कुछ नहीं भाभी, अन्दाज जो चाहे सो लगा लो असलियत का पता नहीं।"

"यह तो बताओ यह लोग वहाँ से निकले कितनी देर में?"

"एक घंटे के बाद।"

"बाहर आकर तो कोई लेन-देन नहीं हुआ?"

"नहीं भाभी, होटल में ही अगर कुछ हो गया हो तो मुझे पता नहीं?"

"फिर तुम उनके पीछे क्यों नहीं गये?"

"मैं चाहता तो था, लेकिन वह टैक्सी में बैठकर उड़ गये। मेरे पास इतने पैसे कहाँ थे।"

"तुमने सब बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। खैर यह तो निश्चय ही हो गया कि मन्दिर वाली लड़की परसों वाली नहीं, कल वाली है; उसी का पता लगाना है।"

"हाँ भाभी, मेरा भी यही ख्याल है?"

"अच्छा अब तुम नहीं कल की तरह से कुछ समझदारी की बातें बताओ।"

"पूछो भाभी!"

"यह बताओ कि वह सधवा थी या विधवा?"

"कुमार कुछ सोचकर बोला—"सुहाग चिन्ह तो उसके हाथ में थीं नहीं।"

"यानी चूड़ियाँ कतई नहीं थीं, तो क्या था?"

"वही जो आजकल की; फैशनपरस्त युवती के हाथों में होता है।"

"यानी ?"

"डण्डे से हाथ में चूड़ियों की जगह एक घड़ी।"

"अच्छा आँखों में काजल कैसा लगाये थी लल्ला ?"

"तीरों वाला भाभी !"

"तब आँखें उसकी और भी बड़ी-बड़ी होंगी ?"

"बिल्कुल ऐसी थीं जैसी किसी कटड़े की होती हैं।"

"ओठों पर क्या था उसके ?"

"लिपिस्टिक थी भाभी !"

"और सर पर लल्ला, दो चोटियाँ तो होंगी ही ?"

"होंगी, लेकिन उस समय तो जूड़ा बना रखा था और उसमें भी किसी पेड़ के फूल खोंस रखे थे।"

"साड़ी तो डंडों की होगी—बनारसी, या नाईलोन की पहने थी ?"

"नहीं भाभी जार्जेट या टाफ्टे की थी।"

"हाथ में बटुआ भी होगा ?"

"नहीं भाभी, हज्जामों जैसा एक थैला लटका रखा था कंधे पर।"

"कल तो रविवार है, इनकी छुट्टी है। परसों यदि वह फिर मिले तो उसके पीछे-पीछे जाकर घर का पता लगा कर लाओ।"

"अच्छी बात है। लेकिन परसों को पाँच-सात रुपये मुझे ज्यादा दे देना। क्या पता मुझे भी टैक्सी करनी पड़ जाय।" कहकर कुमार चला गया।

शाम को जब कुमार घर लौटा तब राजरानी ने पूछा—"कहाँ गये थे ?"

"यों ही एक काम से गया था भाभी !"

"किसके काम से ?"

"कुमार के मुँह से निकल गया—"गीता भाभी के।"

"कहाँ ?"

"एक दफ्तर में।"

"किस के पास ?"

"यह बताने के लिये गीता भाभी ने कसम दे दी है।"

"यानी वह तुम्हारी मार्फत किसी को पत्र भेजा करती है ?"

आश्चर्य से कुमार बोला—"यह किस बेवकूफ ने तुमसे कह दिया भाभी ? अरे वह तो विनोद भाई साहब की मुझसे जासूसी कराया करती है। उस मंदिर वाली की चिट्ठी से उन्हें शक हो गया है। लिहाजा मैं शाम को उनके दफ्तर पर पहुँच जाता हूं और दफ्तर से घर तक आने की सारी रिपोर्ट—यानी वह किससे मिले या उनसे कौन मिला, आदि सब बातें गीता भाभी को दूसरे दिन दे आता हूँ।"

"तब तो यों कहो आजकल जासूसी कर रहे हो ?"

"हाँ भाभी वैसे काम तो जासूसी का ही है, पर देतीं दो रुपये रोज ही हैं।"

"अरे, दो रुपये कौन थोड़े हैं और क्या किसी को लूटोगे ?"

"लूटता कौन है हमरी भाभी ! यहाँ तो जिसने जो कुछ दे दिया, ले लिया वरना राम नाम पर ही सेवा करदी।"

"भाभियों की सेवा करोगे तो मेवा ही पाओगे।" हँस कर राजरानी बोली।

कुमार ने कहा—"मेवा लायक तो पैसे जुड़ते ही नहीं भाभी !"

"कल भी जाओगे क्या ?"

"कल तो छुट्टी है। दफ्तर बन्द रहेगा।"

"अच्छा कल शाम को कान्ता के घर चली जाना। लालाजी बम्बई

जा रहे हैं, वहीं सो जाया करना। यहाँ तुम्हारे भाई साहब आ ही जायेंगे।"

कुमार को जवाब देकर राजरानी का ध्यान गीता की ओर गया। सोचा—"चिट्ठी इतना रंग लायेगी, यह तो मुझे स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। ऐसा तो नहीं, कहीं कुछ और हो जाय और सारी हँसी रोष में बदल जाय। इसलिये अच्छा यही है कल-परसों जाकर चिट्ठी का भेद खोलदूँ।" भेद खोलने का निश्चय करके राजरानी अपने काम में लग गई।

राग का नाम लेकर खैरातीलाल ने बम्बई को प्रस्थान किया। कान्ता आज सब दिनों से अधिक खुश थी। चलते-चलते लालाजी ने समझा दिया—"दिन में राजेन्द्र के घर चली गई, रात को कुमार को घर सुला लिया। पैसे धेले का लालच मत करना, रुपया धेली इस छोकरे को दे दिया करना। आजकल के छोकरे जरा जबान के चटोरे होते हैं—चार पैसे दे दो, पीछे-पीछे पूँछ हिलाते फिरेंगे।"

लालाजी कान्ता को परामर्श देकर चले गये। शाम को पाँच बजे कुमार कान्ता के घर आया। कान्ता बोली—"मिल गई तुम्हें छुट्टी गीता के घर से?"

"नहीं भाभी, आज तो उनके घर गया ही नहीं। अभी थोड़ी देर पहले ही भाई साहब आये इसलिए न आ सका। दूसरे आज उनका वह काम भी नहीं था।"

"तुम्हारा भी कोई काम नहीं था क्या?"

कान्ता के चहरे पर कुटिलता आनी पुनः प्रारंभ हो गई। आगे

बोली—"बोलो, चलते हो सिनेमा ! आज तो फुरसत ही फुरसत है । हमारे साजन घर नहीं, हमें किसी का डर नहीं ।"

"लेकिन भाभी सवाल तो पैसों का है । आप को तो मालूम ही है आजकल अपने राम कंगाल बैंक के डाइरेक्टरों में से एक हैं ।"

कान्ता बोली—"अरे पैसों की क्या फिक्र करते हो । तुम्हारे बस 'हाँ' करने की देर है; पैसे मैं दे दूँगी ।"

"मेरे टिकट के भी ?"

"हाँ, तुम्हारे टिकट के भी ।"

"इस शर्त पर तो भाभी मैं रोज तैयार हूँ ।"

कुमार की स्वीकृति मिलते ही कान्ता ने अपनी सजधज शुरू कर दी और जितनी देर में एक दुलहिन तैयार होती है, उतनी देर में तैयार होकर सिनेमा घर की ओर कुमार के साथ चल दी ।

कान्ता की सजधज से कुमार का सर्वांग काँप गया । बोला—भाभी, सिनेमा में इस तरह सज कर नहीं जाना चाहिये ।"

"क्यों, क्या तुम्हें बुरा लगता है ?" कान्ता ने पूछा ।

कुमार ने कहा—"नहीं, मैंने तो इसलिए कहा कि लोग घूर-घूर कर ऐसे देखते हैं मानों वह किसी महिला को पहली बार ही देख रहे हैं ।"

"तब अपना क्या लेते हैं, देखने दो । देखो न, यदि यों ही चलती तो लोग समझते होंगे किसी ऐरे-गैरे नत्थू खैरे के घर से ।"

कान्ता के उत्तर से कुमार चुप हो गया । कान्ता कहती रही—"अरे, जरा सिनेमा के पर्दे पर तो देखना कैसी-कैसी आती हैं । मैं तो उनके सामने पासिंग भी नहीं । आखिर वह भी तो औरतें ही हैं । उन्हें तो अपना पार्ट भी पता नहीं कितने आदमियों के सामने अदा करना पड़ता है । सबके सामने वह नाचती भी हैं, गाती भी हैं, प्रेम-प्यार की बातें भी करती हैं, फिर भी लोग उनकी प्रशंसा करते हैं ।"

सिनेमा आ चुका था । कुमार पाँच-पाँच रुपये के दो टिकट ले

आया। दोनों हाल में पहुँच गये।

खेल आरंभ हुआ। नायक एक पर्दे पर गाता हुआ दिखाई दिया। उधर से गाती हुई आई एक नायिका और बाद में एक झील के किनारे बैठ कर दोनों ने मिल कर गाना शुरू किया।

"कान्ता ने कुमार की ओर देखा। बोली—"देखा कुछ ?"

"हाँ भाभी, दीख रहा है। तुम्हें भी दीख रहा है या नहीं ?"

"दीख तो रहा है। लेकिन, कभी-कभी यह सामने का खम्भा कुछ गड़बड़ कर देता है।"

"तब गरदन मेरी ओर को करलो और थोड़ी-सी ?"

"हाँ, ऐसा ही करूँगी।" कान्ता ने गरदन कुमार की गरदन से टिका ली। पर्दे पर गाते-गाते नायिका ने भी अपनी गरदन नायक के कन्धे पर टिकाली। कान्ता बोली—"देखा, यह हमारी ही नकल कर रहे हैं। उसने भी रखदी गरदन लड़के के कन्धे पर ?"

"दुखने लगी होगी भाभी, बेचारी की। दुबली पतली-मरियल-सी तो है ही।"

कान्ता ने एक लम्बी साँस ली। पूछा—"मेरी तरह ही न ?"

कुमार अब भी पर्दे की ओर देख रहा था। नायिका रूठ रही थी, नायक मना रहा था। कान्ता की साँस में तेजी आती जा रही थी—"तुम्हें शायद खेल अच्छा लग रहा है ?"

"और तुम्हें भाभी ?"

मुझे तो आनन्द नहीं आ रहा। देखो न यह भी कोई खेल हुआ लड़की रूठ रही है, लड़का मना रहा है ?"

"तब और क्या होना चाहिये था तुम्हारे ख्याल में ?"

"उलटा, इसके बिलकुल उलटा होना था तभी तो आनन्द आता। इसलिए तो मैं कहती थी कि 'ढकोसला' के बजाय 'चरित्र की चिड़िया' फिल्म अच्छी रहेगी।"

"उसे बाद में देख लेंगे—रात तो अपनी ही है भाभी !"

"हाँ, यह भी ठीक रहेगा।"

कान्ता की दृष्टि पुनः पर्दे की ओर गई। नायिका रास्ते पर आ चुकी थी और अब नायक की गोद में थी। कान्ता ने अपनी रही-सही गरदन का भार भी कुमार के ही कन्धे पर डाल दिया।

कुमार बोला—"तुम्हें तो भाभी बड़ी दिक्कत पड़ रही है। इससे तो बेहतर यही है कि सीट ही बदल लो।"

"नहीं-नहीं, मेरे सर में जरा दर्द-सा है। इसी तरह रहने दो।"

"फिल्म चल रही थी। एक से एक बढ़ कर कामुक दृश्य आ रहे थे। नायक कह रहा था—"तुम्हारे बिना मैं दुनिया में नहीं रह सकता माला!"

उधर माला कह रही थी—"माला एक दिन तुम्हारे ही गले की माला बनेगी राजू, वरना इस माला के दाने दुनिया में बिखर जायेंगे।"

"सुन रहे हो ये दोनों क्या कह रहे हैं आपस में?"

"सुन रहा हूं भाभी!" कुमार की दृष्टि पर्दे पर थी।"

दृश्य पर दृश्य बदले। अब नायक नायिका एक नदी किनारे दिखाई दिये। नायक बोला—"माला! मेरी माला!"

नायिका फुसफुसाई—"राजू! फिर कहो—मेरी माला!"

"नायक ने आज्ञा का पालन किया—"मेरी माला! मेरी प्यारी माला!!"

लम्बी सांस लेकर माला बोली—"दरिया पर जवानी आ रही है राजू!"

राजू बोला—"सागर में ज्वार आ रहा है माला!"

माला ने राजू की ओर देख कर कहा—"दरिया में लहरें उठ रही हैं राजू।"

इन दृश्यों से कान्ता का विवेक लुप्त होता जा रहा था। कुमार से बोली—"सुन रहे हो जवाब-सवाल ऐसे होते हैं?"

"बड़े ध्यान से भाभी ?" कुमार ने बिना कान्ता की ओर देखे ही कह दिया।

"तुम्हारे दिल में भी ऐसे ही लहरें उठ रही है क्या ?" कान्ता ने पूछा।

कुमार हँस पड़ा—"मैं क्या कोई दरिया हूं भाभी ! वह तो नदी की बात कह रही है।"

"खाक कह रही है—जरा सुनो तो सही ध्यान से ? किस को कह रही है।"

"अच्छा, अब की बार ध्यान से सुनूँगा।"

पर्दे पर राजू फिर बोला—"माला ! क्या हमारा यह सुनहरा संसार कभी नहीं बसेगा ?"

माला बोली—"चलो राजू—कहीं दूर चलो, जहाँ हमारे अलावा कोई हो ही नहीं। वहीं बसेगा हमारा सुनहरा संसार।"

"खाक बसेगा ?" कुमार के मुँह से निकल गया—"अरे क्या दो ही जनों से संसार बसा करता है। दो से तो एक मुहल्ला भी नहीं बनता ?"

"तुम कुछ नही जानते ?" कहकर कान्ता ने कुमार की ओर देखा। उधर राजू ने माला के हाथ पकड़े—"तब क्या भाग चलें माला कहीं ?" राजू ने माला के हाथ पकड़े-पकड़े ही पूछा।

"हाँ राजू। यहाँ लोग हमें जीने नहीं देंगे ?" माला ने फैसला सुना दिया।

राजू बोला—"माला, हमारे भागने से तुम चरित्र-हीन ठहराई जाओगी ?"

"कौन ठहरायेगा राजू ?" माला चकराई।

"समाज।"

"वही समाज, जिसने एक सत्तर वर्ष के बुड्ढे के साथ गा-बजाकर मुझे बाँधा है ?"

"हां, माला वही समाज।"

"क्या उस समय कुछ नहीं दिखाई देता था उसे ?"

"नहीं माला, इसलिए कि नारी के लिए भी 'समाज-संहिता' पुरुष समाज ने ही रची है। वह पर्दे में होने वाले पाप को पाप नहीं मानता माला !"

"लेकिन, आखिर यह पाप चलेगा कब तक राजू ?"

"यह भविष्य बतायेगा माला ?"

"नहीं, इतनी इंतजार अब नारी नहीं करेगी। वह समाज को यथोचित् उत्तर देगी राजू ! चलो हम कोर्ट में चलकर शादी करेंगे। मैं उनको अब भी चाचाजी कहती हूँ।"

माला के इतना कहते ही एक ओर से आवाज आती है—

"मैं हूँ ही चाचाजी !"

दोनों चौंकते हैं। एक वृद्ध हाथ में बेंत लिए प्रकट होता है—"माला, यह लो तलाकनामा। अब तुम स्वतंत्र हो और यह लो मेरी वसीयत ! मेरी जायदाद सब तुम्हारी है। अब मुझे भगवान् के यहाँ मुँह दिखाने के लिए कुछ थोड़ी समाज की सेवा करने दो। इसे सुधारने दो।"

"कहीं चाचाजी, यह सब ढकोसला तो नहीं है।"

"नहीं बेटी ! ढकोसला नहीं सच है।"

खेल खत्म हुआ। कान्ता कुमार के साथ घर आई। इस खेल ने उसके हृदय के तारों को झंकृत कर दिया था। मन में बुदबुदाई—"क्या खैरातीलाल भी मेरे साथ इसी तरह का व्यवहार कर सकते हैं ?" मन ने कहा—"नहीं, उनकी सारी बातें ही ढकोसला होती हैं।"

कान्ता को चारपाई पर चुपचाप देख कर कुमार ने पूछा—"तुम्हें फिल्म कैसी लगी भाभी ?"

"पहले तुम बताओ ।" कान्ता ने उल्टा सवाल कर दिया ।

"मुझे तो बड़ी मजेदार लगी भाभी !"

"जो चीज तुम्हें मजेदार लगती है। वह मुझे मजेदार क्यों न लगेगी ?" कान्ता फिर विवेकहीन हो चली । उसने फिर पूछा—"लेकिन लल्ला, यह तो बताओ तुम्हें इस फिल्म में मजा आया कौनसी जगह ?"

कुमार बोला—"उस जगह भाभी ! जहाँ राजू कह रहा था—"माला मेरी माला ! कहने का ढंग क्या लाजवाब था ।"

कान्ता ने समझा कुमार पर फिल्म का प्रभाव पड़ चुका है। अतः चारपाई पर लेटे-लेटे ही बोली—ऐसे नहीं, वैसे ही बताओ। यहाँ आकर जैसे राजू बोल रहा था ।"

कुमार कान्ता के पास आकर उसकी ओर मुँह करके बोला—"माला, मेरी माला !" बोल कर उसने कान्ता से पूछा—"और तुम्हें भाभी कौन सी जगह फिल्म अच्छी लगी ?"

कान्ता बोली—मुझे तो उस जगह आनन्द आया जब माला ने कहा—"मेरे राजू, मैं तुम्हारी ही हूँ ।"

"हाँ, मुझे भी उसके कहने का ढंग बड़ा अच्छा लगा ।"

"ढंग तो सिखाया जाता है उन्हें। तुम भी दो-चार बार इसी तरह कहो तो सीख जाओ ।"

"कैसे भाभी !" कुमार ने पूछा ।

"कान्ता ने कहा —"यों समझो,—

'मान लो मैं माला हूँ, तुम राजू हो ।"

"मान लिया भाभी !"

"तुम भी वैसे ही कहो मुझ से जैसे राजू माला से कहता था ।"

"कुमार ने कह दिया—"तुम, मेरी हो माला !"

"तुम मेरे ही हो राजू !" कहकर कान्ता ने कुमार का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया । कान्ता का विवेक अंतिम सांस भी तोड़

चुका था। चाँद शरमा कर बादलों की ओट में छिपा। शहर के घण्टे ने बारह बजाये और बाहर से लाला खैरातीलाल ने दरवाजे पर दस्तक दी—"अरे, जरा खोलना बैठक, सो गयीं क्या ?"

लालाजी की आवाज से कान्ता की भागी हुई बुद्धि लौट आयी। कलेजा धक् से रह गया। कुमार को जल्दी से चाबी देकर बोली—"जाओ खोल आओ जल्दी।"

कुमार जैसे ही बैठक खोलने गया तैसे ही कान्ता चीख उठी—"हाय दैइया, मर गई। हाय री मरी रे! अरे मेरी तो जान निकली जा रही है।"

लालाजी घर में आ चुके थे। कान्ता लेटे से बैठी हो चुकी थी। आँखों पर हाथ रखे थे। लालाजी ने पूछा—"क्या हुआ जी, अरे बताओ तो सही ?"

"हाय, राम, मर गई।" कान्ता फिर कराही।

लालाजी को पसीना आने लगा—"अरे कुछ बताओ तो सही। पता नहीं मैंने आज किस कम्बख्त का मुँह देखा था। मथुरा में गाड़ी का पहिया पटरी से उतर गया। मेरा तो बम्बई का काम भी ऐण्ड हो गया उलटे घर को लौटना पड़ा। और यहाँ तुम बीमार हो गयीं ?"

"हाय रे राम, बड़ा दर्द हो रहा है।"

"कहाँ, बताओ न जल्दी ?"

"आँख में किरकिरी गिर गई है लालाजी!"

"मलना मत ? अबे देख क्या रहा है छोकरे रुमाल लेकर ऊपर का पलक खोलकर निकाल जल्दी।" लालाजी ऊपर की ओर देखकर बोले।

कुमार ने रुमाल लेकर कान्ता के गाल से अंगूठा लगाकर उंगली से दूसरा पलक उठाया। आँख की कोर पर रुमाल घुमाया। बाद में कान्ता से पूछा—निकल गयी भाभी ?"

"इसमें पी ही कहाँ, इस आँख में है ?" कान्ता ने कुमार का हाथ दूसरी आँख से लगाकर एक लम्बी सांस खींची । लालाजी घबरा कर कुमार से बोले—"इस तरह नहीं, यहीं पर बैठकर आहिस्ता से निकाल चारपाई पर बैठ जा ।"

कुमार ने वहीं पर बैठकर फिर गाल पर अंगूठा लगाकर उंगली से कान्ता की पलक खोल रुमाल से किरकिरी निकालनी शुरू की ।

कान्ता चीखी—"हाय राम, मरी रे ।"

"निकली नहीं भाभी ?" कुमार ने फिर पूछा । कान्ता बोली—"तुम से पलक ठीक से खुली ही कहाँ है जरा तगड़े हाथ से खोलो तभी तो खुले ।"

ठीक दस मिनट बाद कान्ता की किरकिरी निकली । लालाजी ने भगवान् को धन्यवाद देते हुए कहा—"आँख की किरकिरी बड़ी तकलीफ देती है जी !"

"हाँ लालाजी, पता नहीं यह कब तक दुःख देगी ।" कान्ता का हाथ अब भी आँखों पर था ।

लालाजी ने आश्वासन दिया—"अब ज्यादा दुःख नहीं देगी । निकल चुकी है न ?"

"निकल तो चुकी है लेकिन पीड़ा तो छोड़ गई ।"

"आँखें बच गईं यही बहुत है जी ।" लालाजी समझाने लगे ।

कान्ता दांत पीसकर बोली—"इससे तो फूट जाना ही अच्छा था । पीड़ा तो न होती ।"

कान्ता को कराहती छोड़कर कुमार अपने घर की ओर चल दिया । कान्ता रुमाल की ओट से जाते कुमार को देखती रही और हाय मरी, हाय मरी भी करती रही । लाला खैरातीलाल नल पर मुँह धो रहे थे ।

रविवार बीता, सोमवार आया। शाम के चार बजे गीता से पाँच रुपये लेकर कुमार विनोद के दफ्तर पर जा लगा। नियत समय पर विनोद दफ्तर से निकला। कुमार लुकता-छिपता उसके पीछे चला।

सब्जी मण्डी तक कोई विशेष घटना नहीं घटी। दोनों आगे-पीछे चलते रहे। लेकिन, जैसे ही स्टेशन की ओर का मोड़ आया तैसे ही एक रिक्शा कुमार के पास से सर्र से निकल गया और विनोद के पास पहुँच कर रुक गया। कुमार रिक्शे को रुकता देखकर एक खम्बे की आड़ लेकर खड़ा हो गया।

रिक्शे से एक पतली-दुबली एक सुन्दर लड़की उतरी। उतर कर विनोद को हाथ जोड़े। कुमार ने अपनी डायरी निकाली और लिख लिया—"पहले हाथ लड़की ने जोड़े।"

उस समय कुमार और विनोद के बीच लगभग २५-३० गज का फासला था। इस फासले के बीच कोई ऐसी आड़ नहीं थी जहाँ जाकर कुमार छिप सके। अतः काफी प्रयत्न करने के बाद भी कुमार यह पता नहीं लगा सका कि आज की लड़की भी कल वाली ही है या और कोई दूसरी है। खम्भे की आड़ में खड़ा कुमार दोनों पर आँखें गड़ाये रहा।

लगभग आधे घण्टे तक दोनों में घुट-घुट कर बातें होती रहीं। कुमार केवल इतना देख पाया कि बातों में गम्भीरता के स्थान पर हास-परिहास ही अधिक है।

आध घंटे बाद बातों का अन्त हुआ। विनोद का बटुआ खुला, कुमार की आँखें चौड़ी हुईं। लड़की ने ना-नुच की लेकिन विनोद ने जबरदस्ती लड़की का पर्स खोलकर उस में रुपये डाल ही दिये और बटुआ फिर लड़की के हवाले कर दिया।

रुपये लेकर लड़की ने खड़े-खड़े एक चिट्ठी लिखी और विनोद की जेब में डाल दी। कुमार ने सब कुछ नोट कर लिया—"दोनों के दरम्यान कुछ रुपयों और चिट्ठियों का लेन देन भी हुआ।"

"ऐ ताँगा, स्टेशन चलोगे?" लड़की ने एक ताँगे वाले को आवाज

दी और कुमार को बिजली के खम्भे से चिपका छोड़ कर दोनों स्टेशन की ओर उड़ चले।

कुमार ने रुपये, चिट्ठी और स्टेशन की ओर जाने से यह अनुमान लगा लिया कि विनोद भाई कम-से-कम घण्टा आधा घण्टा तो घर अभी लौटने नहीं। अतः यह समाचार कल की बजाय आज ही भाभी को देना चाहिये।

बस जैसे ही वे दोनों स्टेशन की ओर चले, तैसे ही कुमार ने रिक्शा पकड़ा और झट से विनोद के घर जा पहुँचा। गीता खाना बनाने की तैयारी कर रही थी।

समय के पूर्व कुमार की सवारी आती देखकर गीता का माथा ठनका। समझ गई कुछ गड़बड़झाला जरूर है। इसलिए रसोई घर से निकल कर—"बैठो लल्ला, बैठो लल्ला।" कहती हुई बाहर निकल आई। कुमार के बैठने पर पूछा—"आज तो तुम्हारा चेहरा कुछ बता रहा है, शायद उस चोट्टी का पता लगा लिया तुमने ?"

कुमार बोला—"लगा तो लिया था। लेकिन, वह तो उन्हें भी ले उड़ी।"

"कहाँ ?" चौंक कर गीता ने पूछा।

कुमार बोला—"स्टेशन की ओर।"

"स्टेशन की ओर ?" गीता ने दुहराया।

"हाँ हाँ, स्टेशन की ओर।"

"दोनों साथ-साथ ?" गीता काँप रही थी। उसकी दृष्टि कुमार के चेहरे पर थी।

कुमार बोला—"साथ-साथ की बात कह रही हो, अरे भाभी दोनों बिल्कुल एक तांगे में गये हैं।"

"भागने के इरादे से तो नहीं गये ?" गीता ने डरते-डरते पूछा।

"यह राम जाने।"

"तब तुम क्यों नहीं गये उनके पीछे-पीछे ?"

कुमार बोला—"भला मैं क्या करता भाभी वहाँ। मान लो, वह दोनों शहर को चल दिए हों तो, क्या मैं भी चल देता? मैंने तो आपको इत्तला दे दी है। चाहो तो आप अभी चली जाओ।"

"वही कल वाली थी न? पहले यह तो निश्चय हो जाय।"

"यह मैं ठीक से तो नहीं कह सकता भाभी! फिर भी मेरा ख्याल यह है कि आज की कोई नई ही थी। क्योंकि मोटाई में आज वाली कल वाली से पतली थी।"

"चेहरा कैसा था? पता तो चेहरे से लगता है ठीक।"

"चेहरा कहाँ दीखा मुझे—मैंने महज कमर ही देखी है उसकी।"

"तब तुम यह दावे से कैसे कह सकते हो कि कल वाली नहीं थी?"

"बहुत-सी बातें हैं भाभी!" कुमार सकुचाता हुआ-सा बोला।

"मसलन?"

"नजाकत को ही ले लो न!"

"अच्छा, पहले पूरी रिपोर्ट तो सुनाओ। बाद में सवालों का जवाब दो। उसके बाद कुछ निष्कर्ष निकलेगा।"

कुमार ने रिपोर्ट सुनानी शुरू की—

"स्टेशन की ओर से बिजली की तरह सर्राटे से रिक्शे में लड़की आई और भाई साहब के पास आकर उसने रिक्शा रुकवा दिया।"

"वह खुद ही रुकी या इन्होंने आवाज दी थी, जरा सोच कर बताओ।"

"आवाज नहीं दी थी, मुझे याद है।"

"किसी तरह का इशारा किया हो?"

"हाँ, यह हो सकता है भाभी।"

"अच्छा आगे बयान करो।"

"रिक्शे के रुकते ही उसने भाई साहब को हाथ जोड़े।"

"इनसे भी पहले?"

"हाँ।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर वही खुसर-फुसर हुई जिसे मैं सुन नहीं सका।"

"हाव-भाव से तो कुछ पता चला ही होगा ? खैर, अब तुम जल्दी से मेरे कुछ सवालों का जवाब दो।" गीता ने यह कहकर सवाल शुरू किये :—

"तुम्हारे खयाल से उसकी उमर कितनी होगी ?"

"अठारह के इधर-उधर भाभी !"

"ऊँचाई कितनी थी ?"

"तुमसे एकाध मुट्ठी कम होगी।"

"बातें किस ढंग से हो रही थीं दोनों में ?"

"हँस-हँसकर भाभी !"

"दोनों हँस रहे थे ?"

"दोनों, और वह भी निःसंकोच।"

"वह आँखें भी तो नचा रही होगी लल्ला ?"

"वह आँखें नचा रही थी या कान नचा रही थी—यह मैं नहीं देख पाया भाभी ! लेकिन ऐसा मुझे जरूर लगा कि वह थी इनकी कोई पुरानी जानी-पहचानी।"

"यह तो साफ ही है। बस वही है मन्दिर वाली। कहीं जा रही होगी, सोचा होगा इत्तला देती चलूँ कहीं भटकते न फिरें।"

"बात तो कुछ ऐसी ही लगती है भाभी मुझे भी।"

"यह तो बताओ इन्होंने कुछ पैसा-धेला तो नहीं दिया छिनाल को। कभी कहा हो लो खर्च की कमी पड़ जायेगी। कुछ रुपये लेती जाओ ?"

"अरे हाँ, रुपयों की बात तो मैं भूल ही गया था। एक मुट्ठी नोट उसके ना-ना करते भी उसके बटुए में खोंस ही दिए।"

"सच ?" गीता को काठ-सा मार गया।

कुमार बोला—"तुम्हारे सर की कसम भाभी ! नोट लेकर उसने

कागज पर कुछ लिखा और इनकी जेब में डाल दिया।"

"लल्ला, बस सारा मामला साफ हो गया। मैं कहती न थी कि रुपये दिये होंगे। बदले में वह अपना पता लिखकर दे गई होगी—जहाँ गई है सौत !"

"यह मुझे भी पता नहीं है उसमें लिखा क्या है। लेकिन यदि इन्होंने वह चिट्ठी फाड़ी नहीं तो इनकी जेब से चिट्ठी पकड़ी जा सकती है।"

"खयाल मेरा भी यही है। आज अगर लौट आएँ तो फैसला कर ही लिया जायगा।"

कुमार रिपोर्ट देकर घर को चल दिया। गीता ने पानी की बाल्टी उठा कर चूल्हे में डाल दी।

गीता जैसे ही चूल्हे में पानी डालकर मुड़ी विनोद ने घर की दहलीज पर पैर रखा। खाली बाल्टी गीता के हाथ में थी। खाली बाल्टी देखकर विनोद बोला—"आज तो शगुन अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं ?"

"क्यों कि यहाँ न मन्दिर है—न रेलवे स्टेशन ! तुम्हारा घर है और गीता नौकरानी है।" गीता जवाब देकर चल दी।

'मैं तो पहले ही कह रहा हूँ शगुन अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं। तुम्हारा यह डेढ़ गज ऊपर चढ़ा हुआ माथा भी यही बता रहा है।"

गीता तड़प उठी। बोली—"जिसका माथा नीचा हो और टमाटर की तरह चमक रहा हो—वहाँ जाइये। मेरा तो जैसा भगवान् ने बना दिया, वैसा ही है।"

विनोद गीता के उत्तर से समझ गया कि मामला गंभीर है। अतः बोला—"मुकद्दमे की कार्रवाई शुरू करने से पहले बराये मेहरबानी अभियुक्त को चार्जशीट तो सुना दो कि उसने क्या-क्या अपराध किये हैं ?"

विनोद के निवेदन का गीता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बोली—"आप जैसे देवता पुरुष भला क्या अपराध कर सकते हैं और आपके व्यभिचार को अपराध कह भी कौन सकता है!"

गीता के 'व्यभिचार' शब्द पर विनोद तुनक उठा। बोला—"इसका क्या मतलब है?"

गीता ने उसी लहजे में उत्तर दिया—"मतलब बतलाने का मैंने ठेका नहीं ले रखा है।"

"तो ऊट-पटाँग बकने का ही ठेका ले रखा है क्या?"

हाँ-हाँ, जो मर्जी आयेगी बकूँगी—मेरी जबान पर पाबन्दी नहीं लग सकती। पाबन्दी उसकी जबान पर लगाना जो तुम्हारी लगती-बगती है।"

"वह लगती-बगती है कौन, या यों ही बके जा रही हो?"

विनोद की उत्तेजना शनैः शनैः ऊपर की ओर सरकती आ रही थी। उधर गीता के उबाल की भी यही हालत थी। बोली—"मैंने खाई है उसकी छठी—जानो तुम, जिसके पीछे दुम हिलाते फिरते हो। ऐसे पूछ रहे हैं जैसे जनाब कुछ........"

इतना कहकर गीता मुड़ने लगी। विनोद बोला—"तुम क्यों जाती हो, मैं ही चला जाता हूं।"

गीता रुकती हुई बोली—"तुम चले गये तो वह बेचारी कहाँ रहेगी?"

"कौन बेचारी?"

"वही मेरी सौत, मन्दिर वाली! वही जो चिट्ठियाँ लिख-लिख कर जूतों में सरका जाती है?"

"मेरे जूतों में?"

"ना, जी मेरों में?"

"गलत बात है। ऐसा मेरे साथ कभी किसी ने नहीं किया।"

विनोद के प्रतिवाद पर गीता बोली—"मेरे पास सबूत है, अभी

नहीं हूं। थोड़ा पढ़ना-लिखना भी जानती हूँ।" गीता बोलती रही। विनोद हूँ-हूँ करता रहा।

"मुझे तुम्हारी एक एक-दिन की गतिविधि का पता है। किस दिन क्या कर्म किया तुमने ?"

"कर्म क्या, कुकर्म कहो।"

"और क्या शुभ कर्म थे वह ?"

"क्या प्रमाण है तुम्हारे पास ?"

"यह पड़ा प्रमाण।" गीता ने वही मन्दिर वाली चिट्ठी विनोद के आगे फिर फेंक दी। विनोद ने पढ़ा। चेहरा उतर गया।

विनोद के कुछ बोलने से पहले ही गीता बोल उठी—"पाप के सर पर चढ़ते ही गर्दन लटक गई। अभी तो पाप ने बोलना भी शुरू नहीं किया है। इसीलिए जाते थे न मन्दिर। जरा भगवान् के दर्शन कर आऊँ। यह नहीं कहा उस छिनाल से दो बातें कर आऊँ। दैया री दैया, भगवान् के स्थान पर और यह पाप !"

"गीता......" विनोद के मुँह से निकला।

गीता बोलती रही—"महोदय, गीता मर चुकी। उसकी लाश तुम्हारे मकान से जा रही है। रखना उसी नौटंकी को लाकर यहाँ अब।"

विनोद ने साहस बटोरा—"गीता यह चिट्ठी जाली है। मैं तुम्हारी कसम खाने को तैयार हूँ मैं पहले भी कह चुका हूँ।"

"हाँ-हाँ, मेरी कसम तो खाओगे ही ; मैं ही खटक रही हूँ तुम्हारी आँखों में।"

"अपनी खाने को तैयार हूँ। यह चिट्ठी कोई शरारत है। विश्वास करो गीता !"

"यह शराफत का पर्दाफाश है।"

"विश्वास करो गीता !" विनोद ने नीची गर्दन करके भर्राये गले से फिर कहा।

गीता बोली—"वह दिन लद गये जब खलीलखां फाख्ता उड़ाया करते थे। अब भी धोखा देना चाहते हो क्यों? अरे तुम तो अब गधे के चिदे हो, चन्दे हो, तारे हो और पता नहीं क्या-क्या हो? मिल आओ बेचारी से। चले जाओ इसी गाड़ी से।"

"मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ तुम्हें?"

"सफाई की कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक मैं चली।"

गीता फिर उठी। विनोद ने हाथ पकड़ कर रोका। बोला—"बेहतर होगा पहले मामले की छानबीन करलो। उसके बाद फिर फैसला करना गीता!"

"खूब छानबीन करली। कई दिन से कर रही हूँ। तुम इतने गिर चुके हो कि तुम्हारे उठने की अब कोई उम्मीद नहीं रही।"

"तुमने क्या छानबीन की मुझे भी तो बता दो।"

"सुनो अतरसों तुम्हें एक छिनाल मिली। बहुत देर तक मटक-मटक कर तुम दोनों की बातें हुईं। हाथ जुड़े जैसे किसी बड़ी बहन को जोड़ रहे हो।"

"हाँ, परसों एक औरतने मुझसे रास्ता पूछा था।" विनोद ने स्वीकार किया।

गीता आगे बोली—"दूसरे दिन अपने किसी दूसरे यार के साथ एक भर और रंगीली तुम्हें मिली। उसे लेकर तुम होटल में गये। घंटे बाद वहाँ से निकले। बड़े गिले-शिकवे हुए दोनों की ओर से। पहले तो रात-रात भर पड़े रहते थे, अब भूल गये। जनाब कह रहे थे—अजी फुरसत ही नहीं मिलती, दफ्तर में काम बहुत है। मन्दिर चला जाता हूँ। कौन थी जी वह? तुम्हारी क्या लगती थी—कह दो बहन थी।"

"बहन तो नहीं, भाभी लगती थी। दौलतराम की पत्नी पुष्पा थी।"

"होटल ही रहा था मिलने को। बिना मिले इतना दिल टूट रहा

था तो क्या घर नहीं आ सकती थीं तुम्हारी भाभीजी ?"

"वह लोग अभी देहरादून से आये हैं।"

"ठीक है, जो कह दो ठीक है। किसी को दौलतराम की बहू बताओ, किसी को धन्नाराम की बहन बताओ।"

"मेरे साथ चलकर इन्क्वायरी करलो।" विनोद ने फिर साहस बटोरा।

गीता पर फिर भी कोई, प्रभाव नहीं पड़ा। बोली—"मुझे जरूरत क्या पड़ी है। एक दो हों तो इन्क्वायरी करूँ भी—सैकड़ों रांड इकट्ठी हो रही हैं तुम्हारे पीछे तो ?"

"एक भी नहीं है; गलत बात है।"

"एक को तो अभी-अभी छोड़कर आ रहे हो स्टेशन पर।" गीता ने जवाब दिया।

विनोद बोला—"वह तो तुम्हारी बहन थी।"

"हाँ जी, सब मेरी बहन ही हैं। कोई तुम्हारी भी है इनमें ?"

"मेरी भी समझ लो।"

"तो बहन को ही रुपये दिये होंगे आज—मुट्ठी भरकर नये-नये नोट ?"

"नहीं, वह तो तुम्हारी बहन को दिए हैं वह मेरी बहन नहीं थी।"

"दिये जाओ मुझे क्या—आँख फूटी पीर गई। मैं चली।" यह कहकर गीता ने सामान बाँधना शुरू कर दिया। विनोद बोला—"अच्छा जाती हो तो यहाँ से सब कुछ ले जाओ—मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

गीता ने कहा—"धन्यवाद, मैं तो जनाब थूकूँगी भी नहीं—आपका सामान आपको मुबारक।"

"गीता ! सोच लो—अभी समय है।" विनोद को पुनः क्रोध आना शुरू हुआ। गीता की उत्तेजना ज्यों की त्यों थी। उसकी सूरत से साफ झलक रहा था—'न मैं तेरी, न तू मेरा।'

"तांगा ला दूँ—कहो मायके पहुँचा आऊं ?"

"कोई, जरूरत नहीं है। मैं आपकी सूरत से बहुत प्रसन्न हो चुकी। अगर एक दिन भी इस घर में रहूँ······।"

"तो मुझ पर लानत है।"

दरवाजा खुला और राजरानी ने प्रवेश किया। बहुत देर से दीवार की ओट में खड़ी राजरानी गीता और विनोद के वाक्‌युद्ध का आनन्द ले रही थी।

राजरानी की सूरत देखते ही दोनों धक से रह गये। चेहरे फक्क पड़ गये मानो दोनों ही एक दूसरे की चोरी करते पकड़े गये हों। विनोद ने बिना दुआ-सलाम किये ही अपनी गिरी हुई गरदन और भी नीचे इस तरह गिरा ली, गोया किसी पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हो। गीता ने भरे मन से राजरानी की ओर एक क्षण टुकर-टुकर देख कर कहा—"आओ जीजी!"

राजरानी बोली—"मैं तो आई, लेकिन तुम्हारा डोला किधर चला ?"

गीता ने रुआंसी होकर जवाब दिया—"श्मशान की ओर दीदी!"

"इतनी रात में ?" राजरानी ने पूछा।

गीता ने कहा—"हाँ दीदी अब मेरा दुनिया में रह ही क्या गया है ?"

गीता को अधिक छेड़ना उचित न समझ कर राजरानी ने विनोद की ओर मुख किया—"क्यों महाशय कौनसी दुनिया में हो ?"

विनोद ने भी गरदन लटकाये-लटकाये ही जवाब दिया—"अभी तक तो भाभी यहीं हूँ आगे की राम जाने।"

"तब तो यों समझूँ कि आप अभी अपने किसी पाप का प्रायश्चित कर रहे हैं ?"

तपाक से विनोद बोला—"ठीक समझीं—बिलकुल यही बात है।"

"लेकिन कौन से पाप का भैय्ये ?" राजरानी ने फिर पूछा—"छिपाने की बात न हो तो हमें भी बता दो। कहते हैं दान और पाप बताने से आधे रह जाते हैं।"

"छिपाने की कोई बात नहीं है भाभी ! इस समय तो मैं केवल शादी के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।"

विनोद के चुप होने से पहले ही गीता उबल पड़ी—"इसका प्रायश्चित्त आप क्यों करने लगे, वह तो मुझे करना है—मेरे घर वालों को करना है, जिन्होंने आप जैसे महापुरुष के गले मे मुझ जैसी कुलक्षिणी को लटका दिया।"

विनोद ने उत्तर दिया—"ऐसी उपाधियाँ धारण करने का चाव हो तो आप धारण कर सकती हैं। मेरी ओर से तो यह किसी को नहीं दी जातीं।"

गीता ने मोर्चा फिर संभाला—"आपकी ओर से तो महज नोट और चिट्ठियां दी जाती हैं। उनमें क्या लिखा होता है, आप जानें।"

विनोद बोला—"विश्वास कीजिये उनमें यह उपाधियाँ नहीं होतीं।"

"यह उपाधियाँ तो मेरे लिए है, उनके लिए क्यों होने लगीं।"

राजरानी दोनों की ओर बारी-बारी से देखकर मुस्करा रही थी। बोली—"शाबाश, मुझे मालूम हो गया आप दोनों ही वाक्-युद्ध मे प्रवीण हैं। लेकिन क्या मैं जान सकती हूँ इस चोंच-भिड़ाई का कारण क्या है ?"

"मेरा दुर्भाग्य दीदी ?" गीता बोली।

"मेरी बदनसीबी भाभी !" विनोद ने जवाब दिया।

"यह दुर्भाग्य और बदनसीबी कब से आयी आप लोगों के पास ?"

"अभी थोड़ी देर पहले भाभी !" विनोद ने गरदन उठाई।

गीता ने कहा—"अरे सिर तो पता नहीं कब से सवार थी।"

"और तुझे पता ही नहीं चला ?" राजरानी ने पूछा।

गीता बोली—"नहीं जीजी, मुझे तभी पता चला जब मेरी गरदन टूटने लगी।"

"पाप तो मैंने किये हैं—तुम्हारी गरदन क्यों टूटने लगी ?" विनोद ने गीता की ओर मुख किया।

"इसलिए कि उन पापों की भागीदार मैं भी हूं।" गीता बोली।

"अच्छा सिद्धान्त है तुम्हारा—करे कोई भरे कोई—अरे, जो जैसा करेगा, वैसा फल पायेगा।"

"फल तो मुझे पाना है महाशय आपकी करनी का।"

"न पाइये ?" विनोद फिर नमका।

गीता फिर भड़की—"हाँ-हाँ, नहीं पाऊँगी। बल्कि अब मेरे कामों का फल तुम पाओगे।"

राजरानी मामला बढ़ता देखकर घबरा गई। बोली—"अरे, कुछ बताओ तो सही आखिर बात क्या है ?"

विनोद बोला—"इन्हीं से पूछ लो 'आ बैल मुझे मार' वाली कहावत कर रही है ?'

गीता बैठे से खड़ी हो गई—"मुझ से तो पूछ ही लो। खुद बताते शर्म आती है अब। पराई औरतों के पीछे दुम हिलाते फिरते हो मन्दिर-मस्जिद में ?"

बजाय इसके कि विनोद कुछ जवाब दे, राजरानी बोली—"छी-छी, बहुत बुरी बात है बाबू यह तो। इससे बड़ा तो दुनियाँ में कोई पाप ही नहीं।"

विनोद ने राजरानी को रोकते हुए कहा—"बिलकुल गलत बात है। न बात का सर न पैर······?"

"ठहरो-ठहरो, मैं बताती हूँ।" गीता ने विनोद को रोक दिया। बोली—"जीजी, एक नहीं हजार छिनाल पाल रखी हैं इन्होंने। अब

तुम्हीं बताओ इस घर में फिर मेरी जरूरत क्या है ?"

"बिलकुल बेसिर-पैर की बातें क्यों करती हो गीता !" इतने दिन हमारी-तुम्हारी शादी को हो गये, चार दिन पहले तो मैं देवता था और आज सब कुछ हो गया ।"

"हाँ, तब मैं भूल में थी—पता नहीं चला था ।"

गीता के जवाब पर विनोद ने पूछा—"अभी क्या पता चल गया तुम्हें ?"

"यह थोड़ा पता चल गया ?"

राजरानी ने गीता को रोका तो विनोद बोल उठा—"खाक पता चल गया ? अपनी आँखों से देखा कुछ तुमने ?"

गीता ने राजरानी की ओर मुँह करके कहा—"पूछना जीजी, वह मन्दिर वाली क्या इनकी जीजी लगती है ?"

"कौन मन्दिर वाली ?"

विनोद के इतना कहते ही गीता गर्माथी—"कौन मन्दिर वाली, चिट्ठी हाथ में लिए बैठे हैं और इतने पर भी उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे कौन मन्दिर वाली ?"

"अच्छा तो किसी मन्दिर वाली से इनकी जान-पहचान हो गई है ?" राजरानी ने अनजान बनते हुए पूछा ।

गीता बोली—"नहीं जीजी, बल्कि यों कहो कि मन्दिर में किसी से जनाब का दोस्ताना हो गया है ।"

"यह बात है ?" राजरानी को दोनों की छेड़छाड़ में फिर आनन्द आने लगा ।

गीता ने जवाब दिया—"यही एक बात कहाँ रुकती है । उसके अलावा और न जाने कितनी हैं । किसी का हाथ पकड़ कर होटल में ले जा रहे हैं, किसी को स्टेशन की ओर लटकाये ले जा रहे हैं । किसी को किसी दोस्त के पास भेज रहे हैं ।"

"तब तो यों समझूँ कि शहर का सारा व्यभिचार इन्हीं पर आकर केन्द्रित हो गया है ?"

राजरानी की बात सुनकर गीता ने कहा—"शहर का क्या, देश भर का समझो दीदी !"

राजरानी ने पूछा—"अच्छा यह मामला किसी तरह से खत्म भी होगा या नहीं ?"

दृढ़ स्वर में गीता ने जवाब दिया—"अभी खत्म हो जाता है—यह लो खत्म हुआ।" गीता उठकर दरवाजे की ओर चलदी।

राजरानी ने हाथ पकड़ लिया "नहीं गीता, बेवकूफी मत करो।"

अपना हाथ छुड़ाते हुए गीता बोली—"कसम खा चुकी हूँ दीदी, मैं अपनी जिद्द नहीं छोड़ा करती। अब इस घर में एक मिनट नहीं रहूँगी।"

राजरानी मामले को संगीन देखकर समझ गई कि अब बात को न खोलना बुरा होगा। अतः गीता का हाथ पकड़े-पकड़े बोली—"कहो विनोद क्या कहते हो ?"

विनोद अनमना-सा होकर बोला—"मैं क्या कहूँ भाभी ! यह अब जा रही हैं, तो जाने दो। थोड़ी देर बाद मैं भी अपना काला मुँह करके कहीं निकल जाऊँगा।"

राजरानी ने कहा—"निकल तो जाओगे ही, लेकिन पहले मिठाई तो खिलाते जाओ। उस दिन जो शर्त लगाई थी ?"

विनोद को उस दिन की शर्त याद आई। बोला—"भाभी, तुम जीतीं मैं हारा। मिठाई तुम्हारी खरी।"

गीता दोनों का मुँह ताक रही थी।

राजरानी बोली—"अब नखरे तुम भी खत्म करदो गीता ! कोप-भवन को छोड़कर रसोई भवन आबाद करो। शायद अभी तक खाना भी नहीं बना है तुम्हारे घर।"

"जिसको भूख लगे, बनाये—मुझे क्या ?" गीता का क्रोध यथापूर्व था। लेकिन राजरानी की बातों से वह हैरान थी।

राजरानी दोनों को आश्चर्यचकित करती हुई बोली—"गीता, वह मन्दिर वाली तो मैं थी।"

"गलत बात है जीजी! भला मैं कैसे मान सकती हूँ। इन दोनों के पत्रव्यवहार का साधन तो एक दूसरे के जूते; सैंडिल बने हुए हैं।"

"मेरे पास भी तो हैं सैंडिल है।"

राजरानी के उत्तर का गीता को विश्वास नहीं हुआ—"तुम तो महज झगड़ा मिटाने के लिए यह सब अपने सिर ले रही हो। लेकिन जीजी! यह झगड़ा मेरे घर से जाये बिना समाप्त होने वाला नहीं।"

राजरानी ने अब विनोद से हुई शर्त की सारी कहानी ज्यों की त्यों गीता को सुनादी कि कैसे उसने पत्र लिखा और किस तरह कुमार के जूते में घुसाया कि जिससे उसे पता तुम्हारे घर या और कहीं जाकर लगे।

गीता को अब भी विश्वास नहीं आया। बोली—"मान लो पत्र का पता पहले ही चल जाता तो पत्र झूठा सिद्ध हो जाता। पर मैं कैसे मान लूँ कि पत्र तुम्हारा लिखा था।"

विनोद के चेहरे की जर्दी धीरे-धीरे उड़ रही थी और उसी प्रकार उसकी गर्दन भी आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर उठ रही थी।

राजरानी बोली—"ऐसा हो जाता तो और हथकंडा अपनाया जाता बहरहाल शर्त तो मुझे ही जीतनी थी।"

"गलत बात है।" गीता ने फिर कहा—"यदि यह चिट्ठी भी तुम्हारी मानली जाय तो यह अन्य औरतें कौन हैं? सब कोई तुम्हीं तो नहीं हो।"

विनोद समझ गया कि अब आसमान से गिर कर खजूर पर अटका हूँ। भगवान इससे और नीचे सरका दे। अतः हिम्मत करके बोला—"वह इनकी और कोई बहन होंगी, उनका भी पता किसी-न-किसी

दिन चल ही जायगा।"

"यानी सारी दुनिया तुम्हारे ही पीछे पड़ी है। बड़े सीधे-साधे हो न?"

विनोद में जान पड़ चुकी थी। बोला—"आपने मेरा टेढ़ापन क्या देख लिया है। किसी ने करदी होगी झूठ-मूठ शिकायत।"

"शिकायत नहीं, मुझे तुम्हारी एक-एक दिन की हरकत का पता है। एक-एक कदम का हाल बता सकती हूँ और अभी बताया भी है।"

"इसका मतलब है कि तुम मेरी जासूसी कराती हो—लेकिन किससे?"

गीता ने जवाब दिया—"क्यों बताऊँ नाम। मैं तो काले चोर से कराती हूँ।"

गीता के उत्तर से कुछ देर विनोद चुप रहा। सोचता रहा। सोचने के बाद बोला—"समझ गया, समझ गया—तुम्हारे काले चोर को भी। मुझे क्या पता था हजरत मेरे ही ऊपर जासूस तैनात हुए फिर रहे हैं। मैं तो समझता था कि छुट्टियों के दिन हैं, बाजार में मटरगश्ती को चला आता होगा।"

"कौन चला आता होगा? क्यों किसी को खामख्वाह बदनाम करते हो?"

विनोद तपाक से बोला—"और कौन, वही तुम्हारा काला चोर कुमार! तभी वह मुझे दो-तीन दिन से बाजार में दिखाई देता था। वही मेरे यहाँ आने से पहले आया और फूँक मार कर निकल गया। दरवाजे में तो उसकी और मेरी दुआ-सलाम भी हुई थी।"

"तब क्या वह इसी काम से आया था। यहाँ आने के लिए क्या उस पर पाबन्दी है?" गीता ने पूछा।

विनोद ने कहा—"पाबन्दी तो नहीं है; लेकिन यह मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि आज वह अपनी रिपोर्ट देने ही आया था।"

गीता ने फिर पूछा—"अच्छा आया भी था तो कौन सी गलत बात

कहदी उसने। तुम किसी चुड़ैल को स्टेशन छोड़ने नहीं गये थे ?"

राजरानी गीता के इस उत्तर पर हँस पड़ी—"चुड़ैल को ; बड़ी हिम्मत है तब तो इनकी ?"

गीता ने कहा—"चुड़ैल तो मैं कह रही हूँ, इनके लिए तो वह लालपरी होगी। भला यह चुड़ैल कैसे कह सकते हैं ?"

विनोद ने गीता को टोका—"पहले सुन तो लो वह कौन चुड़ैल है, जिसे मैं छोड़ने गया था। मैं कसम खाकर कहता हूँ किसी चुड़ैल को स्टेशन छोड़ने नहीं गया। हाँ तुम्हारी बहन नीता को अवश्य छोड़ने गया हूँ।"

गीता ने मुँह बना कर कहा—"हाँ जी, सभी नीता हैं। नीता को ही शायद हरे-हरे नोट भी दिये होंगे ? नीता ने ही शायद बदले में प्यार भरी चिट्ठी लिखकर भी दी होगी ?"

चिट्ठी की बात पर विनोद चौंक उठा। बोला—"दी तो थी पर यह पता नहीं, वह प्यार भरी है या दुतकार भरी—पढ़ ही नहीं पाया मैं।"

"और शायद खो भी गई हो।" गीता ने वाक्य पूरा किया।

विनोद बोला—"खोई क्यों जाती, देखता हूं।" कहकर विनोद उठा। जेब टटोली। चिट्ठी मिल गई। विनोद ने गीता की ओर फेंकते हुए कहा—"लो पढ़ लो चुड़ैल की चिट्ठी। तुम उसकी लिखावट भी अच्छी तरह पहचानती हो।"

गीता ने चिट्ठी खोली। चुप-चुप पढ़ना शुरू किया। लिखा था—"जीजी के चरणकमलों में नीता का नमस्कार।" गीता का चेहरा हल्का हो गया। सांस रोककर गीता ने आगे पढ़ा—"जीजी, क्षमा करना। आपके दर्शन करने की बड़ी इच्छा थी। कल से मेरी परीक्षा आरंभ हो जायेगी। रास्ते में गाड़ी लेट हो गई फिर भी हिम्मत करके एक रिक्शा लेकर भागी। लेकिन रास्ते में जीजाजी दिखाई दिये उनसे बातों में कई मिनट निकल गये। ट्रेन का समय फिर हो गया था।

मन मार कर जीजाजी के साथ स्टेशन लौट गयी इसलिए आपके दर्शनों से वंचित हुई मैं जा रही हूं । तुम्हारे लिये यहाँ लौटने पर उन्होंने शाल मँगाया है । ४०) रुपये मेरे मना करने पर भी जीजाजी ने दे दिए । मैंने भी इसीलिए ले लिये कि शायद मुझे ही कमी पड़ जाय ।

"घर पर भाभी नहीं हैं, मायके गयी है । भाई साहब ने चलते समय कह दिया था कि गीता को भेजती जाना । इसलिए आप जल्दी घर चली जाना । मैं भी परीक्षा देकर लौटती बार भाभी को लेती आऊँगी ।

आपकी छोटी बहन—

नीता ।"

"क्या लिखा है चुड़ैल ने ?" गीता को चुप देखकर विनोद ने पूछा ।

गीता जल-भुन गई—"मुँह सँभाल कर बोलो—खबरदार अगर मेरी बहन को फिर कभी ऐसे कहा ।"

विनोद ने कहा—"मैं तो उस चुड़ैल को कह रहा हूँ जिसे मैंने रुपये दिये । उसे ही स्टेशन छोड़कर आया हूँ । बदले में उसने प्यार भरी चिट्ठी मुझे दी । तुमने अपने जासूस को इसीलिए इनाम दिया । दिया भी है या नहीं या यों ही टाल दिया ?"

"तुम्हें क्या, दे या न दें—हमारा देवर है । ऐसे-ऐसे काम भी उससे हम न लेंगे तो और किससे लेंगे ।"

गीता के इस उत्तर से विनोद हँस पड़ा । बोला—"ठीक है जी, इन देवरों को और काम ही क्या है ? मैं तो महज इसलिए कह रहा हूँ कि तुमने इनाम न दिया हो तो मैं ही दे दूँ ।"

"दे दो, मैं मना कब कर रही हूं । कभी रखे हैं चार पैसे उसके हाथ पर । चले हैं आज बख्शीश देने ।"

राजरानी दोनों की बातें सुनकर मुस्करा उठी । विनोद ने कहा—"मैंने तो भाभी उसके लिए एक इनाम चुन लिया है । लेकिन उस इनाम पर भी मुझ से ज्यादा अधिकार इनका ही है । चाहें तो दे दें ।"

"मैंने हाथ पकड़े हैं क्या तुम्हारे कभी जो आज पकड़ूँगी। जो मरजी आये दे दो।" गीता ने कहा।

विनोद बोला—"बस तो समझ लो, मैं तो अपनी ओर से दे चुका। आगे तुम जानो।"

गीता ने पूछा—"क्या दे चुके ?"

"झगड़े की जड़।" विनोद ने कह दिया।

"कौनसी झगड़े की जड़ !" उत्सुकता से गीता ने पूछा।

विनोद ने जवाब दिया—"यही नीता ! मेरी राय में यही इस जासूस को सौंपकर इसकी सेवाओं का उचित पुरस्कार दे दिया जाय। क्यों भाभी ?"

राजरानी बोली—"तुम जानो भैया ! तुम दोनों की माया तो अपरम्पार है। जरा देर में 'तू मेरा, न मैं तेरी' और जरा देर में 'तू मेरा, मैं तेरी'।"

"तब क्या तुम यही चाहती थीं भाभी कि हमारी रोज इसी तरह बजती रहे ? अरे मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि हमारी खटपट हो ही नहीं सकती।"

राजरानी ने कहा—"अच्छा यह बात है। देख लेना फिर ; यह तो लल्ला एक ही लटका था—आये चित्त। फिर अकड़ते हो ?"

"तोबा-तोबा भाभी ! मैं तो यों ही कह रहा था। अब डबल मिठाई खाने की तैयारी करलो न ?"

"आये भाभी को मिठाई खिलाने वाले। दो घंटे से बैठी हूँ और पानी तक को पूछा नहीं, यह खिलाएँगे मिठाई ?"

गीता का जवाब सुनकर विनोद बोला—"क्यों जी मैंने तो नहीं पूछा और तुमने ?"

'मैं तो खाना बनाने जा रही हूँ जीजी के लिए। बाजार की सड़ी-गली चीज क्यों खिलायें।" कहकर गीता रसोईघर की ओर चलदी।

कान्ता के मन-मन्दिर को पवित्र बनाये रखने के लिये लाला खैराती-लाल ने उसकी प्रवृत्ति धार्मिक विषयों पर ही केन्द्रित करने के लिए तन-मन-धन से पुनः प्रयत्न आरम्भ कर दिया। लालाजी ने मन ही मन इस बारे में जिन वस्तुओं का आविष्कार किया था वह मुख्यतः तीन थीं। इन वस्तुओं की शृंखला में प्रथम स्थान चित्रकला और वास्तुकला को प्राप्त था। अर्थात् बाजार से देवी-देवताओं के चित्र और यथासम्भव देवमूर्तियों का घर में संग्रह करना, ताकि कान्ता की दृष्टि के चारों ओर देवी-देवता ही सदा विराजमान रहें। दूसरा स्थान उन्होंने भक्तिकाल के साहित्य को दिया था जिसमें गीता, रामायण, महाभारत और सूरदास की पदावलियाँ आदि थीं; और तीसरा स्थान एक ऐसी दादी को दिया था जो कान्ता को चाहे जो समझे, लेकिन खैरातीलाल को अपना पोता अवश्य समझे।

इन वस्तुओं में और सब वस्तुएँ तो लालाजी को सुलभ थीं, केवल दादी ही एक ऐसी वस्तु थी जिसका मिलना वह कठिन समझ रहे थे; क्योंकि शहर की दादियों से तो वह शादी से पहले ही परिचित थे। अतः उनको नौकर रखकर कान्ता की रखवाली कराना खेत को खरगोशों के हवाले करना था। रही रिश्तेदारी की बात, वहाँ कहीं दादियाँ तो अलग, उन्हें किसी भाभी तक के भी जीवित होने की सम्भावना नहीं थी। अतः लालाजी ने दादी के प्रश्न को रामआसरे छोड़कर पहले बाजार के नुस्खे लाना ही तय किया।

एक दिन वह दूकान से उठे और एक तस्वीर वाले की दूकान पर पहुँचे। तस्वीर वाला लालाजी के चरित्र ही नहीं, जीवनचरित्र तक से अच्छी तरह परिचित था। उसे ज्ञात था कि अपने ज्ञान के अनुसार लालाजी का जनसाधारण ही नहीं, अपितु बहुत सी बातों में ऋषि-मुनियों तक से मतभेद है। वस्तुतः यही कारण है कि इस आयु में लालाजी सन्यास आश्रम की ओर न जाकर पुनः गृहस्थ आश्रम की ओर मुड़ गये। अतः उसने अनुमान लगाया कि लालाजी की नई पत्नी

घर में है, स्वयं रसिक तबियत के आदमी हैं, निश्चय ही मन भड़का तस्वीरें पसन्द करेंगे। इसलिए वह आदरसहित लालाजी का हाथ पकड़ कर पहले उस कमरे में ले गया जहां ऐसी मन-भड़काऊ तस्वीरों के नमूने टँगे थे।

इन नमूनों में नग्न, अर्द्धनग्न और कोई-कोई पूर्णरूपेण नग्न नारी चित्र दीवार पर लटक रहे थे। लालाजी बड़ी श्रद्धा के साथ आँखें गड़ा गड़ा कर उनके नग्न अंगों का अपनी वृद्ध तरंगों से सत्संग कर रहे थे। जिस नारी चित्र पर लालाजी की ललचाई दृष्टि अटकती या भटकती, दूकानदार तुरन्त बोल उठता—"सेठजी, जरा देखिए तो इसके सीने की क्या सुन्दर बनावट है। सुभानअल्लाह, अपने ढंग की निराली तस्वीर है।"

लालाजी 'हाँ' कहते।

दृष्टि दूसरे चित्र पर डालते ही दूकानदार फिर बोलता—"देखिए न वेणी क्या है, मोर को भी मात कर रही है। जी चाहता है घंटों इस वेणी को देखकर नेत्रों की ज्योति बढ़ाई जाय।"

दूकानदार बोलता रहता—"वास्तव में जिन घरों में इन सर्वांग-सुन्दरियों के चित्र होते हैं, साक्षात् इन्द्रलोक नजर आता है वह घर।"

दूकानदार को सौंदर्य का वर्णन करते छोड़कर लालजी तीसरे चित्र की ओर खिंच जाते। दूकानदार फिर आगे बढ़ता—"देखिए न इस चित्र की जंघा! मालूम होता है चित्रकार ने कालिदास के ग्रन्थ 'शाकुन्तल' का गहन अध्ययन किया है। नारी ज्ञान के महान् लेखक 'वात्सायन' ने जिस प्रकार की सौंदर्यमयी नारियों के सुन्दर अंगों का वर्णन किया है, यहीं पर उसके दर्शन आप प्रत्यक्ष कर रहे हैं।"

दूकानदार ने लालाजी से पूछा—"कहिए उतारूँ यह?"

"नहीं, कुछ धार्मिक चित्र दिखाओ।" लालाजी अपनी गर्दन घुमा कर बोले।

"आप शंकर-पार्वती की क्रीड़ा पसन्द करेंगे या कृष्ण-गोपी-लीला?"

दूकानदार ने निराशा के स्वर में पूछा ।

लालाजी बोले—"भगवत् लीला।"

"यानी विष्णु-लक्ष्मी क्षीर सागर विलास ?"

"हाँ-हाँ, वही जिसमें लक्ष्मी भगवान् के पैर दबा रही है।" लालाजी प्रसन्न हो गये ।

"समझ गया आप धार्मिक चित्र चाहते है।"

"बेशक।"

"आइये।"

लालाजी को दूसरे कमरे में ले जाकर दूकानदार ने कहा—"यह सावित्री सत्यवान चित्र है—आया पसन्द ?"

"हाँ, और दिखाओ।"

"यह शंकरजी तपस्या कर रहे है।" दूकानदार ने लालाजी का ध्यान दूसरी ओर खींचा ।

"ठीक है।"

"और यह रही आपकी मनपसन्द तस्वीर लक्ष्मीजी भगवान के चरण दबाते हुए।"

लालाजी खुश हो गये । बोले—"और किसी देवी-देवता की हो तो वह भी दिखादो।"

"च्यवन ऋषि की भी है। कहिए तो दिखाऊँ ?"

"रहने दो उसे भाई ! वह तो जमाना ही बदल गया । अब कहाँ रहे हैं ऐसे वैद्य जो आदमी की काया पलट दें । न ही इनकी चटनी में वह ताकत रही। बेकार की बातें रह गई हैं।"

लालाजी के चुप होते ही दूकानदार बोला—"मीराबाई पसन्द करेंगे ?"

लालाजी ने पूछा—"वही न जिसने अपने पति को छोड़कर किसनजी की मूर्ति को ही अपना पति मान लिया था ?"

"जी हाँ, वही।"

"उसे भी रहने दो।"

"इन्द्र-सभा का कोई चित्र दे दूँ?"

"नहीं भाई, उसकी जगह यदि कोई नरक-चित्र हो तो बँधवा दो।"

"पुरानी विचारधारा की तस्वीरें है यह तो सेठजी। नया जमाना इन्हें पसन्द नहीं करता। बिकती ही नहीं, इसलिए हमने छपवानी ही बन्द कर रखी हैं। सच मानिये इनसे अधिक तो फिल्म अभिनेत्रियों की तस्वीरें बिक जाती है।"

"जमाना बड़ा खराब आ गया है।" लालाजी ने समर्थन किया। आगे बोले "यही शीशे में जड़वाकर बांध दो जरा जल्दी।"

चित्र-संग्रह लेकर लालाजी एक शिल्पशाला में पहुँचे। दूकानदार का अनुमान पहिले यहाँ भी वही रहा जो पहले का था। बोला—"सेठजी तांत्रिक-काल की बहुत-सी मूर्तियों के आधार पर हमने संगमरमर की मूर्तियाँ बनवायी है, आइये पसन्द कीजिये।" एक कमरे में ले जाकर फिर बोला—"देखिये न, यह है उड़ीसा के मन्दिर की नारी-मूर्ति की नकल! कितना सुन्दर गोल सीना है और कितना अच्छा हाथ में शीशा लगता है इसके?"

"हाँ।" लालाजी ने गर्दन हिलायी। दूकानदार दूसरी मूर्ति के पास पहुँच चुका था—"यह देखिये एक अजन्ता की मूर्ति के चित्र का नमूना। क्या था भारत का तांत्रिक-युग—आँखें बन्दकर कारीगर नारी के अंग-अंग को छेनी हथौड़े से बनाते थे।"

लालाजी ने 'हूँ' किया। दूकानदार समझ गया मूर्ति मन को चुभी नहीं। आगे बढ़ा। एक मूर्ति के आगे खड़ा होकर बोला—"यह गुप्तकाल की मूर्ति की नकल है। इसके नग्नकटि भाग पर दृष्टि डालिये और उसमें पड़ी हुई मेखला को देखिये। लगता है किसी वन-कन्या को मेखला नहीं, कामदेव ने कमर से ही बाँध दिया हो।"

उकता कर लालाजी बोले—"क्या कोई बुद्ध भगवान या किसी अन्य देवता की मूर्ति नहीं है आपके यहाँ?"

"क्यों नहीं ।" दूकानदार लालाजी को आगे ले चला । सामने की ओर दिखाकर बोला—"यह शंकरजी त्रिशूल गाड़े कैलाश पर तपस्या कर रहे हैं और यह हैं माता भवानी दुर्गा और ये सामने हैं विष्णु भगवान् !"

"ठीक है, तीनों मूर्तियाँ पैक कराओ ।" लालाजी ने आज्ञा दी ।

कान्ता के मन-मन्दिर को पवित्र रखने की सारी सामग्री लेकर जब लालाजी घर आये उस समय कान्ता रसायनशाला के सामने बैठी बाल काला करने के खिजाब को पालिश समझ कर अपने सैंडिलों पर रगड़ रही थी ।

आज दोपहर से ही उसका मन उचाट हो रहा था । कभी लालाजी पर क्रोध आता, कभी कुमार की याद आती तो कभी जमुना जी के आँखों के कनफ्शन का सीन उसकी निगाहों के आगे घूम जाता । इसी बीच में जब वह एक बार लालाजी के पूर्वजों को मन-ही-मन श्रद्धांजलि दे रही थी, लालाजी की रसायनशाला की उसे याद आयी । सोचा एक दिन लालाजी कह रहे थे कि इस अलमारी में गला ठीक करने की मिठाई और जूते की पालिश रखी हुई है । तब क्यों न उस मिठाई की ट्राई की जाय ? यही सोचकर कान्ता उठी । अलमारी खोली और च्यवनप्राश का डिब्बा लेकर उसका जायका लिया । बोली—"वाकई मिठाई का जायका तो अच्छा है । यानी दवाई की दवाई और मिठाई की मिठाई ।" थोड़ा-सी च्यवनप्राश खाने के बाद उसकी दृष्टि डिब्बे के लेबिल पर गई । कान्ता ने पढ़ा । लिखा था—"शक्तिवर्द्धक च्यवनप्राश, गुप्त कमजोरियों तथा बुढ़ापे को भगाने का एकमात्र अवलेह !"

"अच्छा, यह बात है । मैं भी तो सोचा करती थी कि ऐसा भी क्या गला हो गया जो रोज ही खराब होता है और रात को ही उसमें दवाई लगाई जाती है । यह एक दिन नहीं कहा कि बुढ़ापा दूर करने की फिराक में लगा हुआ हूँ—खूसट कहीं का !" कान्ता ने डिब्बा रख दिया । डिब्बा रखकर पहले तो लौट चली । फिर सोचा जब अलमारी

को खोला ही है तो पालिश भी करलूँ सैंडिलों पर।

कपड़े साफ करने का ब्रुश और अपने काले सैंडिल लेकर कान्ता बैठ गयी और खिजाब की शीशी खोल कर उसे अपने सैंडिलों पर लपेटना शुरू कर दिया।

"क्या हो रहा है महारानी जी?" अपनी अलमारी के आगे कान्ता को पालिश करते देखकर लालाजी ने पूछा।

"कुछ नहीं, सैंडिल भद्दे हो रहे थे। मन में आया मैं ही पालिश करलूँ।"

लालाजी ने पूछा—"फिर यहाँ अन्धेरे में ही क्यों कर रही हो? आँगन में क्या आग लग गई?"

कान्ता बोली—"आग लगी न पानी बरसा। अलमारी खुली थी। जरा देर के लिए क्या बाहर जाती?"

"अलमारी······।" लालाजी गिटपिटाये।

कान्ता ने उसी लहजे में कहा— 'जी हाँ, जरा गला भी खराब था। मुझे याद आ गया गला ठीक करने की मिठाई तो हमारे घर में ही रखी है क्यों बाजार में पैसे फेंके। अतः पहले तो मैंने गला ठीक करने की थोड़ी-सी मिठाई खाई······वाकई है तो जायकेदार।"

"और अब पालिश कर रही हो?" लालाजी कान्ता के चुप होते ही बोल उठे।

कान्ता ने जवाब दिया—"यह तो आप देख ही रहे हैं।"

लालाजी झुँझला गये। बोले—"कुछ तो खाक-बलाय घर में पड़ा रहने दिया करो। खाने-पीने से पहले मुझसे तो पूछ लिया करो। कितनी मिठाई खा ली, जल्दी बताओ?"

"थोड़ी-सी ही तो खाई है। तुम्हें क्यों चिन्ता हुई?"

"इसलिए कि वह मिठाई तुम्हारे खाने की नहीं थी?"

"क्यों?"

"कह तो दिया औरतों को नहीं खानी चाहिये?"

"और पालिश भी क्या आदमी और औरतों की अलग-अलग ही आने लगी है ?"

"यह क्या पालिश है जिसे तुम सैंडिलों पर लीप रही हो ?"

"अजीब बातें हैं लालाजी तुम्हारी। कभी कुछ कहते हो, कभी कुछ। उस दिन कह रहे थे इसमें गला साफ करने की मिठाई और जूते का पालिश है। अब इनमें भी औरत-मर्द का फर्क डाल दिया। पहले ही क्यों ना कह दिया था ?"

"क्या कह देता ?" लालाजी ने रुखाई से पूछा।

कान्ता बोली—"यही कि इनमें न मिठाई है, न खटाई—बुढ़ापा-भगाऊ चटनी है—च्यवनप्राश ?"

लालाजी के मुख से निकल गया—"हाँ।"

कान्ता ने फिर पूछा—"और यह पालिश-सा क्या है ?"

लालाजी धीरे-से बोले—"खिजाब।"

"तभी तुम्हारे बाल विभिन्न रंग बदलते रहते हैं। कल भी मैं यही सोच रही थी कि लालाजी के बाल कल तो बिलकुल काले थे—मेरे से भी ज्यादा काले, रात में ही कैसे सफेद-सफेद से हो गये।"

"कुछ याद-सा करके कान्ता फिर बोली—"अरे हाँ, मैंने तुमसे कहा भी तो था—आपके बाल रात-रात में ही नीचे नीचे से सफेद हो गए। तब आपने कहा था कि रात को बाहर सोने की वजह से इन पर नजला पड़ गया है।" मैंने फिर कहा था—"यह नजला कैसा है जो बालों के ऊपर न पड़ कर नीचे पड़ा है। नजला तो ऊपर पड़ना चाहिये था ?" कान्ता आगे बोली—"बालों पर नजला ऊपर नहीं, नीचे ही पड़ा करता है। इसी तरह एक दिन तुम्हारे बाल मुझे कुत्ते के बालों की तरह से लोहरे रंग के लग रहे थे।"

"जरा मिसाल तो अक्ल से दिया करो।" खिन्न मन से लालाजी ने कहा।

कान्ता बोली—"मेरी अकल पर भी तो नजला पड़ गया है लालाजी।"

"लेकिन, फिर भी तुम्हें मेरे साथ तो ऐसा बर्ताव करना चाहिये जो एक अच्छी पत्नी अपने पति के साथ करती है। समाज ने मुझे तुम्हारा मार्गदर्शक बनाया है कान्ता !"

लालाजी के उपदेशों से कान्ता चिढ़ गई। बोली—'मैं आपके कदमों पर ही चल रही हूँ और कल से जो कमी रह गई है उसे भी दूर करने का प्रयत्न करूँगी। लालाजी खुश हो गये। कान्ता कहती रही—'बात यह है आपने बुढ़ापे में विवाह किया······।"

बीच में ही कान्ता को रोककर लालाजी बोल उठे—"कौन कहता है, मेरे बाल तो महज नजले की वजह से सफेद हो गए हैं।"

कान्ता चीख उठी—"पहले सुन लीजिये, आपने बुढ़ापे में विवाह के बाद जवानी वापस लाने के नुस्खों का प्रयोग शुरू कर दिया। अतः मैं भी यही सोचती हूँ कि मान लो किसी कारणवश मुझे आगे भी आपके कदमों पर चलना पड़े तो अभी से ही क्यों न तैयारी करलूँ सदा जवान बने रहने की।"

"मैं समझा नहीं।" अनमने-से होकर लालाजी बोले।

कान्ता गरमाती रही—"मैं समझाये देती हूं। मान लो मुझे भी आपकी तरह किसी कम उम्र के लड़के से शादी करनी पड़ी तो यही ढोंग अपनाने पड़ेंगे।"

कान्ता का यह उत्तर सुनकर लालाजी माथा पकड़कर बैठ गये। सोचने लगे—"बिना धार्मिक साहित्य लाये और उसका नित्य पाठ कराये इसके विचारों को बदलना असंभव है। यदि इसे पतिव्रता बनाना है तो रामायण आदि का पाठ नित्य कराना ही पड़ेगा !"

कलकत्ते से लौटकर पहला प्रश्न जो राजेन्द्र ने राजरानी से किया, वह था—"कहो, रहीं तो मजे में ?"

मुँह मटकाकर राजरानी बोली—"तुम्हारी बला से ! तुमने तो कलकत्ते जाकर समझ लिया कि मेरे कोई हैं ही नहीं ?"

राजेन्द्र बोला—"नहीं रानी, ऐसी बात नहीं । तुम तो मेरे रोम-रोम में बसी हो—करूँ क्या, नौकरी का काम ही ऐसा है । अपना बस नहीं, पराये बस में जिन्दगी कटती है ।"

राजेन्द्र के इस उत्तर ने राजरानी को निरुत्तर कर दिया । फिर भी साहस बटोर कर बोली—"रहने दो, तुम्हारी तो बस मुँह देखे की हमसे मुहब्बत है । वह भी तो आदमी होते हैं जो समय निकाल कर अपनी पत्नियों को दिन में दस-दस चिट्ठियाँ लिखा करते हैं ।"

"यह क्यों नहीं कहतीं, दिन भर डाकघर में ही बैठे रहा करते हैं ?"

राजेन्द्र के इस प्रश्न से राजरानी तुनक गयी । बोली—"कहता कौन है, तुम एक भी पत्र मत लिखा करो । मैं लगती ही तुम्हारी कौन हूँ ?"

मामले की गम्भीरता का अनुभव करके राजेन्द्र ने कहा—"बस, इतनी-सी दिल्लगी में बुरा मान गईं । हमें तो जो चाहे कह लेती हो ।"

राजरानी ने उसी लहजे में जवाब दिया—"यह बात दिल्लगी की थोड़े ही है—तुम्हारे दिल के उद्गार हैं ?"

"नहीं-नहीं रानी, यह तो केवल मजाक की बात थी । कोरा परिहास था । मैं तो जरा इसलिए निश्चिन्त था कि कुमार तो है ही ।"

"कुमार है तो······।"

राजरानी के आगे बोलने से पहिले ही राजेन्द्र ने कहा—'तुम्हें तो एक नौकर ही चाहिये न ? सो एक सेवक तुम्हारे पास था ही ।"

राजरानी ने मुँह बनाया। बोली—"कुमारकी बात छोड़ो, देवर है जो चाहे सो कहलो। लेकिन तुम्हें अपने को भी ऐसा कहते लज्जा नहीं आती?"

"लज्जा तो पुरुषों से नारियाँ पहले ही झपट चुकी है। लज्जा जाने के बाद पुरुष पर जो कुछ रह जाता है—वही मेरे पास है।"

"तुम्हारे पास शायद वह भी नहीं, कोरी बकवास है। बनते हैं बड़े विद्वान्।"

"लेकिन तुम्हारे लिए विद्वान् कब बनता हूँ और कब तुम हमें विद्वान् मानती हो। कह दो अपने या मेरे सीने पर हाथ रखकर।"

"तो क्या समझती हूँ जी?" राजरानी ने पूछा।

राजेन्द्र बोला—"अजी अब बताने में ही क्या रखा है। जो समझती हो, हमी जानते हैं।"

"उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।" राजरानी के कहते ही राजेन्द्र हँस पड़ा।

"देखा, जो समझती हो कह दिया न अपने मुँह से। निकल गई न सच्ची बात।"

"क्या कह दिया?"

"चोर! तुम्हारा क्या चुराया है जो हमने?"

"बता दिया न तुमने जो चुरा लिया है।"

"क्या बता दिया?"

"जहाँ से सच्ची बात निकला करती है।"

"अच्छा यह बात है। जरा सुनो तो सही।"

राजेन्द्र जैसे ही राजरानी की तरफ बढ़ा, वह बोली—"चलो हटो, अपना काम करो। आता होगा कुमार भूखा-प्यासा। मुझे खाना बनाना है।" कहकर रसोई की ओर खिसक गई।

रात को खाना खाने के बाद जब राजरानी रसोईघर से निश्चिन्त होकर राजेन्द्र के कमरे की ओर गई तो राजेन्द्र किसी जोड़तोड़ में

उलझा हुआ था। राजरानी ने पूछा—"क्या सोच रहे हो ? कहाँ जा उलझे ?"

राजेन्द्र बोला—"एक-एक सवाल करो तो बताऊँ। तुम तो एक साथ दो-दो सवाल कर रही हो।"

"अच्छा बताओ कहाँ उलझ रहे थे ?"

"मैं सोच रहा था मेरे पीछे तो तुम्हारी बड़ी मौज रही होगी। रोज सिनेमा और मिठाई······।"

"फिर वही बात ?" राजरानी तुनक गई—"तुम्हें यह मौज करने को कौन मना करता है। घर रहा करो।"

"और मेरी जगह नौकरी पर तुम चली जाया करोगी, यही न ?" राजेन्द्र ने मुस्कराकर पूछा।

"तुम्हारी यदि यही इच्छा है तो यह भी पूरी हो जायेगी।"

"हाँ रानी ! अब तो यही इच्छा है कि कुछ दिन के लिए हम अपने कामों को बदल ही लें।"

"बदल लो, मैं कब इंकार करती हूँ। जब चौका-चूल्हा सँभालोगे तब पता चलेगा ?"

राजरानी को जवाब देते हुए राजेन्द्र बोला—"बिल्कुल निश्चिंत रहो। ठीक टाइम पर खिला-पिलाकर मैं तुम्हें दफ्तर भेज दिया करूँगा। मैं पकाया करूँगा। बर्तन कुमार से साफ कराया करूँगा।"

"उससे क्यों कराओगे ? मैं क्या ऐसा करती हूँ ? साग-भाजी मंगा लिया करना।"

"अच्छा यही सही। कभी कमर में दर्द और कभी सर में दर्द। एक न एक बहाना तो अपना कहीं गया नहीं। जब दफ्तर से आओ खाना पकाओ।"

"वह बेवकूफ कहीं और बसते होंगे। जिस दिन भी तुमने ऐसी हरकत की, मैंने दूध और डबल रोटी उड़ाई। अपनी भूख से तुम सुलटते रहना रात भर।"

"और कुमार को क्या खिलाओगी ? दो पैसे के चने ।"

"चने खाये उसका ढेंगा । उसे खिलाने वाली बहुतेरी भाभियाँ है ?"

'तब तो भई भगवान के बटवारे को ही रहने दो । क्यों नाहक उसके काम में दखल दें ।" कोई उपाय समझ में न आता देख राजेन्द्र ने कहा।

राजरानी ने कहा—"नहीं परीक्षण करलो । क्या पता लाभ में ही रहो ।"

बात का रुख बदल कर राजेन्द्र ने पूछा—"क्यों जी, यह कुछ पढता-लिखता भी है या दिनभर तुम लोगों की सेवा में ही लगा रहता है । गया कहाँ है ?

"जाता कहाँ ? जहाँ गया था वहाँ से आकर सो भी गया ।"

"कहाँ गया था ?"

"कहीं खाने-कमाने । कई यजमानों के घर हैं उसके पास ।"

"पुरोहताई भी शुरू करदी है क्या ?"

"आज से करता है, पहिले से ही करता है ।"

"हमें तो पता नहीं आज तक भी ।"

"तुम्हें पता ही किस चीज का रहता है ।"

"लेकिन वह यजमानों के घर हैं कौन-कौन से ?"

"गीता का है······कान्ता का है······।"

"अब समझा, यही तो मैं पूछ रहा था कि कुछ पढ़ता-लिखता भी है या तुम लोगों की नौकरी बजाता रहता है ?"

"तुम भी कैसी बातें करते हो ।" राजरानी ने कहा—"कल बेचारे का इम्तिहान खत्म हुआ है । पढ़-पढ़कर आँखें फोड़ लीं । अब कुछ तो आराम करले या रातदिन कोल्हू के बैल की तरह जुता ही रहे ?"

राजेन्द्र बोला—'मेरा मतलब तुम समझी नहीं । अरे यही तो

पढ़ने की आयु होती है। यदि यही निरर्थक खो दी तो पढ़ लिये।"

"बच्चा है, पढ़ लेगा धीरे-धीरे। तुम क्यों उसके पीछे रात-दिन पड़े रहते हो। जब देखो पढ़ता नहीं, पढ़ता नहीं। ऐसी भी क्या पढ़ाई हुई ?"

"उसके भले के लिए ही तो कहता हूँ। चार अक्षर जानेगा—कमा खायेगा।" अपनी बात को स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र आगे बोला—"ज्यादा लाड-प्यार से लड़के बिगड़ जाते हैं।"

"तुम कौनसा लाड-प्यार करते हो, खाली बातें बनाते रहते हो।"

"इस काम के लिए तुम्हें तो छोड़ ही रखा है, काफी हो। लेकिन ज्यादा पैसे चढ़ाकर बिगाड़ मत देना।"

"आप कितने पैसे मुझे और उसे देकर गये थे ?"

"कम थे माँग लेतीं या बैंक से मँगा लेतीं ?"

"हमने कहीं से नहीं मंगाये। उसने जो कमाये खर्च किये।"

"नौकरी करता था मेरे पीछे ?"

"दसों रुपये तो गीता ने ही दे दिये।"

"अनुष्ठान कराया था पुरोहितजी से ?"

"कुछ भी कराया नहीं। कमाये तो चार पैसे।"

"काम भी तो बता दो। क्या काम कराती थी ?"

"बहुत से काम ऐसे हैं नहीं भी बताये जा सकते। जिद्द क्यों करते हो जी !"

"तुम्हें हमारी कसम ! देख लो यदि काम न बताया तो लड़ाई हो जायेगी।"

"हो जाय, मैं तुम से डरती नहीं।"

"छत पर मिट्टी डलवाती होगी ?" राजेन्द्र ने राजरानी को बातों में लपेटना चाहा; लेकिन पहले ही उसके मुख से निकल गया—

मिट्टी क्यों डलवाती विनोद पर जासूसी कराती थी।"

"जासूसी ? जासूसी कैसी ?"

राजरानी ने सारी कथा सुना दी। मन्दिर की बात सुनकर राजेन्द्र ने कहा—"तुम बड़ी चार-सौ-बीस हो ?"

"तुमसे ज्यादा।"

"कई गुना ज्यादा। हम तो तुम्हारे सामने पासिंग भी नहीं।"

"क्यों लगाई थी शर्त विनोद ने ? हमने तो पहले ही कहा था कि हारोगे लल्ला! लेकिन वह क्यों मानने लगे थे।"

"तब भी ऐसी हरकत ठीक नहीं। ऐसे काम तो कभी-कभी अनर्थ कर देते हैं। खैर, कुमार को पैसे मिले; पर तुम्हें शर्त जीतने पर क्या मिला ?"

राजरानी बोली—"मेरी शर्त का लाभ तो कुमार को ही रहा। पैसे के पैसे कमाये और सूद में बहू भी मिल गई समझो।"

"बहू ?" राजेन्द्र को आश्चर्य हुआ।

राजरानी ने कहा—"हाँ, जब यह मामला निबटा तो विनोद ने नीता को ही पुरस्कार रूप में दे देने की घोषणा करदी।"

"बहुत ठीक, हम तैयार हैं। शादी करनी ही है। गीता कौन बुरी है। जैसी वह है वैसी नीता होगी ?"

राजरानी ने चेहरे पर गम्भीरता लाकर कहा—"इस घटना से पहले भी एक दिन मुझसे गीता ने कहा था। तब मैंने यह कहकर टाल दिया था कि उनके कलकत्ता से आने पर ही विचार हो सकता है।"

"इसमें विचार की क्या बात है ? शादी लायक हो भी तो गया।"

राजरानी बोली—"हाँ डीलडौल में तो हो गया। लेकिन तब भी शादी लायक नहीं हुआ। अभी तो अबोध है।"

राजरानी के इस तर्क को राजेन्द्र ने नहीं माना। बोला—"अरे जाओ भी। इस साल बी० ए० फायनल का इम्तिहान दे रहा है और कह रही हो अबोध है। तुम नहीं जानती आज के लड़कों को। ऊपर से बड़े भोले होते हैं और पेट में दाढ़ी भूला करती है।"

राजरानी फिर भी अपनी बात पर अड़ी रही—"हो सकता है, परंतु कुमार उनमें नहीं है।"

"क्यों नहीं है, तुम ग़लती पर हो।"

"मैं आपसे अधिक उसे समझती हूं—विश्वास करो।"

"अरे रहने दो। हम दुनिया देखते हैं। हमें पता है आजकल के लड़कों का क्या हाल है। पढ़ते-लिखते खाक नहीं, दिनभर ऐसी-वैसी बातों में ही समय व्यतीत करते हैं।"

राजरानी को आँखों के कनक्शन की घटना का स्मरण हो आया। बोली—"उसे चार आँखें करना तक तो आता नहीं। वह तो बस अपनी दो ही जानता है।"

"कभी की होंगी तुमने ?", कहकर राजेन्द्र हँसा।

राजरानी ने कान्ता वाली घटना सुनाई। सुनकर राजेन्द्र बोला—"बच्चों से ऐसी दिल्लगी ठीक नहीं होती। कान्ता को समझा देना।"

"पता नहीं कैसे कर बैठी ; वह कोई नादान थोड़े ही है। खैर तुम रिश्ते के लिए तय करलो।"

"फिर भी कुमार की इच्छा सर्वोपरि है। उसका लड़की देखना आवश्यक है ; क्योंकि शादी तो उसे ही करनी है।"

"हाँ यह ठीक है। इस बारे में सोचा जा सकता है।"

"बनारस से माताजी की कोई चिट्ठी आई ?"

राजरानी बोली—"नहीं आई। मुझे स्वयं उनकी चिंता सताती रहती है।"

राजेन्द्र बोला—"मेरी राय मानो तो दस-पाँच दिन उनका इंतजार करके कुमार को बनारस भेज दो। खुद घूम भी आयेगा और उनकी इच्छा होगी तो साथ ही लिवा भी लायेगा।"

"ठीक है।" राजरानी ने स्वीकृति दे दी।

बीस दिन तक जानकी के लौटने की प्रतीक्षा करके इक्कीसवें दिन राजेन्द्र ने कुमार को बनारस जाने की आज्ञा देदी और उसी शाम को कुमार अपनी अटेची तथा भाभी का लाल शाल लेकर बनारस के लिये चल दिया।

इत्तिफाक से जिस डिब्बे में कुमार चढ़ा वह था तो छोटा-सा ही, लेकिन था खाली। केवल एक व्यक्ति बैठा अखबारों के पन्ने पलट रहा था। उसने एक बार गर्दन उठाकर कुमार को देखा और पुनः अखबार में उलझ गया।

कुछ देर तक तो बाहर गर्दन निकाले कुमार जागता रहा। वरिश कुछ देर पहले ही होकर रुकी थी। ठंडी हवा चल रही थी। कुमार को अंगड़ाइयां आनी शुरू हुई। बाद में अँगड़ाइयों ने जम्भाइयों का रूप ले लिया। जम्भाइयों और अँगड़ाइयों ने मिलकर कुमार की आँखों पर कब्जा करके नींद के झटके देने शुरू किये। कई बार उसका सर खिड़की से टकराया। अन्त में जब कुमार ने देख लिया कि अब जागना कठिन है, तब उसने अखबार से उलझे हुये युवक से पूछा—"यदि आप जाग रहे हों तो मैं सो लूँ थोड़ी देर?"

अखबार पर अपनी दृष्टि ज्यों-की-त्यों जमाये ही युवक ने संक्षिप्त उत्तर दे दिया—"खुशी से?"

युवक का उत्तर सुनकर कुमार शाल लपेट कर सो गया। युवक जागता रहा। गाड़ी एक स्टेशन पर आ कर लगी। इस स्टेशन पर विद्यार्थियों की एक टीम इस डिब्बे में लदी और साथ ही चढ़े कुछ यात्री।

प्रायः सभी चढ़ने वाले इधर-उधर की सीटों पर बैठ गये। उस सीट पर कोई न बैठा, जिस पर कुमार शाल ओढ़े पड़ा था। खाली जगह देखकर एक सज्जन की तबियत उधर बैठने के लिए ललचाई भी, लेकिन तभी एक बुद्धिमान् विद्यार्थी ने उसे रोक दिया—'देखते नहीं, कोई लेडी सो रही हैं,' इसके बाद वहाँ बैठने का प्रश्न ही नहीं रह जाता था।

जब गाड़ी इस स्टेशन से छूटी तब विद्यार्थियों की टीम ने अपनी थकान उतारनी आरम्भ की। उनमें से एक ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से कुमार की ओर देखा और कुछ देर की जाँच पड़ताल के बाद अपनी जाँच-रिपोर्ट अपने दूसरे विद्यार्थियों के सामने पेश करनी शुरू की—'बेचारी कोई विधवा है ?"

तत्काल दूसरे विद्यार्थी ने पहले से प्रश्न कर डाला—"तूने कैसे जाना कि विधवा है ?"

पहला बोला—"इसलिए कि दोनों हाथ नंगे हैं, सुहाग सनदें उनमें नहीं हैं।"

पहले का तर्क सुनकर तीसरे ने जवाब दिया—"यह कोई तर्क नहीं कि हाथ नंगे हैं तो विधवा ही हो। मियाँ आजकल सुहाग सनदों की भी वही कीमत रह गयी है जो कालिज की सनदों की। इन दोनों ही सनदों के महत्व की संसार उपेक्षा करता जा रहा है। समझ गये न ? यानी कालिज की सनदों की तरह सुहाग सनदें भी कभी की बेकार हो चुकी हैं।"

पहले ने एक क्षण कुछ सोचा। बाद में बोला—"लेकिन, मांग में सिंदूर भी नहीं है। देख लो न ?" यह कहकर पहले ने दूसरे सुहाग चिन्ह की ओर अपने साथियों का ध्यान खींचा।

दूसरा अब भी अपनी बात पर जमा था। बोला—"अरे, वाह रे भोंदू, तुझे आज तक यह भी पता नहीं कि जैसे सर का दुपट्टा सर से खिसक कर गर्दन में आ अटका है वैसे ही मांग का सिंदूर भी फिसलते-फिसलते होठों पर आकर ठहर गया है ?"

"मेरी राय में कोई लड़की है !" साथियों में से एक ने विवाद समाप्त करने के अभिप्राय से अपनी राय पेश की। लेकिन इसकी राय को दूसरे ने काट दिया। बोला—'मिस्टर, यदि लड़की होती तो हाथ में घटिया या बढ़िया घड़ी अवश्य होती। यही तो लड़कियों की खास

पहचान है। पैर में चाहे चप्पल न हो, परन्तु हाथ में बिन्दी-सी घड़ी अवश्य हो।"

बहुत देर तक लड़कों में यही विवाद चलता रहा कि सोने वाली विधवा है या सधवा है। लेकिन विचारों में एकता नहीं आई। गाड़ी फिर रुकी। इस बार न कोई विद्यार्थियों का दल चढ़ा, न ही दूसरे यात्री चढ़े। चढ़ी केवल एक लड़की, एक हाथ में अटैची और दूसरे में एक कम्बल लिये।

लड़की के चढ़ते ही विद्यार्थियों ने सहानुभूति दिखाई। कुमार की सीट की ओर इशारा करते हुए एक बोला—"बहिनजी, उधर बैठ जाइए। इस पर केवल एक बहन सो रही हैं।" लड़की ने भी समझा था। अतः उक्त विद्यार्थी को धन्यवाद देकर सोये कुमार के पास ही बैठ गई।

बैठकर विद्यार्थी से लड़की ने पूछा—"शायद आपकी बहन हैं ?"

विद्यार्थी ने प्रतिवाद किया—"नहीं।"

लड़की दूसरे विद्यार्थियों की ओर इशारा करके बोली—"तो इनमें से किसी की होंगी ?"

इस बार विद्यार्थी ने कहा—"प्रत्येक महिला किसी न किसी की बहन तो होती ही है।"

लड़की के मुँह से निकला—"ठीक बात, आप ठीक कह रहे हैं।"

कुछ देर बाद लड़की ने देखा कि ठंड के कारण सोने वाली सुकड़ी पड़ी है। दोनों पैर पेट से जा चिपके हैं। यह देखकर लड़की के मन में दया-भावना का संचार हुआ। रात के दो बजे थे, ठंड और तेज हो गई थी। अतः दया के वशीभूत होकर लड़की ने अपना कम्बल खोला और आधा सोने वाली को उढ़ा दिया और उसका थोड़ा-सा शाल अपने पैरों पर डाल लिया। लड़के चुपचाप लड़की की दया-भावना का तमाशा देख रहे थे।

कम्बल और शाल की गर्मी ने कुछ समय बाद लड़की को भी नींद

के झटके देने शुरू किये। एक—दो—तीन। तीसरे ही झटके में लड़की ने अपना सर सोये हुए कुमार के पैरों पर टिका दिया।

नींद की गहराई में पहले तो कुमार को लड़की के सर का भार भारी न लगा। परन्तु गर्माई पाकर जब उसने अपने पैरों को खोलना शुरू किया तब उसे लगा कि पैरों पर किसी ने वजन रख दिया है। इसलिये वह एकदम हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसके उठते ही लड़कों ने ठहाका लगाया। ठहाका भी इतनी जोर से लगाया कि लड़की की नींद भी भाग गई। वह भी हड़बड़ा कर उठ बैठी। उठते ही उसकी दृष्टि आँखों को मलते हुए कुमार पर गई। कुमार आँखें मलता जाता था और कभी लड़कों की ओर देख लेता था तो कभी लड़की की ओर। उसकी समझ में रहस्य ही नहीं आ रहा था। डिब्बे का सीन भी बदल चुका था। अखबार का शौकीन पता नहीं कब का कहाँ उतर चुका था दूसरे यात्री आ चुके थे।

सोई हुई युवती को युवक के रूप में देखकर पहला काम जो लड़की ने किया वह यह था कि अपना सारा कम्बल कुमार के ऊपर से अपनी ओर खींच लिया और उसका साल अपने ऊपर से हटाकर उसकी ओर सरका दिया। लड़की की इस खींच-तान को देखकर लड़कों ने फिर जोर से ठहाका लगाया। इस ठहाके का परिणाम यह निकला कि लड़की बुरी तरह झेंप गई। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं। गुस्से में भर कर बोली—"तुम लोगों को ऐसे कुत्सित नाटक खेलते शर्म नहीं आती। एक लोफर को औरत बनाकर लिटा दिया—जाहिल कहीं के।"

"आपका हम पर यह आक्षेप निराधार है। यह सज्जन हमारे साथी नहीं हैं। हमारे आने से पहले भी यह इसी तरह से सो रहे थे, जैसे सोते आपने देखे हैं। यदि अब भी विश्वास न हो तो इन्हीं से पूछ लीजिए।"

लड़की के जवाब देने से पहले ही दूसरा विद्यार्थी बोला—"सबसे

अधिक हम लोग महिलाओं का सम्मान करते है । इसलिये ही हम इन्हें महिला समझ कर उधर नही बैठे थे।"

बाद में कुछ और छात्र भी सफाई देते रहे । किन्तु लड़की को विश्वास नहीं हुआ । उसे यही विश्वास रहा कि यह भी इन्हीं का साथी है और इन्होंने मिलकर ही यह नाटक रचा है। उसका यह भ्रम तब दूर हुआ, जब अगले स्टेशन पर छात्रों की सारी टोली उतर गई और केवल कुमार बैठा रह गया।

टोली उतर गई। लड़की का क्रोध अब भी ज्यों-का-त्यों था। अतः वह गाड़ी के छूटने पर कुमार की ओर आँखें तरेर कर बोली—"क्यों महाशय! आप औरतों की तरह क्यों सो रहे थे—अब बताओ?"

कुमार ने धीरे से उत्तर दिया—"आप विश्वास कीजिए, मुझे अभी तक यह मालूम नहीं है कि औरतें किस तरह से सोती हैं। मैं तो अब तक यही समझा था कि सोने के मामले में स्त्री-पुरुष एक जैसी ही पद्धति का अनुसरण करते होंगे । यानी जिस तरह मैं सोता हूँ, औरतें भी इसी तरह सोती होंगी।"

'हाँ-हाँ, बिलकुल तुम्हारी तरह ही सोती हैं।" लड़की के चेहरे पर उत्तेजना स्पष्ट थी ।

कुमार शान्त था। अतः शान्ति से ही उसने फिर जवाब दिया—"मैं आपके कथन का विश्वास कर लेता हूं । लेकिन, साथ ही यह विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे बचपन से आदत ही इस तरह सोने की है।"

लड़की झुँझलाकर बोली—"तुम्हें गाड़ी में तो इस तरह नहीं सोना चाहिये था।"

कुमार फिर भी उसी शान्त भाव से बोला—"गाड़ी के किसी डिब्बे में यह नहीं लिखा है कि यात्री को इस तरह से सोना चाहिये।

मेरे ख्याल में इस बारे में यात्री की स्वतंत्रता पर कोई पाबन्दी रेलवे की ओर से नहीं है। यात्री किसी भी तरह से बैठे या किसी भी तरह लेटे—पूरी छूट है। अन्यथा अपने टाईम टेबिल में रेलवे यात्री के लेटने-बैठने के तरीकों के चित्र भी अवश्य छपाती। कुछ रुक कर कुमार फिर बोला—"अलबत्ता आप लोगों पर इस तरह की कोई पाबन्दी हो तो मुझे ज्ञात नहीं। क्योंकि अभी तक किसी जनाने डिब्बे को मैंने अन्दर से नहीं देखा है।"

लड़की फिर भी अपनी बात पर अड़ी रही—"तुम्हें इस तरह सोते देखकर ही तो मुझे धोखा हुआ। मैंने तुम्हें औरत समझ लिया।"

कुमार बोला—"आपके दृष्टिकोण का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर तो नहीं आता। मेरी समझ में नहीं आता कि आपने मुझे औरत समझ कैसे लिया?"

"तुम्हारे लम्बे बाल और गोरी कलाइयों को देखकर।" लड़की के इस प्रश्न पर कुमार हँस पड़ा—"यह एक ही रही। यदि किसी के बाल कुछ लम्बे हों और कलाइयाँ गोरी हों तो क्या कोई आदमी औरत समझ लिया जाता है। उसके किसी अन्य अंग से पहचान नहीं हो सकती?"

"तुम्हारे दूसरे अंग खुले हुए थे क्या तुमने तो वह सिकोड़ रखे थे।"

लड़की के जवाब पर कुमार ने कहा—"मैंने कहाँ सिकोड़ रखे थे, ठंड के कारण आप ही सुकड़ गये होंगे।"

"उन्हें सुकड़े देखकर ही तो मैंने गलती की। दया-भावना के वशीभूत होकर मैंने तुम्हें अपना कम्बल भी उढ़ा दिया।"

कुमार ने जवाब दिया—"लेकिन तुमने भी तो बदले में मेरा शाल ओढ़ रखा था, बदला उतर गया। तुम्हारा क्या अहसान

रहा अब ? दूसरे यदि आपने मुझे ठंड में अकड़ता देखकर कम्बल उढ़ा भी दिया था तो पाप क्या किया था। क्या एक स्त्री, किसी स्त्री के प्रति ही दया दिखा सकती है और पुरुष, पुरुष के प्रति ही सहानुभूति रख सकता है ?"

लड़की सुनती रही। कुमार बोलता रहा—"यदि तुम्हारा दृष्टि-कोण यहीं तक सीमित है तो केवल यही कहा जा सकता है कि तुम्हारी दया-माया का दायरा अत्यन्त संकीर्ण है।

"कैसे संकीर्ण है।" लड़की ने पूछा।

कुमार ने बताया—"तुमने मुझे कम्बल उढ़ाया—पुण्य का कार्य किया फिर मुझ पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारी दया का प्रतिकार मैंने असभ्यता से तो चुकाया नहीं ?"

लड़की ने कहा—"मैं तुम्हारे पैरों पर पड़ी रही, यह क्या कुछ कम बुरी बात है ?"

कुमार ने कहा—'इसमें बुरी बात क्या हुई। दूसरे यदि बुरी बात भी हुई तो तुम्हारी और मेरी दोनों की गलतफहमी से हुई। जानबूझ कर तो मैंने तुम्हें शर्मिन्दा करने का साहस नहीं किया ?"

"अपनी सफाई आप अपने पास ही रखिये—मुझसे बोलने की आवश्यकता नहीं।" कहकर लड़की ने अपनी गर्दन खिड़की के बाहर निकाल ली।"

'तुम्हारी इच्छा!" कहकर कुमार भी चुप हो गया।

दूसरे स्टेशन पर लड़की उतर गई। कुमार बनारस के लिये बैठा रह गया।

नीता मायके से अपनी भाभी को लिवाने रत्नपुर जा रही थी। नीता ने उसे लिख दिया कि इम्तिहान समाप्त होने पर अपनी

भाभी को भी लिवाती लाना। अतः घर पहुँच कर नीता ने गाड़ी की सारी घटना अपनी भाभी को सुनानी शुरू की। सुमित्रा ने नीता को बीच में ही टोक कर पूछा—"तुम पढ़ी-लिखी लड़की होकर भी बेवकूफ बन गईं।"

भोली-सी बनकर नीता बोली—"भाभी, जिस ढंग से वह शाल लपेटे सीट पर पड़ा था—उसे देखकर तो तुम भी धोखा खा जातीं। सारे हाथ-पैर सिकोड़े इस तरह से गठरी-सा बना पड़ा था, मानों ठंड में कोई लड़की सिकुड़ी पड़ी हो।" इतना कहकर उसी ढंग से पलंग पर लेटकर नीता बोली—"देखना भाभी, बिलकुल इसी तरह से पड़ा था—जैसे अब मैं पड़ी हूँ।"

नीता को बेढंगे ढंग से पड़ा देखकर सुमित्रा पहले तो हँस पड़ी। बाद में बोली—"लेकिन मर्द और औरत का पता दूर से ही चल जाता है।"

नीता प्रतिवाद के स्वर में बोली—"नहीं भाभी, नहीं चला। और चलता भी तो कैसे चलता। कमबख्त के बाल भी तो लम्बे-लम्बे थे। बस, वही शाल के बाहर चमक रहे थे।"

"तब तूने अपना कम्बल क्यों उढ़ाया उसे?" भाभी ने मुस्करा कर पूछा।

नीता ने उत्तर दिया—"ठंड से मरता देखकर दया आ गई भाभी।"

सुमित्रा फिर बोली—भला कोई इस तरह भी दया करता है किसी पर? अरे, दया-माया के लिये भी क्षेत्र होता है। यह तो नहीं सभी जगह दया दिखाती फिरो।" सुमित्रा अपने कथन को जारी रखती हुये आगे बोली—"नीता, मानलो अगर वह कोई गुण्डा होता और तेरा कम्बल ही न देता तो? कह देता यह मेरा है—तब तुम क्या करतीं?"

कुछ सोचकर नीता बोली—"हाँ, यह तो वह कर सकता था भाभी!"

"तेरी बातें सुनकर वह क्या बोला ?" सुमित्रा ने फिर पूछा ।

नीता ने कहा—"बोलता क्या, बिल्कुल भोला बन गया, जैसे कोई बड़ा भला आदमी हो ।"

"कुछ कहा भी आखिर उसने ?" सुमित्रा की उत्सुकता जाग रही थी ।

नीता बोली—"बस, इतना ही कहा भाभी, कि मुझे तो बचपन से इसी तरह सोने की आदत है ।"

"तब तो नीता वह कोई भला आदमी ही होगा ।" नीता को कुरेदते हुए सुमित्रा ने आगे पूछा—"तुम रात भर उसके पैरों पर पड़ी सोती रहीं और उसे इस बात का पता ही न चला कि मेरे पैरों पर कौन पड़ा है—यह तो कुछ समझ में नहीं आता ?"

"हाँ भाभी मुझे भी तो यही शक है कि वह निश्चय ही कोई बना हुआ धूर्त था । नहीं तो इतना वजन किसी के पैरों पर पड़ा रहे और उसे पता भी न चले यही तो मेरी समझ में नहीं आ रहा । इसीलिए मुझे उस पर गुस्सा आया ।"

सुमित्रा को नीता की बातों में आनन्द आ रहा था । अतः बात को जारी रखवाने के अभिप्राय से सुमित्रा बोली—"यदि तुम्हें यह पता होता कि सोने वाला औरत नहीं, आदमी है तब भला तुम उसके पैरों पर सर रखकर सोती ही क्यों ?"

नीता ने उत्तर दिया—"सब भाभी, सोना तो रहा अलग, उसके पैर भी अगर मेरी ओर आते तो उन्हें भी तोड़ देती ।"

"फिर भी उसका कुछ दोष नहीं था नीता !" इस बार सुमित्रा ने अपना फैसला सुनाया ।

गम्भीर बनकर नीता बोली—"तभी तो माफ भी कर आयी भाभी कि गलती उसकी भी नहीं थी । नहीं तो क्या पता मैं क्या कर बैठती ।"

"उसका सर अपने पैरों पर टिकवा कर छोड़ती। हमें तो पता है तुम्हारी आदत का।"

सुमित्रा के इस कथन का संक्षिप्त-सा उत्तर नीला ने दिया—"क्या पता भाभी, उस वक्त क्रोध में क्या हो जाता ?"

कुमार गाड़ी से उतर कर जब जानकी के निवासस्थल पर पहुँचा तब उसे ज्ञात हुआ कि जानकी आज शाम को ही घर के लिये चली गयी है। अतः कुमार ने निश्चय किया कि दिन भर बनारस की सैर की जाय और रात की गाड़ी से लौटा जाय।

दिन भर बनारस की सैर के बाद रात को ग्यारह बजे की गाड़ी से कुमार फिर लौट चला। गाड़ी में थोड़ी सी देर जगने के बाद सीट पर पैर लम्बे करके लेट गया। एक बजे रात तक उसकी नींद में बाधा देने कोई नहीं आया। एक बजकर कुछ मिनिट पर जब गाड़ी एक स्टेशन पर खड़ी थी, तब उसी डिब्बे में दो महिलाएँ चढ़ीं। चढ़ने वालियों में पहिले युवती चढ़ी और हाथ बढ़ाकर अपनी पोटली ऊपर की सीट पर रखदी। उसके पीछे ही एक लड़की ने भी वैसे ही अपनी अटैची ऊपर रखकर सीटपर बैठना चाहा, लेकिन चौंकी। उसे चौंकते देखकर युवती ने पूछा—"क्यों क्या किसी जानवर ने काट लिया नीला ?"

"नहीं भाभी, यह बात नहीं है।" बैठते हुए नीला ने कहा। बाद में उसने धीरे-से सुमित्रा से कहा—"भाभी, कल भी बिलकुल ऐसा ही आदमी था और वह भी शाल ओढ़े ऐसे ही पड़ा था जैसे यह पड़ा है।"

सुमित्रा मुस्करायी—"मुँह देख लो। कहीं वह ही न हो आज भी।"

नीता मुँह पिचका कर बोली—"मुँह देखता है मेरा ठेंगा।"

"तब पैर देखलो—तुम तो उनसे भी परिचित हो चुकी हो।"

इस पर नीता ने कहा—"दिल्लगी की बात नहीं भाभी, बिलकुल ऐसा ही था। बल्कि यह शाल देखकर तो मुझे पक्का शक इसी तरह का हो रहा है।"

"तब तो जगाओ न, हम भी तो देख लें जरा कैसी सूरत का है?"

"अजीब सूरत का है। देखलो जगाकर यकीन न आये तो।"

कुछ देर तक दोनों में इसी तरह खुसर-फुसर चलती रही। कोई स्टेशन आया। डिब्बे में जो दो-तीन सवारियाँ बैठी थीं, उतर गईं। सुमित्रा घबराई—"नीता डिब्बा खाली हो गया। यदि यह कोई गुण्डा हुआ तो?"

नीता साहस दिखाते हुए बोली—"डरती क्यों हो भाभी! यह अकेला है, हम दो हैं।"

"कभी-कभी अकेला भी भारी हो जाता है।" सुमित्रा ने भय व्यक्त किया।

नीता ने समझाया—"यह इतना भारी नहीं है भाभी।"

सुमित्रा ने कहा—"तुम जानो।"

गाड़ी को झटका लगा, कुमार की नींद उचट गई। शाल को समेट कर कुमार बैठ गया। बैठते ही उसकी दृष्टि पहले पास बैठी नीता पर पड़ी—"आप?" कुमार की जबान से यकायक निकला।

"जी हाँ, मैं ही हूँ। आप फिर उसी डिब्बे में आ पड़े जिसमें हम थे।"

कुमार धीरे से बोला—"यह तो भाग्य की बात है। दूसरे इसके बाहर यह भी नहीं लिखा कि डिब्बा जनाना है।"

सुमित्रा समझ गई कि यह रात वाला ही है। अतः बोली—

"आपका मतलब शायद यह है कि हमें जनाने डिब्बे में बैठना चाहिये था। हमारा बैठना बुरा लग रहा हो तो हमें कोई ऐतराज नहीं, हमारा सामान उठाकर जनाने डिब्बे में अगले स्टेशन पर रख आना।"

कुमार बोला—"स्टेशन पर कुली बहुत मिलते हैं।"

"तब तो हम जाने से रहे। भला हम क्यों अपना खर्च करें। जिसे परेशानी हो, वह करे ?"

"मुझे कोई परेशानी नहीं, आप शौक से बैठें।"

कुमार के इतना कहते ही नीता बोली—"हमें तो है।"

"तब कुली का काम आप खुद कीजिये न। लेजाइये अपना सामान। मुझ से आप कल से नाहक ही लड़ रही हैं।"

"कुछ कहा होगा तुमने, तभी तो यह भी लड़ी होंगी ?" सुमित्रा ने फिर बातों में आनन्द लेना प्रारंभ किया।

कुमार बोला—"एक शब्द भी नहीं कहा। महज मैं इसी तरह सो रहा था। यह भी आकर सो गईं।"

"और क्या कहते, तुमने उठकर क्यों नहीं कहा, कि मैं पुरुष सो रहा हूं।" सुमित्रा अपनी हँसी दबाकर बोली।

कुमार ने कहा—"सोते-सोते आपको ही दिखाई देता होगा, मुझे तो नहीं। यह तो इन्हें देखना चाहिए था।"

इस बार सुमित्रा के जवाब देने से पहले ही नीता बोल उठी—"सवाल तो यह है कि तुम औरतों की तरह सो ही क्यों रहे थे।"

कुमार ने कहा—"कह दिया न, मैं तो घर पर भी ऐसे ही सोता हूँ।"

"तुम्हें शायद यह कोई बताने वाला ही नहीं मिला। कि कैसे सोया जाता है ?"

इस पर कुमार बोला—"बात आपकी ठीक है। अभी तक तो कोई नहीं मिला था अब यदि कोई मिला तो मैं उसका स्वागत करूँगा।"

बात का प्रकरण समाप्त करते हुए सुमित्रा ने कहा—"भई, इनसे ज्यादा कहना-सुनना ही बेकार है। देखती नहीं यह तो शाल भी जनाना ही ओढ़े हुए हैं, माँग लाए होंगे अपनी किसी का।"

शाल के सवाल पर कुमार झेंपा। बोला—"तुम्हारा तो नहीं है। किसी का क्यों लाता, भाभीजी का है।"

"हमारा होता तो रात के कम्बल की तरह से खींच न लेते?" नीता ने मुँह बनाकर कहा।

कुमार बोला—"वह तो था ही तुम्हारा, इसे भी चाहो ले जाओ।"

इस बार सुमित्रा ने जवाब दिया—"अरे रहने दो, शाल घर वापस न ले गये तो भाभी रोटी भी न देगी।"

"यह तुम्हारे यहाँ होता होगा।"

"हमारे यहाँ क्या, सभी जगह होता है।"

गाड़ी को फिर झटका लगा। नीता बोली—"चलो भाभी जल्दी हमारा स्टेशन आ गया। गाड़ी थोड़ी देर ही ठहरती है यहाँ।"

सुमित्रा ने गठरी उतारी। नीता ने अपना कम्बल समेट कर जल्दी से अटैची उतारी और दोनों प्लेटफार्म पर आ कर चल दीं। खिड़की से सर निकाल कर एक बार कुमार ने दोनों की ओर देखा गाड़ी सीटी बजा रही थी, नीता ने मुड़कर देखा कुमार उनकी ओर देख रहा है कुछ कदम चलकर नीता ने फिर गर्दन मोड़ कर देखा। गाड़ी रेंग रही थी और कुमार अब भी उनकी ओर देख रहा था।

गुसलखाने में नीता स्नान द्वारा यात्रा की थकान उतार रही थी। नहाने के बाद वहीं से बोली—"भाभी, जरा मेरी अटैची में से एक

साड़ी दे जाना।"

रसोईघर से निकल कर सुमित्रा कमरे में गई। नीता की अटैच खोली। अटेची खोलते ही अवाक् रह गई। अटेची में ऊपर दो-तीन किताबें थीं। किताबों के नीचे एक तौलिया था, बनियान थी, कमी थीं और कुछ पतलूनें थीं।

सुमित्रा को देर करते देखकर नीता फिर बोली—"भाभी, लाए नहीं हो?" सुमित्रा ने जवाब दिया—"पहले यह तो बतलाओ लाउ क्या? कमीज, पतलून पहनोगी या पाजामा तलाश करूं कोई?"

"तुम तो भाभी हमेशा दिल्लगी ही करती रहती हो।" दिल्लगी फिर करती रहना—पहले साड़ी तो दे जाओ।"

सुमित्रा ने हँसते हुए कहा—"यही तो पूछ रही हूं क्या लाऊं साड़ी तो अटेची में एक भी नहीं है। बस कमीज और पतलूनें हैं।"

"कुछ भी ले आओ।" नीता सिटपिटा गई थी। अतः सुमित्रा की धोती बाँधकर कमरे में आई। अटेची को देखकर बोली—"भाभी या तो बदल गई।"

सुमित्रा ने मुस्करा कर पूछा—"किससे?"

नीता सहमती-सी बोली—"उसी से भाभी।"

"शाबाश! यह तो एक ही रही। जरा यह तो देख लो अटेची ही बदल लाई हो या और कुछ भी बदल लाई हो?"

नीता चिढ़ गई—"तुम्हें तो भाभी हर समय मजाक सूझता है मैं जान कर बदल लाई?"

नीता के चिढ़ने का सुमित्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बोली—"क्या पता जान कर ही बदल लाई हो"

"सुमित्रा के जवाब से नीता और चिढ़ गई—अच्छा जानकर ही बदल लाई हूँ। करलो क्या करती हो मेरा?"

"हम क्या करते—हमें तो खुशी ही है। तुमने आप ही अदला बदलाई करली।"

"काहे की करली ?" नीना ने पूछा।

सुमित्रा ने कहा—"लड़ती क्यों हो—अटेची की, और तुम जानो!"

नीता ने मुँह बनाया—"देखो भाभी, मैंने कई बार कह दिया, मुझसे ऐसी मजाक मत किया करो। मुझे बुरा लगता है।"

उसी तरह से मुँह बनाकर सुमित्रा ने भी जवाब दे दिया—"हाँ जी, हमारी मजाक तो बुरी लगेगी ही। खुद चाहे किसी के पैरों पर पड़ी सोती रहो।"

नीता ने पूछा—"मैं क्या उसके पैरों पर जानकर सोई थी ?"

हँसकर सुमित्रा ने कहा—"कौन जाने ?"

"मतलब की तो बात करती नहीं हो। हमेशा ऐसी ही बातें करती रहती हो। यह तो सोचा नहीं कि अपनी अटेची कैसे वापस आ सकती है।"

सुमित्रा ने नीता का उपदेश सुनकर कहा—"वापस लाने को थोड़े ही बदली गई है। हमें काहे को बनाती हो ?"

"इसमें बनाने की क्या बात है भाभी ?"

सुमित्रा ने कहा—"यानी हम कुछ समझते ही नहीं। मैं तो कल ही समझ गई थी कि दाल में कुछ काला है। जब तुम बता रही थीं—मैंने यह कहा, वह कहा। वह सब तो मुझे बताने की बातें थीं। तुमने जो कुछ कहा होगा, वह तो हम जानते हैं ?"

"क्या कहा होगा मैंने, बताओ न ?" तुनक कर नीता ने पूछा।

सुमित्रा ने गम्भीर होकर कहा—"कहा होगा, मेरे प्रियतम ! मैं तो तुम्हारी दासी हूँ।"

"धत् भाभी, तुम तो अब हद से भी बढ़ गईं।"

नीता के चुप होने से पहले ही सुमित्रा फिर बोली—"कसम खा कर कह दो मैं झूठ कह रही हूँ। नहीं तो बताओ फिर उसी डिब्बे में जाकर क्यों बैठीं जिसमें वह सो रहा था ?"

"मुझे क्या पता था कि उसी डिब्बे में वह पड़ा है ?"

"पहले ही बता दिया होगा कि कल उस डिब्बे में बैठना ?"

"आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ?" खिन्न होकर नीता ने पूछा।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हमारा मतलब तो साफ है। साफ हाँ क्या, हमें तो नीताजी नन्दोई पसन्द है। लिख लो कागज पर।"

"करलो न तुम उसी से शादी।" रुखाई से नीता ने कहा।

सुमित्रा ने दो टूक जवाब दिया—"मैं सोचती हूँ, तुम्हारे भाई का फिर क्या बनेगा ?"

नीता बोली—"चिन्ता न करो और कोई सुमित्रा आ जायेगी।"

"तब तैयार हूँ। लिख दो अपने उनको चिट्ठी।"

"उन होगा तुम्हारा, मेरा क्यों होता।"

"कम्बल से ढकती तुम फिरो और 'उन' मेरा—यह एक ही रही।"

"अब तुम ढक आना किसी दिन जाकर ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं। अब तो हमारा कानूनन हक है।"

"अच्छा-अच्छा, मैं हारी तुम जीतीं।" उकताकर नीता ने कह दिया।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हमसे काहे को हारतीं। लेकिन फिर झूठ-मूठ काहे को अड़े जा रही हो।"

"झूठ-मूठ कैसा ?" नीता ने पूछा।

सुमित्रा बोली—"मुड़-मुड़ कर क्या देख रही थीं पीछे को ?"

"वह तो मैं यह देख रही थी कि कहीं गाड़ी में हमारा कुछ छूट न गया हो।"

"यों क्यों नहीं कहतीं, गाड़ी में कुछ छोड़ आयी थीं—उसे देख रही थीं।"

सुमित्रा के इस सवाल पर नीता कुछ झेंपी। सुमित्रा ने लक्ष्य किया। फिर बोली—"बनो मत लल्ली, औरत की बात, औरत ही जानती है।"

"क्या जानती हो भाभी ?"

"यही कि तुम लड़ तो रही थीं उससे, लेकिन दिल लड़ने को मना कर रहा था तुम्हारा।"

"यह तुमने देखा होगा ?" नीता झुँझला पड़ी।

"हाँ, हमने देखा था, तभी तो कह रहे हैं। लेकिन उसका पता नहीं, उस बेचारे ने भी देखा या नहीं ?"

कुछ सोचकर नीता फिर बोली—"मजाक छोड़ो भाभी, यह तो पता लगाओ कि उसका पता-वता क्या है। अटेची में कई साड़ियाँ वगैरा तो हैं हीं, मेरी एक अंगूठी भी चली गई है।"

नीता के इतना कहते ही सुमित्रा उछल पड़ी—"अच्छा, यह बात है। मँगनी भी अपने आप ही कर आयीं ?"

"जाओ अपना काम करो, कुछ भी कर आई। वहाँ चूल्हे पर दाल जल रही है, यहाँ······?"

नीता के वाक्य समाप्त करने से पहले ही सुमित्रा बोल पड़ी—"यहाँ दिल जल रहा। क्यों है न यही बात ?"

"दिल जले तुम्हारा, हमारा क्यों जले ?" नीता ने प्रत्युत्तर दिया।

सुमित्रा हँस पड़ी—"हमारी तो ननद जी दाल ही जल रही है और जलने-बुझने को हमारे पास कुछ रहा ही नहीं।" कहती हुई सुमित्रा रसोईघर को चलदी।

सुमित्रा को रोकते हुए नीता ने कहा—"जरा पहले इसे खोलकर देख तो लो—शायद कुछ पता चल जाय।"

"अच्छा जी सेवक हाजिर है।" कहकर सुमित्रा ने अटेची खोली। तौलिया शीशा व कंघा ऊपर निकले। सुमित्रा बोली—"लौंडा तो शौकीन तबियत का मालूम होता है नीताजी !"

"कैसा भी हो, हमें क्या। तुम और चीजों को देखो।"

"अभी भी बने ही जा रही हो।" सुमित्रा फिर हँस पड़ी।

मुँह लगना व्यर्थ देखकर नीता ने स्वयं ही अटेची टटोलनी शुरू

की। नीचे तीन कमीजे और तीन पतलूनें थी। उनके बाद थी कुछ पुस्तकें और सात रुपये। नीता ने जैसे ही एक पुस्तक के कुछ पन्ने पलटे, तैसे ही कुमार का एक छोटा-सा फोटो खिसक कर गिर गया। सुमित्रा ने झट फोटो लपक लिया—"वाह, फोटो भी भेज दिया। वाकई यह तो वही है रेल वाला ?"

"रख दो इसी में किसी की चीज क्यों छूती हो भाभी ! आखिर यह एक न एक दिन वापस अवश्य होगी।"

चित्र किताब में रखते हुए सुमित्रा बोली—"हाँ जी, इसे छूने का अधिकार तो तुम्हारा ही रजिस्टर्ड हो चुका है। लो रखे देती हूँ।" सुमित्रा ने चित्र रख दिया और उसके जाते ही नीता ने किताब से उड़ाकर तीर कर दिया।

बनारस से लौटकर तीसरे दिन कुमार घर पहुँचा। शाम को राजरानी ने कहा—"लल्ला, जरा लपककर बाजार से सब्जी खरीद लाओ।"

कुमार ने जवाब दिया—"थैला और पैसा दे जाओ जल्दी, फिर मुझे भी एक काम को जाना है।"

राजरानी बोली—"सौ रुपये का नोट है लल्ला ! तुड़ा लेना लि जाओ।"

कुमार बोला—"मेरी अटेची में से ले लो, कुछ खुले रुपये रखे हैं फिर तुड़ा लाऊँगा।"

राजरानी बैठक में गईं, कुमार की अटेची खोली। खोलते ही पूछा "यह साड़ियाँ क्यों ले आये लल्ला ?"

"साड़ियाँ लाने लायक तुमने पैसे ही कहाँ दिये थे भाभी ?"

"तब यह लाये कहाँ से ?"

"मैं कहाँ लाया हूँ, मेरी अटेची देख रही हो या अपना ट्रंक ?"

राजरानी बोली—"मैं तुम्हारी ही अटेची देख रही हूँ। आइये न आप भी अपनी अटेची का जरा निरीक्षण कर लीजिये।"

कुमार सिटपिटाता हुआ आया। राजरानी अटेची खोले हुए खड़ी थी—हाथ में थी एक साड़ी। साड़ी कुमार को दिखाकर बोली—"यह तो पहनी हुई सी लगती है लल्ला, किसकी है ?"

कुमार का कलेजा धुक्-धुक् करने लगा—"मुझे क्या पता भाभी किसकी है ?"

"यह कैसे हो सकता है तुम्हें पता ही न हो। बताते क्यों नहीं किसकी उड़ा लाये ?"

राजरानी के तीखे स्वर से कुमार को निश्चय हो गया कि बिना सारी बात बताये भाभी का सन्देह गलत रूप ले सकता है। अतः बोला—"मेरे पास एक लड़की बैठी थी भाभी, जल्दी में वही बदल ले गई।" बाद में कुमार ने रेल की सारी घटना ज्यों की त्यों सुना डाली।

रेल की कहानी को ध्यान से सुनकर राजरानी ने पूछा—"जल्दी में अटेची ही बदल ले गई या और भी कुछ ?"

"और मेरे पास कुछ था ही नहीं।"

भोली मुद्रा में राजरानी ने पूछा—"वही न जो आजकल के लड़के अदलते-बदलते फिरा करते हैं।"

"और कुछ नहीं बदला भाभी ! पता लगाये लेते हैं उसके घर का। किसी दिन जाकर फिर बदल लाऊँगा।"

राजरानी ने प्रतिवाद किया—"जो हुआ ठीक हुआ। अब मत जाना। लेकिन यह तो बताओ वह तुम्हारे पैरों पर सर रखे रात भर सोती रही और तुम्हें पता ही नहीं चला ?"

कुमार ने विश्वास सूचक मुद्रा में जवाब दिया—"वास्तव में भाभी मुझे कुछ पता ही नहीं चला। नींद चढ़ी हुई थी। अलबत्ता एकबार ऐसा तो कुछ महसूस अवश्य हुआ था जैसे किसी ने मेरे पैरों पर कोई पिल्ला रख दिया हो।"

"अच्छा मान लिया सर को तो तुमने पहली बार पिल्ला समझ लिया; परन्तु दूसरी बार उसे क्यों अपने डिब्बे में बुला लिया ?"

"वह तो अकस्मात ही आ गई। मैंने कहाँ बुलाया था।"

कुमार के उत्तर से राजरानी मुस्करायी—"क्या पता तुमने ही कह दिया हो रात को मैं इस नम्बर के डिब्बे में बैठूँगा ?"

कुमार झुँझला गया—"भला मैं क्यों बुलाता। वह तो आप ही चली आई।" कुमार ने अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिये फिर कहा—"भला सोचो तो सही भाभी, वह पहली बार इतनी बुरी तरह मुझ से लड़कर गई थी—मैं उसे कैसे बुला सकता था।"

राजरानी मुस्करायी—"वह लड़ाई तो दिखाऊ होगी। पहले दोनों में हुआ ही लड़ाई करती है।" कुछ रुककर राजरानी ने पूछा—"क्यों लल्ला, भला कितनी उम्र की होगी—रंग कैसा था ?"

कुमार बोला—"यही कोई अठारह के आसपास होगी, रंग, कुछ-कुछ गीता भाभी के रंग से मिलता-जुलता था।"

"तब तो ठीक है—अपने आप ही अपनी बहू तलाश करली—हमारे सर से बोझ उतरा।"

राजरानी के इस उत्तर से कुमार खीजा—"काहे को समझदार होकर किसी लड़की को दोष लगाती हो ?"

कुमार ने कुछ इस ढंग से उक्त वाक्य कहा कि राजरानी हँस पड़ी—"अरे हर लड़की को किसी-न किसी की बहू तो बनना ही पड़ता है। उसे भी बनना पड़ेगा। अगर तुम्हारी ही बन जाये तो क्या हर्ज है ?" हँसते-हँसते राजरानी ने आगे कहा—"खोलो अटेची, लगाओ

पता कहाँ की है। लिखती हूँ अभी चिट्ठी कि यह लड़की हमारी हो चुकी।"

"तुम तो भाभी बेकार की बातें करती हो। किस की लड़की, कहाँ की रहने वाली—चली हो उसे बहू बनाने ?"

राजरानी बोली—"तुम हाँ करलो कोशिश करना मेरा काम ?"

कुमार ने समझदारी की बात कही—"भाभी पहले इस अटैची की तलाशी ले ली जाय, पता लगाकर वापस करने की कोशिश की जाय। क्योंकि एक तो उसमें कई जरूरी किताबें थीं और दूसरे भाई साहब के कान में भनक पड़ गई तो मेरी खैर नहीं।"

राजरानी ने मुँह बनाकर कहा—"वह तो मैं आज ही कह दूँगी कि यह हजरत लड़कियों से अटैचियाँ बदलते फिरते हैं।"

कुमार घबराकर बोला—"न-न भाभी, ऐसा गजब मत कर बैठना, तुम्हें मेरी कसम ?"

राजरानी ने कुमार की घबराहट देखकर और मुँह बनाया—"मेरा मुँह बन्द करदो—नहीं कहूंगी।"

कुमार बोला—"मुँह बन्द करने के लिये तो मेरे पास लड्डुओं के लिए चवन्नी भी नहीं। अलबत्ता इस अटैची में से जो चाहो वह रिश्वत में ले लो।"

"यह क्या तुम्हारी है, कल को वापस करनी पड़ी तो ?"

"कह देंगे खो गई ?"

"अच्छा पहिले देखो तो सही इसमें और है क्या ?" कहकर राजरानी ने अटैची की तलाशी लेनी शुरू की।

चार साड़ियाँ और दो धोतियों के बाद उसमें कुछ ब्लाउज और जम्पर निकले। उनके नीचे रबड़ की चूड़ियाँ थीं। चूड़ियाँ हाथ में उठाकर राजरानी हँस पड़ी—"पूरा रंग का सामान है यह तो। हमें अब रंग भेजने के लिए सामान मँगाने की कतई जरूरत ही नहीं रही। बहू अपने आप ही अपना रंग दे गई है।"

गीता ने साड़ियों को उलट-पलट कर पूछा—"यह कहाँ से उड़ा लाये। यह तो सब चीजें बरती-सी मालूम होती हैं ?"

कुमार की मुट्ठी अब भी बन्द थी। राजरानी मुस्कराकर बोली—"हमारे देवर को सस्ती और बरती हुई चीजें ही पसन्द आती हैं।"

गीता ने पूछा—"कितने-कितने की लाये हैं ?"

राजरानी ने उत्तर दिया—'कीमत देकर लाते तो नई न लाते। यह तो यों ही आ गयी हैं।"

"तब क्या उड़ा लाये किसी की ?"

"बड़े-बड़े राज मालूम होते हैं इसमें गीता ! कौन जाने उड़ा लाये या किसी ने खुद ही देदीं। कह दिया होगा—लो रंग का सामान भी मैं ही दिये देती हूँ।" अपनी बात आगे बढ़ाते हुए राजरानी ने फिर कहा—"तुम्हीं देख लो न, हैं न नारी रंग की ही चीजें ?"

गीता ने समर्थन किया—"हाँ लगता तो कुछ ऐसा ही है।" साड़ियों को एक बार उलट-पलट कर गीता ने पूछा—"आईं कहाँ से, क्यों लल्ला क्या माजरा है ?"

कुमार ने मुट्ठी बाँधे-बाँधे ही गीता को गाड़ी की कहानी सुनाकर कहा—"बस उसी लड़की से बदली गई है भाभी मेरी अटेची।"

"तब तो बात ठीक है जीजी !" गीता ने राजरानी की ओर मुख किया—"दाल में कुछ काला है। वरना कहाँ लड़ाई और कहाँ अटेचियों की बदलाई। यह कर्म तो जानबूझ कर किया है दोनों ने तबादले का ?"

गीता के इस बयान से कुमार सिटपिटाया—"तुम भाभियों को आज हो क्या गया है। अरे जरा अक्ल से काम लो। इतनी लड़ाई पर भी क्या मैं उसकी कोई चीज उड़ा लाता ?"

गीता ने बड़प्पन दिखाते हुए कहा—"देखो लल्ला, डाक्टर ने

रोग छिपाना और भाभियों से बात छिपाना, हमेशा नुकसानदायक ही होता है—फायदेमन्द नहीं। अगर ऐसी-वैसी कोई बात है तो बता दो। हम लोग तो तुम्हारे मददगार ही हैं। कोशिश करेंगे तुम्हारी शादी उसी से हो जाय—मिठाई खिलाना या गल खिलाना।"

कुमार झुंझला उठा—"जहन्नुम में गई शादी। न कुछ सोचती हो, न समझती हो। जिसे देखो, शादी-शादी। शादी क्या हुई आफत हो गई। यह तो होता नहीं पहिले इस सामान से पता लगा लो किसका है ताकि वापस कर दिया जाय।"

कुमार को चिढ़ता देखकर गीता ने और छेड़ना मुनासिब न समझा। राजरानी से कहा—"हाँ जीजी, शादी-वादी तो होती ही रहेगी। लेकिन पहिले यह पता तो लगालो कि बहू है कहाँ की?"

"बहू।" कुमार फिर चिढ़ गया—"फिर वही बहू-बहू! अरे पराई लड़की को क्यों पाप लगा रही हो तुम दोनों?"

"अच्छा बहू के मारो लाठी, यह बताओ और माल क्या निकला?"

गीता के प्रश्न पर राजरानी ने बताया—"एक जोड़ी कानों के इयरिंग हैं। कुछ किताबें और कापियाँ हैं।" कुछ रुककर राजरानी ने फिर कहा—"और एक चीज और......है!"

"वह क्या है जीजी?" गीता ने उत्सुकता से पूछा।

राजरानी बोली—"यह तो मैं भी नहीं जानती—वह कुमार की मुट्ठी में है, जिसे बन्द कर रखा है।"

"मेरी मुट्ठी में क्या है—कुछ नहीं?" कुमार ने फिर झूठ बोला।

राजरानी ने कहा—"कुछ नहीं है तो खोलते क्यों नहीं?" कहकर राजरानी ने कुमार की मुट्ठी पकड़ली। कुमार ने कोई चारा न देखकर मुट्ठी खोल दी—अंगूठी गिर पड़ी। अंगूठी को उठाकर राजरानी उछल पड़ी। बोली—"देखा पकड़ी गई न चोरी। निकली न मेरी बात

सच्ची। सगाई की अंगूठी भी मिल गई।"

राजरानी की हँसी में गीता भी सहयोग दे रही थी। उसने भी समर्थन किया—"हाँ जीजी, अब तो मामला साफ ही हो गया सारा। यानी इन्हें सगाई की अंगूठी देदी और अपने लिये भेजने को रंग का सामान दे दिया ?"

हताश होकर कुमार बोला—"जो मर्जी आये सोचो !"

"गीता ने हँसते हुए कहा—"हमने तो सोच लिया। कहो तो आज से ही गीत गाने शुरू करदें, ढोलक मँगाये लेते हैं ?"

"हाँ-हाँ, करदो शुरू देर क्या है। खूब उछलो-कूदो।"

कुमार के चुप होने पर गीता ने कहा—"वह तो हम करेंगे ही। लेकिन जरा सगाई की अंगूठी हमें भी दिखा दो।"

"यह लो।" राजरानी ने अगूठी गीता के हाथ में दे दी। गीता ने अंगूठी को पहले उंगली में डालकर घुमाया। फिर उसे ध्यान से देखने लगी।

अंगूठी कुमार को देकर गीता बोली—"जरा कापियाँ भी दिखाना।" कुमार बोला—"उन्हें मैंने अच्छी तरह देख लिया है भाभी ! कहीं नाम-गाँव नहीं लिखा।"

"जरा दिखा तो दो, हम भी देख लें उसकी लिखावट कैसी है ?'

राजरानी खिलखिला पड़ी—"मोती से हरफ हैं। मानो कापियों पर मोती टाँक रखे हों।" कहकर रजारानी ने दो कापियाँ उठाकर गीता के हाथ में दे दीं।

गीता कापी देखकर बोली—"हाँ, वाकई शब्द हैं तो मोती से। लो रख दो।"

कुमार ने सारा सामान ज्यों-का-त्यों रख दिया। बाद में सब्जी लेने के लिए चला गया। कुमार के जाने के बाद गीता ने कहा—"परसों मैं पीहर जा रही हूँ। कल जरा आप मुझसे मिल लेना।"

कुमार की अटेची का समाचार उड़ता-उड़ता कान्ता के कानों तक भी पहुँच चुका था और वह भी इस ढंग से पहुँचा था कि किसी लड़की ने कुमार को बहुत-सा माल अटेची में बन्द करके दे दिया है। इस समाचार से कान्ता का दिल हिल गया। एक बच्चे से कह कर उसने दूसरे दिन कुमार को बुलवाया।

कुमार को बैठाकर कान्ता ने असलियत का पता लगाने का प्रयास किया—"क्यों बाबू, हमने सुना है किसी लड़की ने तुम्हें बहुत-सा माल दिया है ?"

"कहाँ दिया है भाभी, बात का बतंगड़ बना दिया। बात महज इतनी ही है कि किसी लड़की की अटेची मेरी अटेची से बदल गई है।"

कान्ता गम्भीर हो कर बोली—"बस, इतनी ही बात है तो कोई खास बात नहीं। भूल हो ही जाती है। हाँ, अगर और कोई बात हो तो बता दो। तुम हमारी बात किसी से नहीं कहते—मैं तुम्हारी बात नहीं कहूँगी।"

दृढ़ स्वर में कुमार बोला—"और कोई बात नहीं है भाभी! नहीं तो मैं बता देता।"

कान्ता ने बड़प्पन जताते हुए कहा—"मैं तो इसलिए कह रही हूँ कि तुम अभी विद्यार्थी हो। कहीं किसी कालेज की लड़की के चक्कर में न पड़ जाना—वह आफत की परकाला होती है।"

"मुझे क्या भाभी कैसी भी हों। पता लग गया तो उसकी अटेची उसे वापिस कर देंगे, अपनी मँगा लेंगे।"

कान्ता ने समर्थन किया—"हाँ-हाँ, जितनी जल्दी हो सके यह काम कर डालना चाहिये। किसी की चीज अपने पास रखना ठीक नहीं और खासकर लड़कियों की चीज तो और भी नहीं रखनी चाहिये।"

बात की असलियत तक पहुँचने के लिये कान्ता ने फिर पैंतरा बदला—"अच्छा यह तो बताओ लल्ला, तुम्हें उसका ख्याल तो नहीं आता अब कभी। या तुम्हारे दिल में तो उसके लिए कुछ खुट-पुट नहीं होती ?"

"खुट-पुट कैसी भाभी, मैं समझा नही। रही उसके ख्याल की बात, कभी-कभी उसकी बेवकूफी पर गुस्सा, तो अवश्य आता है।"

कांता समर्थन करते हुए बोली—"गुस्सा तो आता ही है ऐसी पर। गाड़ी मे ही लड़ने बैठ गई, बतमीज कहीं की ! अरे यदि कम्बल उढ़ा दिया था तो क्या दौलत लुटा दी थी।" कांता ने आगे पूछा—"मेरे सर की कसम खाकर बताओ, जब वह तुम्हारे पैरों पर पड़ी थी, तब तुम जाग रहे थे या नहीं ?"

"कसम से भाभी मुझे कतई पता नहीं। मुझे तो बाद में भी यही महसूस हुआ कि कोई पिल्ला मेरे पैरों पर आ पड़ा है।"

"ठीक बात है, तुम बिलकुल निर्दोष हो। दोष अगर है भी तो उसका ही है।"

कान्ता को कुमार की बातों से पक्का विश्वास हो गया कि निश्चय ही अटेची—काण्ड भूल से हुआ है। इसमें और कोई राज नहीं है। अतः धीरे-धीरे उसका विवेक फिर लुप्त होना शुरू हुआ। बोली—'तुम हो निर्दयी !"

"कैसे भाभी ?" कुमार ने पूछा।

कान्ता ने कुटिलता से कहा—"उस दिन आँख से किरकिरी तो निकली नहीं, उलटे मेरे गाल पर इतनी जोर से अंगूठा दबाया कि आज तक दुख रहा है।"

"तुमने तभी क्यों नहीं कह दिया था भाभी, मैं हाथ ढीला कर देता ?"

कान्ता ने कहा—"तुम्हारा ढीला हाथ भी तो हथौड़ा-सा लगता

है। कल मैं ठण्ड खा गयी थी, सीने में इतना दर्द हो रहा है, लेकिन मेरी हिम्मत तुमसे मालिश कराने तक की नहीं हो रही, इन्हीं हथौड़े से हाथों के कारण।"

"क्यों भाभी, करा लो मालिश—हल्के हाथ से करूँगा। कुमार सीधे से बोला। कान्ता ने कहा—"तुमसे आँख की किरकिरी तो निकली ही नहीं, सीने का दर्द क्या निकालोगे, रहने दो।"

कुमार फिर आश्वासन देकर बोला—"आज दोनों काम करा लो भाभी, किरकिरी रह गई हो तो उसे भी निकलवा लो और दर्द भी दूर करा लो।"

कान्ता ने पूछा—"बोलो, पहले कौनसा काम करोगे। तेल उठा लाऊँ या किरकिरी तलाश करते हो।"

"जो चाहो ?"

"अच्छा तो आओ, पहले किरकिरी ही निकालो।" अभी कांता का वाक्या समाप्त भी न हुआ था कि खैरातीलाल धर्म ग्रन्थों का बण्डल लादे चले आए। उन्हें कान्ता के पास पटक कर बोले—'आज मैं इस लोक और परलोक दोनों के उद्धार की सामग्री एक साथ ले आया हूँ।"

कांता के जवाब देने से पहले ही फिर बोले—"इसमें राधेश्याम की रामायण भी है, गीता भी है, महाभारत भी है और भजनमाला भी है—दिन भर स्वाध्याय करो सब धर्मग्रन्थों का।

"आपने बड़ा अच्छा किया। ऐसी पुस्तकें तो हर घर में रहनी आवश्यक हैं।"

लालाजी ने उत्तर दिया—"मुझे तो बहुत दिनों से इनके लाने की लालसा थी, लेकिन वक्त नहीं मिलता था।" बाद में कुमार की ओर मुँह करके पूछा—"तेरी तो आजकल छुट्टी हो रही होगी—तू क्या करता रहता है आजकल घर में पड़-पड़ा ?"

"कुछ नहीं भाई साहब, बनारस गया हुआ था।" कुमार ने कहा।

लालाजी ने कहा—"अच्छा-अच्छा, अब ऐसा किया कर कभी-कभी अपनी भाभी को आकर महाभारत सुना दिया कर।"

कान्ता लालाजी के इस प्रस्ताव मे प्रसन्न हो गई। कुमार 'अच्छा' कहकर चला गया।

बनारस से वापस आकर जानकी की गाड़ी वानप्रस्थ आश्रम को छोड़ कर सन्यास आश्रम की ओर बढ़ चली। उसकी सारी ममता सिमटकर माला के दानों पर केन्द्रित हो गई। सवेरे उठना, स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर माला लेकर बैठ जाना। खाना खाने के बाद थोड़ा आराम करना और फिर उसी राम भजन में लग जाना। यदि कभी राजरानी या राजेन्द्र कुछ पूछते तो बता देती, अन्यथा बिल्कुल मौन रहती। हाँ, यदि कभी जानकी कुछ पूछती तो कुमार के बारे में एकाध सवाल दोनों से कर लेती—"कहाँ गया है बहू, कुमार! या उसके पर्चे कैसे गये इम्तहान के ?"

इन प्रश्नों का उत्तर जानकी को प्राय: संतोषजक ही मिलता था और जितना संतोषजनक उत्तर मिलता था, उतना ही राम भजन में उसका जी और ज्यादा लगता था।

एक दिन अपने राम-भजन से निवृत्त होकर जानकी राजरानी के कमरे में आई। राजरानी जानकी को देखकर खड़ी हो गई। पैर छूए—"आज्ञा माताजी ?" कहकर गर्दन झुका ली।

जानकी ने पहिले आशीर्वाद दिया। बाद में पूछा—"बहू अब

कुमार की शादी करने का विचार कब है। लड़का विवाह लायक हो गया। कहीं लड़की तलाश कर रखी है या नहीं ?"

राजरानी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही जानकी कहती रही—"राजेन्द्र से भी तूने कहा होता। भला मैं इस आयु में बच्चों से विवाह शादी की बातें करती क्या अच्छी लगूँगी ?"

राजरानी बोली—"माताजी, वह तो स्वयं ही कह रहे थे। रही लड़की की बात सो गीता भी अपनी बहन के लिए कई बार कह चुकी है। उसके पति ने भी मुझ से कहा था और बाबूजी से भी कहा था। अब तो फैसला बस लालाजी के ऊपर ही अटका हुआ है। उनकी ओर से कोई ऐसा संकेत मिले तो बात आगे बढ़ाई जाय।"

राजरानी की बातें ध्यान से सुनकर जानकी ने कहा—"उसके मन की बात तेरे अलावा और कौन निकलवा सकता है, बहू ! तेरा देवर है। तुझे उससे हर तरह की बातें कहने-सुनने का हक है। भला ऐसी बात क्या मां-बाप पूछा करते हैं ? यह पता लगाना या शादी के लिए तैयार करना तो भाभियों का ही काम होता है।"

राजरानी जानकी को विश्वास दिलाती हुई बोली—"माताजी, मैं तो पता नहीं कब से उस शुभ दिन का इन्तजार कर रही हूँ लेकिन ऐसा लगता है कि छोटे बाबू अभी तैयार ही नहीं हैं।"

"तूने कैसे जाना, अभी तैयार नहीं है ?"

जानकी को उत्तर देते हुए राजरानी ने कहा—"उनकी कई बातों से ऐसा ही पता चलता है कि अभी अबोध ही हैं।" जानकी को सन्तोष नहीं हुआ। बोली—"बड़े होकर लड़के हाथ से निकल जाते हैं बहू ! शादी छोटी उम्र में ही अच्छी। आगे चलकर सब ठीक हो जाते हैं। मैं शाम को राजेन्द्र से स्वयं भी जिक्र करूँगी, तू भी आ जाना।"

रात को जानकी ने सचमुच राजेन्द्र के कमरे में पहुँच कर कुमार की शादी का ज़िक्र छेड़ दिया—"बस बेटा, इतनी-सी कामना मेरी और है। मेरे सामने ही इस बालक के हाथ पीले हो जायें और बड़ी बहू-सी

सलोनी छोटी बहू भी इस घर में आ जाय । तब दोनों बहुओं को आशीर्वाद देकर मैं भगवान् विश्वनाथ के चरणों में बैठकर शेष साँसें काशी में ही बिता दूँ ।"

आर्द्र स्वर में राजेन्द्र बोला--"आपकी आज्ञा का पालन शीघ्र ही होगा माताजी । विश्वास रखो मेरी एक निगाह अपने काम पर और दूसरी कुमार के ऊपर हमेशा रहती है ।" राजेन्द्र कहता रहा--"यह उसकी भाभी तो कहती है कि अभी अबोध है । परन्तु इस बारे में मेरा इससे भी मतभेद है । मैं कहता हूँ अबोध नहीं, घुन्ना है घुन्ना । आज से नहीं बचपन से ही ।"

"हाँ भैया, सीधा तो वह बचपन से ही है । अब और सीधा हो गया है ।" जानकी ने राजेन्द्र का समर्थन किया ।

राजरानी ने फिर प्रतिवाद किया--"घुन्ने और सीधे में कोई अन्तर ही नहीं होता ? मैं तुम से ज्यादा जानती हूँ । पाँच वर्ष के बच्चे का जैसा स्वभाव होता है—उसका भी अभी तक वैसा ही है ।" अपनी बात के समर्थन में राजरानी फिर बोली—"उस दिन बताई तो थी तुम्हें एक बात ?"

"हाँ-हाँ, बताई थी तो क्या हुआ । पहले सभी ऐसे होते हैं ।"

दोनों को वाद-विवाद करते देखकर जानकी उठकर चलदी । चलते-चलते बोली—"वादविवाद से क्या लाभ । मैं कहती हूँ लड़का शादी लायक हो आया है, अब जल्दी ही उसकी शादी कर देनी चाहिये ।" कुछ रुककर जानकी ने फिर कहा--"गीता ही कौन बुरी है ? अपनी वैसे भी है । इसीलिये इसकी ही बहिन को पहिले देख लिया जाय ।"

राजेन्द्र ने कहा—"मैंने भी यही निश्चय कर रखा है अम्माँ ! भले खानदान की है, रूप-रंग में भी बुरी नहीं है । बोलचाल भी अच्छी है । पहले इसकी बहिन के लिए ही कोशिश की जाय ।"

जानकी जब चली गई, तब राजेन्द्र ने राजरानी से कहा—"अम्माँ

के सामने ही कह बैठीं—बताई तो थी उस दिन एक बात ?"

राजरानी ने चिढ़कर कहा—"तब क्या हुआ। उन्हें क्या पता कौनसी बात है ?"

राजेन्द्र बोला—"अगर पूछ बैठतीं कौनसी बात ? तब क्या बतला देती कि आँखों की मिलाई की बात थी।"

राजरानी ने जवाब दिया—"तब उन्हें भी और कोई कहानी घड़ कर सुना देती। मैं क्या इतनी बेवकूफ थी जो उनके सामने ऐसी बातें कहती।"

राजेन्द्र ने कहा—"मुझे तो यही डर लग रहा था कहीं तुम पागलपन न कर बैठो।"

राजरानी और चिढ़ गई—"कितनी बार पागलपन किया है उनके सामने मैंने ?"

राजेन्द्र हँस पड़ा। बोला—"ज्यादा तो नहीं, थोड़ा-बहुत तो अब भी कर ही दिया ?"

कौन-सा ?",

राजरानी के पूछने पर राजेन्द्र ने कहा—"यही कि कुमार अभी अबोध है ?"

"तब गलत क्या कहा ?"

"ठीक ही क्या कहा। यदि किसी लड़की की इतनी उम्र हो तो क्या उसे अबोध ही कहोगी ?" राजेन्द्र ने पूछा।

राजरानी ने जवाब दिया—"नहीं जनाब, इसलिए तो लड़के-लड़की की शादी आयु में ८ साल का अन्तर रखा गया है।"

अपनी इस अज्ञानता पर राजेन्द्र झेंप गया—"तुम जीतीं मैं हारा। अब यह बताओ कि गीता कब जा रही है अपने मायके ?"

"परसों। कल उसने मुझे बुलाया भी है।"

"कल जरूर मिल लेना उससे।" राजेन्द्र ने अपना फैसला सुनाया।

राजरानी ने सिर हिलाया और दूसरे दिन सवेरे ही गीता के घर पहुँच गई। गीता कूच की तैयारी में लगी हुई थी। देखते ही बोली—

"अच्छा हुआ जीजी तुम आ गईं। लो भैया का पत्र भी आ गया।" कहकर गीता ने पत्र राजरानी की ओर बढ़ा दिया। पत्र में गीता के आने के अतिरिक्त नीता की शादी की बात कुमार से चलाने को कहा था।

पत्र पढ़कर राजरानी ने कहा—"अपनी ओर से तो कुछ परेशानी नहीं बहन बस अब कुमार की स्वीकृति की देर है। वह जरा अजी तबियत का लड़का है। दूसरे शादी के संबंध में अभी जानता भी कुछ नहीं।" कुछ रुककर राजरानी ने फिर कहा—"और सबसे बड़ी बात तो गीता, यह है कि लड़की उसे पसन्द होनी चाहिये।"

राजरानी के चुप होने पर गीता ने कहा—"लड़की जैसी भी कुछ है, उसके लिये मेरा तारीफ करना ही बेकार है—वह उसे देख चुका है और उससे खुलकर बातचीत भी कर चुका है। दूसरी बार दिखाने के लिये यही हो सकता है कि दस-बारह दिन बाद मुझे लिवाने के लिए कुमार ही आयेगा इसके भाई नहीं। नीता आजकल घर पर हैं ही।"

बात का स्पष्टीकरण करते हुए गीता ने कहा—"देखो जीजी, पराई बेटी है—यहाँ भी दिखाई जा सकती थी। लेकिन, यहाँ इसलिये दिखाना पसन्द नहीं किया कि मानलो दोनों में से कोई इंकार करदे—तब? अतः दोनों की दिखाई इस ढंग से होना चाहिये ताकि दोनों में से एक को भी यह पता न चले कि यह देखा-दाखी शादी के लिए है। वरना परिणाम बुरा भी निकल सकता है।"

गीता की बात ध्यान से सुनकर राजरानी ने जवाब दिया—"बात तुम्हारी ठीक है वहिन, लेकिन नीता को यह कब देख चुका या उससे कब बात कर चुका, यह तो तुमने कभी बताया ही नहीं।"

गीता हँस पड़ी "मुझे भी पता कहाँ था, कल ही तो चला है और वह भी तुम्हारे घर।"

"हमारे घर ?" राजरानी चकराई।

गीता ने कहा—"हाँ तुम्हारे घर। कुमार की जिससे अटेची बदली गई है वह निश्चय ही नीता थी—यह मैं दावे के साथ कह सकती हूँ।"

"गाड़ी में पता नहीं कितनी लड़कियाँ सफर करती हैं। यह तुम कैसे कह सकती हो कि नीता ही थी।"

गीता ने कहा—"नीता ही थी जीजी ! पहली बात तो यह कि उसकी लिखावट से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ और तुम्हें भी परिचित करा दूँगी। तुम उस दिन का वह झगड़े वाले दिन का पत्र देख लो और उसकी लिखावट से मिलान करलो। दूसरा सबसे बड़ा प्रमाण है अंगूठी। वह अंगूठी मैंने पिछले वर्ष उसके इम्तहान में फस्ट आने पर इनाम में दी थी। पहचान यह है कि नीचे की ओर अंग्रेजी का "N" बना हुआ है। यकीन न आये तो देख लेना।"

"तब तो गीता उसकी अटेची भी साथ ही ले जाना।" राजरानी ने कहा।

गीता ने जवाब दिया—"जल्दी क्या है जीजी ? कौन जाने अटेची के ले जाने की जरूरत ही न पड़े।"

"फिर भी गीता उसकी किताबें हैं। दो चीजें भी हैं, चिन्ता कर रही होगी, यह ठीक नहीं।"

गीता ने फिर उत्तर 'न' में दिया—"जीजी, मैं जाकर भेद खोल दूँगी लेकिन बस इतना ही कि अटेची मेरे पास पहुँच गई है। उसके बाद देखा जायेगा। परन्तु दस बारह दिन बाद ही कुमार को मुझे लिवा लाने के लिए भेज देना। इसके भाई से यही तय किया था कि उनके बजाय मुझे कुमार लेने जायेगा और वहाँ दो-चार दिन रह कर

दोनों एक दूसरे से परिचित हो लेंगे। उसके बाद शादी की गाड़ी आगे बढ़ाई जायेगी।"

गीता कहती रही—"और जब दीदी यह अचानक वहाँ जायेगा तब आनन्द रहेगा भी बड़ा। क्योंकि उन दोनों ननद भौजाइयों की इनसे गाड़ी में चोंच-भिड़ंत हो ही चुकी है।"

"हाँ गीता, एक बार को तो दोनों ही सिटपिटा जायेंगे ?"

बात राजरानी की समझ में आ गई। चलती-चलती कह गई—"जिस दिन विनोद कहेगा, उसी दिन मैं कुमार को भेज दूँगी।"

कान्ता के हृदय-परिवर्तन का नुस्खा लाला खैरातीलाल ला चुके थे; अतः उस पर अमल शुरू हुआ। कुमार ने कान्ता को रामायण पढ़ाना शुरू किया।

कुमार चौपाइयाँ बोलता रहा—कान्ता टकटकी बाँधे कुमार के मुख की ओर देखती रही। कभी-कभी कह देती—"यहाँ से नहीं, थोड़े सफे छोड़कर आगे से सुनाओ।"

कुमार थोड़े पृष्ठ छोड़ देता। कान्ता फिर कहती—"नहीं नहीं, यहाँ से भी नहीं। कुछ और आगे से ?"

कुमार फिर पृष्ठ बदलता। कान्ता फिर कहती—"कुछ मजा नहीं आया। पलटो न और थोड़े पृष्ठ।"

दो-तीन दिन कान्ता ने पृष्ठ पलटवा कर ही रामायण का आनन्द लिया। तीसरे या चौथे दिन कुमार से उसने पूछा—"तुम्हें रामायण का कौन-सा पात्र अच्छा लगा कुमार ?"

"हनुमान जी भाभी, और तुम्हें ?" कुमार ने कान्ता से पूछा।

गम्भीर होकर कान्ता बोली—"सूर्पणखा ?"

"उसकी तो लक्ष्मण ने नाक काट ली थी भाभी ?"

"यह लक्ष्मण की बेवकूफी थी। आखिर वह अपना दिल लेकर उसके पास गई थी। किसी नारी के दिल को ठुकराना किसी भी पुरुष को शोभा नहीं देता ?"

कुमार ने बहस आगे न बढ़ाकर पूछा—'पुरुष पात्रों में बतलाओ भाभी ?

कान्ता ने तत्काल जवाब दिया—"बाली और रावण का चरित्र अच्छा लगा।"

कुमार ने चौंक कर पूछा—"बाली और रावण का चरित्र, कैसे भाभी !"

कान्ता ने तांत्रिक मुद्रा में कहा—"इसलिए कि एक अपने भाई की पत्नी को घर में रखता था। दूसरा मन पसन्द सीता का हरण करके ले गया था।"

"क्या यह बातें अच्छी हैं भाभी ?" कुमार ने पुनः प्रश्न किया।

कान्ता ने जवाब दिया—"बुराई क्या है लल्ले ? सुग्रीव की पत्नी बिना अपनी इच्छा के तो बाली के पास रहती नहीं थी। भला क्या कोई आदमी बिना उसकी इच्छा के दूसरे को रख सकता है ?"

"और रावण की बात भाभी ?" कुमार कान्ता के तर्क से चकरा रहा था।

"यही बात रावण की है। उनके यहाँ शादी होती ही इस प्रकार थी यानी उस काल में राक्षस-समाज में अपहरण प्रथा प्रचलित थी।"

कुमार ने विवाद को बढ़ावा देना उचित न समझकर पूछा—"अब कहाँ से सुनोगी भाभी ?"

कान्ता ने कहा—"वहीं से सुनाओ जहाँ से सीता का अपहरण हुआ था।"

कुमार ने रामायण आरम्भ की। सीता का हरण करके रावण ले चला। कान्ता ने कुमार को टोका—"गलत बात है, भला सीता को अकेला रावण उठाकर कैसे अपने यान पर डाल सकता था।"

कुमार बोला—"मुश्किल क्या है भाभी, मैं तुम्हें लेकर छत पर चढ़ जाऊँ।"

"मैं तुमसे दो कदम भी न चलूँ। यकीन न आये तो उठाकर देखलो।"

"रहने दो भाभी शर्त मत लगाओ। मुझे भी पूरा हनुमान समझो। छत पर भी नहीं चढ़ा गया तो घंटा आधा घंटा कन्धे पर तो रखा ही सकता हूं।"

"कन्धे पर रखने की बात कह रहे हो, मैं तुमसे एक फिट भी ऊपर न उठूँ।"

"कमर तक उठा लिया तो बोलो क्या दोगी?" कुमार ने शर्त की तैयारी की।

कान्ता बोली—"नकद पाँच रुपये। लेकिन अगर मैं घण्टे भर तक भी जमीन से न हिली तो?"

"तब कुछ नहीं लूँगा।"

"दोगे कुछ नहीं?"

"देने को यहाँ क्या धरा है।"

"तब ऐसे ही सही, लो उठाओ?" कहकर कान्ता बाहें फैलाकर बैठ गई। बोली—"बिल्कुल उसी तरह से उठाना जिस तरह से रावण ने सीता को और हनुमान ने पर्वत को उठाया था।"

"बिल्कुल उसी तरह से लो भाभी! लेकिन पहिले पाँच रुपये तो निकाल कर रख लो।"

कान्ता बोली—"चलो एक शर्त और भी रही। यदि तुम मुझे उठाये-उठाये ही मेरी जेब में से रुपये भी निकाल लो तो वह सब भी तुम्हारे।"

कुमार ने घबराकर कहा—"कहीं ऐसा न करना भाभी कि दो-चार आने ही जेब में डाल लो और एक तरह से मेरी मेहनत ही अकारथ जाय।"

विश्वास दिलाते हुए कान्ता ने कहा—'बेफिक्र रहो, खरीज नहीं नोट ही मिलेगा। हो सकता है दूसरा नोट पाँच या दस का हो। जरा ठहरो मैं पहले जेब में डाल भी लाऊँ।" कहकर कान्ता पहिले बाहर की ओर गई और सदर द्वार का कुन्दा लगाकर अन्दर कमरे मे जाकर ब्लाउज की जेब में रुपये इस तरह से डालने शुरू किये जिससे कि कुमार उन्हें देखता रहे।

कान्ता जेब में रुपये डालती जा रही थी और कुमार को बार-बार देखती भी जा रही थी। उन्मत्तता उसके शरीर को कँपा रही थी। कुमार की दृष्टि नोटों पर लग रही थी। खुश था आज अच्छी आमदनी होगी।

दस-बारह रुपये जेब में डालकर कान्ता ने एक नोट अपनी चोली में और रखा। कुमार बोला—"बस, जेब से ही पैसे निकालने की शर्त है भाभी या हर जगह से ?"

काँपती आवाज में कान्ता बोली—"हर जगह से। आज तुम्हें पूरी छूट है। जहाँ भी तुम्हें रुपये का शक हो, टटोल लो। निकाल लो।"

"मगर इतनी देर तुम्हें टँगे-टँगे तो मेरे हाथ दुख जायेंगे। क्योंकि एक हाथ तो पैसे टटोलने में ही रहेगा। रह गया बेचारा एक हाथ आज उसी की शामत आ गई।"

कान्ता विवेकशून्य हो चुकी थी। बोली—"चलो यह पाबन्दी भी हटाये देती हूं कि तुम टाँगे-ही-टाँगे तलाशी लेकर पैसे निकालो। रहा अब यह कि तुम चाहे जैसे पैसे निकालो। लेकिन आसानी से मैं भी देने वाली नहीं हूं। यों ही मत समझ लेना कि कान्ता धून की बनी

है। फिर छीना-झपटी है या पहली शर्त मानो ?"

"दूसरी ही ठीक है भाभी।" कुमार बोला।"

कान्ता मान गई—"मंजूर है ?"

कान्ता रुपये डालकर जैसे ही कुमार के पास आने को हुई तैसे ही दरवाजे पर थाप पड़ी—"अजी जरा दरवाजा खोलना।" लाला खैरातीलाल दरवाजा थपथपा रहे थे।"

कुमार ने दरवाजा खोल दिया।"

लालाजी ने पूछा—"कांता कहाँ गई ?" कुमार ने जवाब दिया—"अन्दर कमरे में गई हैं।"

लालाजी ने अबकी बार कान्ता को आवाज दी—"अजी क्या कर रही हो ?"

चिढ़े स्वर में कान्ता ने उत्तर दिया—"आई, चिल्ला क्यों रहे हो—जरा पूजा के लिए प्रसाद तलाश कर रही थी।"

"नाहक, अरे एक चवन्नी के बताशे इससे मँगाकर बटवा देतीं। या पाँच बताशे इसे ही जिमा दिये होते—हो गया प्रसाद!" लालाजी अपना वक्तव्य देते रहे—"यह तो तुम्हारी कथा-वार्ता रोज ही हुआ करेगी—इकट्ठा प्रसाद ही मंगा कर रखलो।" लालाजी बोलते ही रहे—"अरे हाँ, जब रामायण सुना करो तो किसी देवी-देवता की मूर्ति अपने आगे अवश्य रख लिया करो। इससे तन-मन पवित्र रहता है। कुमार्ग की तरफ आदमी की प्रवृत्ति नहीं जाती, साथ ही स्वर्ग की राह भी सरल होती है।"

"आग लगे तेरे स्वर्ग में।" कान्ता बुदबुदायी। प्रकट में बोली—"कभी रखते भी हो दो-चार लड्डू घर में लाकर जो किसी से ज्ञान की बातें सुनाकर मुँह भी मीठा करा दूँ।"

लालाजी ने सपाक से उत्तर दिया—"पैसे तो रखता हूं लाकर। किसी को दो पैसे दिये बाजार से मँगा लिये।"

कुमार दोनों की बातें सुन रहा था। नम्बरवार दोनों की ओर

गर्दन घुमाकर देख भी लेता था। लालाजी ने कहा—"आज जरा जी ठीक नहीं था। सोचा चलकर घर ही आराम करूँगा। तुम जरा मेरा बिस्तरा तो बिछा दो।"

"तुम्हारा जी रहता भी है कभी ठीक ?" कान्ता ने चिढ़े-चिढ़े जवाब दिया—"मेरे सर में तो आप ही दर्द हो रहा है। अपने ही कपड़े बिछाकर न पड़ी और तुम आ गये गलग।"

कान्ता से अधिक न उलझ कर लालाजी ने कुमार की ओर गर्दन घुमाली। बोले—"अरे यार मेरे कपड़े तू ही बिछा दे न ? तुम जवान लौंड़ों का तो इतना भी आराम हम लोगों को नहीं।"

कान्ता ने वहीं से उत्तर दिया—"जवानी का लाभ हर एक की तक़दीर में होता भी तो नहीं लालाजी !"

तुम सच कहती हो कान्ता !" कहकर लालाजी कुमार के बिछे हुए कपड़ों पर लेट गये। कान्ता बाहर आई। कुमार से बोली-—'बस लल्ला अब कल पढ़ना। लाओ जरा रामायण उठा दो। कहकर कांता ने रामायण लेने के लिए हाथ बढ़ाया और रामायण लेते-लेते ही दस रुपये का एक नोट कुमार की मुट्ठी में घुसा दिया।

लालाजी तीन दीन तक अपनी आरामगाह में रहे। चौथे दिन विनोद ने गीता को लिवा लाने की अनुमति कुमार को राजेन्द्र से दिला दी।

कुमार ने अपनी यात्रा की तैयारी आरम्भ की। पहली बार गीता के मायके जा रहा था वह। अच्छे-अच्छे कपड़ों का चयन किया। घड़ी के स्टील के फीते को रेगमाल से रगड़-रगड़ कर चमकाया।

अपनी टीपटाप के सामान का संग्रह करके कुमार का दिमाग अटेची की अंगूठी की ओर गया, क्यों न उस फुलझड़ी की अंगूठी भी पहनकर चला जाय। अपने रखे नाम पर कुमार को पहले खुद ही हँसी आ गई—फुलझड़ी ! अरे क्या नाम रख दिया मैंने उस लड़की का ? लेकिन लड़ती हुई भी लगती कितनी भली है ?

कुमार सोचता रहा—कमाल के जवाब होते हैं उसके। अगर अपनी उस वाणी का प्रयोग कटु शब्दों में न करे तो कितना अच्छा हो ? कुमार का सोचना जारी रहा—और इत्तिफाक की बात देखो, दूसरे दिन फिर मिल गई गाड़ी में—गाड़ी में क्या एक ही डिब्बा था। इसे कहते हैं मुकद्दर ! रातभर मुझे औरत समझ कर अपने कम्बल से गरमायी देती रही। मेरे पैरों पर पड़ी सोती रही और जैसे यह पता चला कि मैं लड़की नहीं हूँ—कम्बल बेदर्दी से खींच लिया, कठोर कहीं की, जरा भी दया-माया दिल में नहीं ?

गाड़ी की घटना के बाद पहिली बार कुमार ने नीता के बारे में सोचा। बाद में चुपके से उसकी अटेची से अंगूठी निकाली और अपनी अँगुली में डालकर बोला—"लगती तो शानदार है। पहनकर आदमी एक बार तो बस जँच जाता है।" अब कुमार अंगूठी को लेकर सोच रहा था—"तबियत की भी शौकीन लगती है। लेकिन यह पता नहीं उसके हाथ में यह अंगूठी कैसी लगती है ?" कुमार विचारता रहा—"रो रही होगी बेचारी मेरी जान को। अटेची के साथ अंगूठी भी गई और इयरिंग भी। यह भी एक ही रही।"

सोचते-सोचते कुमार के मन में ममता का संचार हुआ—"उसकी भोली सूरत देखकर तो मुझे दया आती है। जी चाहता है, पता चले तो उसकी सारी चीजें सौंप आऊँ और उसके मुँह से फिर एक बार जली-कटी सुन आऊँ। पता नहीं क्यों उसकी बेढंगी बातें भी भली ही लगती हैं ?"

सोचते-सोचते कुमार ने उंगली से अंगूठी उतारी और जेब में यह कहते हुए डाल ली—"भाभी ने देख ली तो रखवा लेंगी। इसलिए स्टेशन पर चलकर पहनेंगे।"

जेब-खर्च विनोद से लेकर कुमार स्टेशन की ओर रवाना हुआ और स्टेशन आने से पहिले ही उसने जेब से अंगूठी निकाल कर पहन ली।

गाड़ी में बैठकर उसे फिर नीता की याद आई—"क्या अब भी संभव है कि वह लड़की फिर मिल जाय ?" नीता की याद के साथ-साथ कुमार का ध्यान अंगूठी पर पहुँचा—अगर मिल गई तो ? यह अंगूठी क्या होगी—क्या पहचान लेगी ? पहचान ली तब ?" कुमार ने सोचा—"तब यह ठीक है कि जब तक रेल में हूं तब तक हाथ में रूमाल लपेट लिया जाय। कौन जाने वह मिल ही जाय ?" रूमाल अंगूठी वाले हाथ में लपेटकर कुमार ने सोचा—"अब मिल जाये तो कोई हर्ज नहीं। मैं भी लड़ने को तैयार हूँ। ऐसे-ऐसे जवाब सुनाऊँ, वह भी याद रखे कि हाँ किसी से वास्ता पड़ा था।"

प्रत्येक स्टेशन पर चढ़ने वाली को कुमार इसीलिए गौर से देखता कि शायद मेरी तरह आज भी अटेची वाली यात्रा कर रही हो। लेकिन गाड़ी लोगों को बैठाकर चल देती और कुमार हताश होकर रह जाता।

इसी आशा-निराशा में डूबते-उतरते गीता के मायके का स्टेशन आया और कुमार अपना सामान उठाकर गाड़ी से उतर कर चल दिया।

नीता कुमार का फोटू अटेची में से तीर कर चुकी थी और जब भी समय मिलता, कुमार के फोटू पर आँखें गड़ाये कहती रहती—

"कितने भोले हैं आप ! कितने सीधे और शांत ! मैं गंवार आपका आदर न कर सकी। मैंने उल्टे आपकी भर्त्सना की कितनी ओछी हूँ ?" नीना सोचती रहती—"भाग्य ने कितना सुन्दर अवसर दिया था आपके चरणों पर सोने का। ईश्वर क्या कभी फिर अवसर देगा ऐसा ?"

कभी-कभी फोटू को सामने रखकर पूछती—"क्या नाम है बाबू जी आपका ? बोलते क्यों नहीं। उस दिन तो हमसे फटाफट बोल रहे थे, आज ऐसी चुप्पी साधली ?"

जब चित्र से मन न भरता तो किताबों को टटोलती। कपड़ों को घंटों लिये बैठी रहती—"तुम्हें परेशानी न पड़ रही होगी इन कपड़ों के बिना ? हाय राम मैं कैसे पहुँचा आऊँ इन्हें तुम तक ?"

कुमार के चित्र और सामान को प्यार करने का अवसर नीता को दिन से अधिक रात को मिलता था। अतः जब सब सो जाते, तब नीता का प्रेम उबाल लेता। कुछ देर तो चित्र से मन बहलाती। बाद में उसके सामान को देखकर अपने को कोसा करती।

उधर अटेची काण्ड के बाद से सुमित्रा को नीता के चिढ़ाने के लिए अच्छा-खासा मसाला मिल गया था। सुमित्रा जब भी नीता को चुपचाप बैठे देखती, तभी छेड़ती—"क्यों ननदजी, कैसे उदास बैठी हो। हमारे ननदोई याद आ रहे होंगे।"

"होगा कोई तुम्हारा ननदोई—मेरा क्या लगता है ?"। चढ़कर नीता जवाब देती।

तत्काल सुमित्रा बोल उठती—"अजी बिना तुम्हारे कुछ लगे हमारा ननदोई कैसे बनेगा। जरा रिश्ते का हिसाब तो फैलाओ ?"

"यह हिसाब तुम्हें ही मुबारिक हो भाभी ! मुझे तो क्षमा ही करो।"

सुमित्रा फिर हँसती—"हम तो हिसाब फैला ही लेंगे। लेकिन,

तुम तो दिल की कह दो हमसे ?"

"क्या कह दूँ ?"

"यही कि आजकल तुम्हारे दिल पर क्या बीत रही है ?"

"बड़ी अच्छी बीत रही है ?" नीता जवाब देती ।

प्रत्युत्तर में सुमित्रा फिर कहती—"बड़ी बुरी ! यह हमसे पूछो। तुम्हारी सूरत ही गवाह है। उस दिन से तुम्हारी शक्ल पर बारह ही बजते रहते हैं हमेशा।"

"तुम्हारी शक्ल पर शायद एक बजता रहता होगा ?"

"हमारी पर अब क्या है, एक बजे या दो— चिंता अब तुम्हारी शक्ल की है। उसी की कीमत है अब तो ?"

"देखो भाभी, मुझसे तुम इस तरह की दिल्लगी मत किया करो।" नीता एक दिन चिढ़ गई।

सुमित्रा बोली—"बनो मत, दाइयों से पेट मत छिपाओ। अरे, एक दिन हमारा भी यही हाल था।"

"क्या हाल था ?" नीता ने चिढ़कर पूछा।

सुमित्रा ने कहा—"वही जो आजकल तुम्हारा है।"

कुछ दिन बाद ही गीता आगई। गीता के आने के दो-तीन दिन बाद सुमित्रा ने नीता को फिर छेड़ा—"ज्यादा याद सता रही है तो बुला दें ?"

"किसकी याद ?" नीता ने पूछा।

तत्काल सुमित्रा बोली—"और किसकी हमारे ननदोई की ?"

"कौन है वह तेरा ननदोई ?"

नीता को जवाब देते न देखकर गीता ने पूछा। सुमित्रा ने उत्तर दिया—"ओहो जी, एक बहिन तो पगली पागल बनी हुई थी अब दूसरी भी वैसी ही बनकर आई है। ननदोई कौन होता है—जैसे दोनों जानती ही न हों ?"

"हमें क्या पता तू ही जाने। तेरा ही कोई होता होगा ?" गीता ने मुँह मटकाकर कहा।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हाँ-हाँ, विनोद भी मेरा ही कुछ लगता है—तुम्हारा तो कुछ लगता ही नहीं है ?"

"हाँ-हाँ, हमारा कोई क्या होता ?" गीता ने जरा और मुँह बनाया।

सुमित्रा हँसी—"जरा कलेजे पर हाथ रखकर कहना ?"

अब गीता भी हँस पड़ी—"लाओ करो कलेजा आगे, रखूँ हाथ कसम खाने के लिये ?"

'अपने पर ही रखो, मेरे पर क्यों रखती हो। या अपनी बहिन के कलेजे पर रख दो।" सुमित्रा ने आँखें नचाईं।

गीता ने कहा—"तू इस बेचारी के पीछे क्यों पड़ी है। हमसे बात कर, जो एक की दो सुनायें।"

"दिन रात ननदोई पढ़ाने का ही काम करते हैं न ?" सुमित्रा हँस रही थी।

गीता ने दाँत पीसे—"अब तू भी उनसे ही पढ़ लिया कर न। उनकी पढ़ाई अच्छी लगती है शायद ?"

"पढ़ तो लिया करूँ।" गम्भीर होकर सुमित्रा ने कहा—"लेकिन, तुम्हारे भाई से कौन पढ़ा करेगी, यह भी बता दो ?"

"उनकी फिकर छोड़—तू अपनी कर।"

"ना बाबा, इनकी फिकर पहिले।" सुमित्रा कहती रही—"और उसके बाद तुम दोनों की फिकर भी तो मेरे ही सर पर है।"

"आज तो तुम भाभी बड़ी फिकर वाली बन गईं।"

सुमित्रा तत्काल बोल पड़ी—"नहीं-नहीं, मैं अकेली कहाँ एक और भी मेरे साथ फिकर वाली बन गई ?"

"वह कौन है '?' गीता ने पूछा।

सुमित्रा बोली—"वह हैं श्रीमती नीताजी !"

"तुम्हारी तो भाभी जबान बड़ी तेज हो गई। कभी तो सोचकर कहा करो।" सुमित्रा के उत्तर देने से पहले ही नीता बोली—"जीजी, मैं तो भाभी से तंग आ गई। जब देखो तब ऐसी ही बातें बकती रहती हैं।"

सुमित्रा पर नीता के कड़े शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। "जी हाँ, लड़को से अदल-बदल करती फिरो तुम, और आदत के लिए बदनाम करो मुझे। तुम दोनों बहिनें ठीक, मैं पागल ?"

"क्या अदल-बदल करली मैंने ?" नीता ने चिढ़कर पूछा।

सुमित्रा भोली-सी बनकर बोली—"हमें तो बहिन, तुमने अटेची ही बदलकर लाकर दी है। और क्या-क्या बदल आई हो, बताया तक नहीं।"

"और बदलने को था ही क्या मेरे पास ?"

नीता के इस जवाब पर सुमित्रा खिलखिला कर हँस पड़ी—"यानी और जो कुछ था वह पहले ही बदल चुकी थी ?"

"तुमसे कौन अकेले मगज मारे ?" नीता कहकर उठ खड़ी हुई।

सुमित्रा ने हाथ पकड़ लिया। ठोड़ी पकड़ कर बोली—"हमसे अकेले मगज मारना पसंद ही क्यों करती हो ?"

अपना हाथ छुड़ाते हुए नीता ने कहा—"मैं क्यों करती अकेले ?"

सुमित्रा ने जोर का ठहाका लगाया—"निकल गई न सच्ची बात जबान से ?"

"क्या निकल गई ?" नीता ने पूछा।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"यही कि अकेली नहीं, दुकेली ही मगज पच्ची करती हूँ मैं तो ?"

"तुम तो बकवास करती हो भाभी !"

सुमित्रा ने पूछा—'यही बात है" ?

"हाँ-हाँ, यही बात है।"

"तब वह फोटू कहाँ उड़ गया अटेची से ?"

नीता ने आँखें झुकालीं। हाथ छुड़ाकर चलती कह गई—"मैं क्या जानूँ किसी का फोटू कहाँ गया ?"

वहीं से सुमित्रा ने कहा—"जहाँ है, वहाँ से भी हम किसी दिन निकाल लेंगे !"

नीता चली गई। गीता अभी तक चुप थी। नीता के जाने के बाद गीता ने पूछा—"किसका फोटू है यह क्या किस्सा है भाभी ?"

बनते हुये सुमित्रा ने कहा—"तुम दोनों बहिनों की बातें, तुम ही जानो। मन में और बाहर कुछ और !"

उकता कर गीता ने कहा—"सीधे-सीधे बताओगी या कमर तुड़वा कर बताओगी।"

सुमित्रा बोली—"पहले कमर ही तोड़ लो, तभी बताऊँगी।"

"नहीं भाभी मेरी अच्छी भाभी ! इस पतली सी कमर को क्यों तुड़वाती हो। यों ही बता दो न ?"

"अच्छा सुनो।" कहकर सुमित्रा ने अटेची के बदलने की सारी कहानी ज्यों-की-त्यों सुनादी और साथ ही यह भी बतलाया कि उस अटेची से अब अटेची वाले का फोटू भी गायब है।

अटेची बदलाई की कहानी सुनकर गीता गम्भीर हो गई। कुछ देर बाद बोली—"मुझे तो पहिले से पता था अटेची बदलने का सारा हाल।"

आगे मुख लम्बा करके सुमित्रा ने पूछा—"ननदोई जी ने ज्योतिष भी सिखा दिया है क्या ?"

"कभी का।"

"अच्छा मजाक छोड़ो ननदजी ! यह बताओ तुम्हें कैसे पता चला ! उसमें तो नीता की साड़ियों के साथ बुन्दे भी गये हैं।"

"और अंगूठी ?" गीता ने पूछा।

सुमित्रा ने कहा—"तब तो बहिन तुम्हें सारा पता है। सच-सच बता दो यह हमारी चीजें अब मिल भी जायेंगी या नहीं। अटेची बदलने वाला कैसे पकड़ा जाय ?"

"वह पकड़ा गया और फिर पकड़ा जायेगा—यहीं पर।"

"कैसे पकड़ा गया ? कौन था ?" आश्चर्य की मुद्रा में सुमित्रा ने पूछा।

गीता ने मुँह बनाया—"हमने तो पकड़ ही लिया, कोई भी हो!"

"कम-से-कम यह तो बता ही दो था कौन ?"

"मेरा देवर!"

"तुम्हारा देवर ?" आश्चर्य से सुमित्रा ने पूछा।

गीता ने उसी गम्भीरता से कहा—"हाँ!"

सुमित्रा हँस पड़ी—"हो बड़ी चारसौ बीस दोनो बहिनें!" सुमित्रा कहती रही—"देखा, एक बहिन ने अटेची भी उड़ाई तो जीजा की! दूसरी ने भी देवर से उड़वाई तो किसकी ? अपनी बहिन की; शाबाश!"

गीता भी हँस पड़ी—"तुम्हारी तो नहीं उड़वाई ?"

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हमारी उड़ाकर बेचारा क्या लेता—खाली थी, उसमें मिलता भी क्या उसे ?"

"तुम तो बड़ी भोली हो, सैकड़ों उल्टी-सीधी सुनाईं तुम लोगों ने उसे गाड़ी में ?"

सुमित्रा ने कहा—"कसम ले लो बहिन, अगर मैंने कोई बेजा बात कही हो तो। जली-भुनी जो कुछ भी सुनाई हैं वह सब तुम्हारी बहिन ने ही सुनाई हैं। अपने राम ऐसी बेवकूफी नहीं करते।"

"फिर भी तुम्हें तो नीता को समझाना चाहिये था। उसे रोकना चाहिये था।" गीता ने गम्भीरता दिखाई।

सुमित्रा बोली—"लेकिन, हमें यह पता कहाँ था कि यह महोदय महारानीजी के देवर साहब हैं, इनसे जरा बाकायादा अदब से बोलें।"

सुमित्रा ने अपनी बात का रुख बदलते हुए कहा—"अच्छा खैर, जो हुआ सो तो हुआ। लेकिन यह तो बताओ, तुम्हारे उस देवर का क्या हुआ जिसकी नीता से शादी की चर्चा चली थी ?"

गीता ने कहा—"वह तो पीछे बतलाऊँगी, पहिले यह बतलाओ कि फोटू का जिक्र क्या था। कुमार की अटेची में उसका फोटू भी था क्या ?"

"हाँ था।"

"तब कहाँ गया ?"

"यह पूछो अपनी बहिन से। उसी ने कहीं उड़ा दिया।"

गीता और गम्भीर हो गई—"मजाक नहीं भाभी, सच बताओ तुम्हें यह विश्वास है कि वह फोटू नीता ने ही उड़ाया है ?"

"पक्का यकीन है। क्या मैं स्त्री होकर एक स्त्री के इतने भेद भी नहीं समझती।"

"इसका मतलब तो यह होता है कि नीता को कुमार पसन्द है। यदि उसी ने उसका फोटू उड़ाया है तो ?"

सुमित्रा ने जवाब दिया—"अजी उसी ने उड़ाया है उसी ने। चिपकाये न फिरती हो सीने से तो नाम बदल देना। ले लो चाहे तलाशी उसकी।"

गीता ने समझाया—"नहीं भाभी ! ऐसी भूल मत करना। बल्कि ज्यादा छेड़ा भी मत करो। हम लोगों का तो काम यही है कि दोनों एक दूसरे को पसन्द करलें।"

"तब क्या यह वही लड़का है जिसके साथ बातचीत हो रही है ?" सुमित्रा की उत्सुकता बढ़ी।

गीता ने कहा—"हाँ-हाँ, वही है।"

"लड़का तो सुन्दर है जीजी।"

"आया मुँह में पानी तुम्हारे भी ?"

सुमित्रा ने तत्काल प्रत्युत्तर दिया—"हाँ बहिन ! भय तो आया, क्योंकि सुशील भी है और सलोना भी । नीता की जोड़ी बड़ी सुन्दर रहेगी, तुम्हें यश मिलेगा ।"

"नीता के लिये भाभी तुमसे अधिक मेरा कर्त्तव्य है, सारा तुम्हारा ही तो नहीं ।"

सुमित्रा गम्भीर हो गयी—"हाँ तुम्हारा अधिक है बहिन ! कोशिश में कमी मत करो ।" बाद में फिर परिहास पर आ गयी—"तुम्हारी बहिन तो उसकी दीवानी हुई फिरती है । जरा लड़के की नब्ज तुम टटोल लो—काम बना-बनाया धरा है ।"

"आ रहा है यहीं—तुम्हीं टटोल लेना उसकी नब्ज ?"

सुमित्रा खुश हो गयी—"सच बहिनजी ?"

"हाँ, भाभी !"

"बुलाओ न जल्दी से जल्दी । हमारा तो नये ननदोई के लिए जी तरस रहा है ?"

"बना लिया ननदोई ?" गीता मुस्कराई ।

सुमित्रा हँसी—"कभी का, बल्कि गाड़ी में देखते ही ।"

"अच्छा तो जल्दी ही आयेगा, चिन्ता न कर । फूलमाला लेकर तैयार हो जाओ भाभी !"

"वह डालेगी तुम्हारी बहिन, हमारा हक तो उसके भी पैर छूने का ही है बहन !"

कुमार जिस समय गीता के घर पहुँचा, ज्ञानेश्वर बाहर गये हुए थे । गीता और सुमित्रा पड़ोस की किसी गप्प-गोष्ठी में भाग लेने गई हुई थीं और नीता बैठक में पलंग पर लेटी एक उपन्यास से मन बहला रही थी । जब उसका मन उपन्यास में न लगा, तब धीरे-से उठी

और कुमार का चित्र किताब के पन्नों से लगा कर देखने लगी।

चित्र को अपलक नेत्रों से निहारते-निहारते नीता बुदबुदाई—"तुम बड़े वैसे हो और बड़े उद्दण्ड भी हो। किताबों में भी नहीं टिक पाते। गाड़ी में तो मुझे परेशान करते ही थे; यहाँ भी मेरा पीछा न छोड़ा चले आये पीछे-पीछे ही।"

कुमार के चित्र से नीता का प्रेम बढ़ता गया। बोलती रही—"तुम गाड़ी में तो बड़े भोले बने बैठे थे; जैसे कुछ जानते ही नहीं। हो बड़े छुपे हुए। फिर भी पता नहीं क्यों मुझे अच्छे लगते हो। क्यों मेरा दिल और दिमाग झकझोर दिया है तुमने ?"

"ज्ञानेश्वर जी हैं क्या ?" बैठक के बाहर कुमार ने आवाज दी।

नीता ने अपनी विचारधारा में खलल न डालकर लेटे-लेटे ही जवाब दिया—"नहीं हैं।"

"कहाँ गये हैं ?" कुमार ने फिर पूछा। नीता ने उसी तरह से लेटे-लेटे ही फिर कह दिया—"कह तो दिया नहीं हैं।"

कुमार झुँझला गया—"अरे, नहीं हैं, तो कम-से-कम यह तो बतला दो कहाँ गये हैं ?"

"कह तो दिया नहीं है। काम बता जाओ, नाम बता जाओ। आने पर कह देंगे।"

"लेकिन यह तो बताओ कहाँ गये हैं।" कुमार धूप में खड़ा था।

नीता बोली—"कह दिया हमें पता नहीं फिर क्यों बार-बार दलील कर रहे हो ?"

कुमार फिर बोला—"दलील मैं कर रहा हूँ या तुम कर रही हो। यह तो होता नहीं कि उठकर बैठक खोल दो।" कुमार कहता रहा—"अजीब हैं आप भी। कम-से-कम बैठक खोलकर किसी को बिठाना चाहिये ; बात पूछनी चाहिये।"

"मेरे पास इतना फालतू दिमाग नहीं है जो तुम्हारे जैसे आदमी से जद्दोजहद करती रहूं। कह दिया घर नहीं हैं। भले आदमियों का

काम यही होता है कि नाम और धाम बताया और चलते बने। तुमने तो सत्याग्रह ही कर दिया दरवाजे पर ?"

"मतलब यह है कि तुम्हें बैठक का दरवाजा नहीं खोलना है ?" कुमार ने तीखे स्वर से पूछा।

नीता ने उसी टोन में जवाब दिया—"जी नहीं, मैं कुछ जरूरी काम कर रही हूँ।" कहकर नीता ने फिर चित्र पर आँखें गाड़ दीं। धीरे-से बोली—'दुनियाँ नहीं देख सकती तुम्हारे-हमारे प्रेम को। देखो न घर से वक्त मिला तो बाहर से कोई आ मरा। कर रहा है दो घण्टे से खड़ा-खड़ा टाँय-टाँय। भला मैं तुम्हें छोड़कर कैसे इसके लिए बैठक खोल दूँ।"

नीता को चुप देखकर कुमार फिर बोला—"अच्छा साहब, काम से ही निपट कर दरवाजा खोल दीजियेगा। मैं इतनी देर और खड़ा रहूँगा धूप में ही।"

"मतलब यह है जाओगे हमारी बैठक में बैठकर ही ?"नीता ने क्रोध से पूछा।

कुमार ने हँसकर कहा—'बैठकर ही नहीं, लेटकर भी कुछ देर ?"

"लेकिन यहाँ भाभी और जीजी भी तो नहीं हैं। भला बिना जाने-पहचाने मैं कैसे दरवाजा खोलूँ ?" इस बार नीता ने अपनी नीति स्पष्ट की।

कुमार ने उत्तर दिया—"बैठक खोलकर उन्हें इत्ला दे दो मेरे आने की।"

"यानी घर और बाहर तुम्हारे ऊपर ही छोड़ जाऊँ ?"

"हाँ-हाँ, हर्ज क्या है। मैं कोई अलादीन के चिराग का देव तो नहीं हूँ जो तुम्हारे घर को उठा ले जाऊँगा ?"

कुमार के इस उत्तर को सुनकर अविश्वास की मुद्रा में नीता बोली—"घर न सही, सामान तो उठा ही सकते हो ?"

"विश्वास कीजिये, चोरी की आदत मुझमें कतई नहीं है।"

तंग आकर नीता ने निश्चय किया कि कम-से-कम देख तो लिया जाय कौन इतनी देर से टर्र-टर्र कर रहा है ; क्योंकि कुमार के हर जवाब पर नीता को आवाज ऐसी लगती थी मानो उसने कहीं सुनी हो । अतः कुमार के चित्र को किताब में छिपाकर नीता उठी और बैठक का दरवाजा खोल दिया ।

दरवाजा खुलते ही नीता का कलेजा धक् से रह गया—"अरे आप ?"

नीता को देखकर कुमार भी सकपकाया । जल्दी में उसके मुख से भी कोई उत्तर न निकलकर केवल 'आप' ही निकला ।

दोनों कुछ क्षण मौन रहे । नीता गर्दन लटकाये बुत बनी खड़ी थी । कुछ साहस बटोर कर पूछा—"आप शायद फिर अटेचियों को बदलने आये हैं ?" इतना कहकर नीता ने घबराकर पीछे की ओर देखा । घर में सुमित्रा या गीता में से अभी कोई नहीं लौटी थी । अतः कुछ शाश्वस्त होकर नीता ने फिर कहा—"लाइये फिर कहाँ है मेरी अटेची । आपकी अटेची तो भाभी ने कहीं रख दी है । ले जाना किसी दिन उन्हीं के सामने । यदि मेरी लाये हो तो दे जाओ ?"

अपनी अटेची की मांग के साथ नीता को चित्र की याद ने सताया । सोचा अटेची गई तो चित्र भी देना पड़ेगा । उसका दिल काँप गया । हाय राम ! क्या होगा मैं तो बिना मौत मरी । इससे तो अटेची का जिक्र ही न करती तो ठीक था । अतः फिर बोली—"न लाये हो तो भी कोई बात नहीं । फिर किसी दिन बदल ले जाना ; तुम्हें तो बदलने की आदत है ही ?"

कुमार बोला—"आप पहिले मेरी अटेची तो लाइये । देखिए शायद वह सामने है ?"

"कहाँ, मुझे तो दीख नहीं रही ।" नीता ने मुँह फेरा ।

"जरा अन्दर जाकर देखो तो ।"

नीता बैठक के पिछले द्वार से रहने के मकान में जैसे ही अन्दर गई, तैसे ही कुमार ने इतमिनान से बैठक में आकर अपना ट्रंक कारनस पर रखा और पलंग पर पैर फैला दिये।

नीता भी तुरन्त लौट आई—"वाह साहब, वाह ! ठीक रहे। उँगली पकड़ कर पौंहचा भी पकड़ लिया। बैठक खोलदी तो आ भी लेटे, जैसे बाबाजी की चौपाल हो।"

"इसमें झूठ ही क्या है। चौपाल तो है ही, मेरे बाबाजी की न सही तुम्हारे की सही।"

नीता झल्लाई—"उठकर क्यों नहीं बैठते। भाभी आएँगी तो नाराज होंगी। कहेंगी क्यों किसी को घुसा लिया बैठक में ?"

"मुझे डर पड़ा है तुम्हारी भाभी का ? आयें मेरी बला से। मैं तो यों ही पड़ा रहूँगा। कोई आये या जाये।"

"तो श्रीमान् ! यह रेल का डब्बा नहीं है, चाहे जैसे पड़े रहो। यह हमारी बैठक है।"

"तब आपकी बैठक में कैसे पड़ा जाता है, यह बता दीजिये। मैं वैसे ही पड़ जाऊँगा !"

"यहाँ इस तरह पसर कर पड़ने का तुम्हारा हक क्या है ? जाइये मेरी अटेची भी मुझे नहीं चाहिए ; लेकिन पीछा तो छोड़ो मेरा !"

"मैंने कब पकड़ रखा है तुम्हें ? बैठना है बैठ जाओ, वरना भाग जाओ ; मैं लेटा ही हूं। यह रेल गाड़ी नहीं है जहाँ इतना बिगड़ रही थीं।"

"अच्छा जी, हमारे घर पर ही शेर बनते हो ?" नीता ने मुँह बनाया।

"बाहर ही हम कब गीदड़ बनते हैं। देखलो उस दिन तुम दो थीं और मैं अकेला। कौन डरा था तुम से ?"

हारकर नीता ने कहा—"अच्छा-अच्छा, अबतो तुम जाओ। अब

भाभी घर आ जाएँ तब आ जाना। पता नहीं तुम्हें इस बेफिक्री से पड़ा देखकर वह क्या समझें ?"

"मकान तो पं० ज्ञानेश्वर का ही है न ?"

"हाँ।"

"तब मुझे तुम्हारी या तुम्हारी भाभी की कोई परवाह नहीं। लेटा हूँ, लेटा रहूँगा ; तुम चाहे जो कहो या करो मैं निश्चिन्त हूँ।"

नीता तंग आ गई। उसे अपनी भाभी से डर लग रहा था। अतः यह भी नहीं चाहती थी कि कुमार भाग जाये। चाहती इतना थी कि भाभी के सामने आये। अतः गिड़गिड़ाई—"कह तो रही हूं आप तशरीफ ले जाइये और जब भाभी या भाई साहब आएँ, शौक से आइये। उठिये मैं कुण्डा लगाती हूँ।"

सुमित्रा कभी की आ चुकी थी। बहुत देर से नीता और कुमार की बातें सुन रही थी। जब उससे न रहा गया तब उसने एक बर्तन फर्श पर इस तरह डाला जिससे नीता बर्तन गिरने की आवाज सुनकर आ जाये। बर्तन गिरा। नीता अन्दर गई। सुमित्रा ने पूछा—"किससे झगड़ रही हो नीता ! कौन है बैठक में ?"

अनजान-सी बनकर नीता बोली—"मैं क्या जानूँ भाभी कौन है ? बैठक से निकलने का नाम ही नहीं लेता। कहने पर उठने के बजाय अकड़ता है। देखो न मजे से लेट रहा है।"

"तुमने बैठक खोली ही क्यों थी जब कोई नहीं था घर में ?"

सुमित्रा की बात सुनकर नीता ने कहा—"दो घण्टे से टॉय-टॉय कर रहा था, मैं कहाँ खोल रही थी। भैया का नाम ले रहा था यह समझकर मैंने खोल दी कि कोई अपना ही न हो।"

"फिर लगा पता कौन है ?"

नीता ने गर्दन डाली—"मुझे तो कुछ ऐसा लगता है भाभी, शायद वही अटेची वाला है। अटेची ही बदलने चला आया है।"

सुमित्रा के चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। फिर भी बनकर बोली—"अरे वह छोकरा भी तुमसे नहीं भगाया गया। चलो मैं अभी भगाये देती हूँ।" बैठक की ओर बढ़ती हुई सुमित्रा आगे बोली—"लेकिन और कुछ बदलने आया हो या तुमने ही बदलने के लिए बुलाया हो तो मैं न चलूँ ?"

"फिर यही बात भाभी !" नीता केवल इतना ही कह पाई थी कि सुमित्रा बैठक में घुस गई। कुमार को देखकर गम्भीर-सा मुँह बनाकर बोली—"कहिए महाशय ! आज किसीसे मिलना है या किसी से कुछ बदलना है ?"

"जी दोनों ही बातें सम्भव हैं। यों आया तो पं० ज्ञानेश्वरजी के पास था, उन्हीं का मकान है न ?"

"मकान तो उन्हीं का है लेकिन, वह स्वयं तो मौजूद नहीं हैं।"

सुमित्रा का उत्तर सुनकर कुमार बोला—"यह पता मुझे चल चुका है।"

"पता चल चुका है तो फिर इनसे क्यों लड़ रहे थे ? मालूम होता है तुम्हारी वह गाड़ी वाली आदत अभी गई नहीं ?"

"कौनसी आदत ?"

"वही लड़ने-झगड़ने की !"

"यह तो आदत इनकी है। मेरी काहे को होती। उस दिन भी रास्ते भर यह लड़ती आईं और आज भी घण्टे भर से लड़ रही हैं।"

"अभी क्या है, देखना यह जिंदगी भर लड़ेंगी।" यकायक सुमित्रा के मुँह से निकल गया।

"जिंदगी भर लड़ा करें अपने घरवालों से। बेचारी मुझसे काहे को लड़ेंगी।"

कुमार का उत्तर सुनकर सुमित्रा हँसी—"अच्छा अब बेचारी भी हो गई ? ममता और मुहब्बत दोनों साथ-साथ चल रहे हैं और लड़ाई तो महज दिखावा है।"

"इसमें ममता या मुहब्बत की क्या बात है ? भला मुझसे क्या मेरे घर लड़ने आयेंगी ?"

"तुम तो आओगे, जैसे आज आ टपके ? शायद अटेची वापस करने आये हो ?"

"आया ही था किसी काम से, क्यों बतादूँ ।"

"हमसे बताने का काम नहीं है क्या ?"

"नहीं, होता तो बता न देता ।"

"हो तो तुम वही न, जो उस दिन औरतों की तरह सो रहे थे ?"

"हाँ-हाँ वही हूं । करलो क्या करती हो ?"

"शायद आज भी हमारी बैठक रेल का डब्बा समझकर ही पड़े हो कि कोई आज भी आ पड़ेगी मेरे चरणों पर ! मान न मान मैं तेरा मेहमान ! आ लेटे जैसे खेत में गधे लेटते हैं ।"

इस बार कुमार के चेहरे से सारा परिहास हवा हो गया और उसके मुख-मण्डल पर क्रोध का आगमन हुआ । तेजी से बोला—"मुझे नहीं पता था यहाँ वास्ता ही गधों से पड़ेगा ।"

सुमित्रा ने बात काटी—'गधे यहाँ कहाँ हैं ? यों कहो गधियों से वास्ता पड़ेगा ।"

"यह तुम कहो, मैं क्यों कहूँ । मैं तो चला, सँभालो अपना बंगला । बाज आया मैं ऐसी मेहमानदारी से । पहिले पता होता कि भाभी के घर वाले इतने सज्जन हैं तब तो चाहे दुनिया कहती फिर भी यहाँ आने को कदम न रखता ।" कहकर कुमार बिस्तर से उठा और अपना ट्रंक सँभाल लिया । आँखों में आँसू छलछला रहे थे । नीता ने अपना मुँह फेर लिया । आँखों में उसके भी पानी था ।

कुमार के ट्रंक उठाते ही गीता लपकी हुई बैठक में आई—"अरे बस सलहज से हारकर रोकर भाग चले । तुमने तो हमारी भी नाक कटवादी ।" कह कर गीता ने ट्रंक छीन लिया ।

सुमित्रा ने व्यंग्य किया—"खानदान ही इनका सारा रोतड़ों का है । हम तो एक को ही रोने वाला समझते थे ; दूसरा भी ऐसा ही निकला ।"

कुमार ने सुमित्रा को कोई जवाब नहीं दिया । गीता से ट्रंक छीनता हुआ बोला— "बस भाभी, अब मैं यहाँ एक मिनट नहीं रहने का । दो घण्टे से दोनों मेरी बेइज्जती कर रही हैं । एक कहती है—बैठक को रेल का डब्बा समझ लिया है तो दूसरी कहती है—हमारी बैठक बाबाजी की चौपाल समझ ली है । अपनी बैठक को सर पर रखकर नाचो मैं चला ।"

"कह दिया होता, बाबा की चौपाल नहीं ससुराल की चौपाल तो है । तुम अकेले हो गये और ये दो ; कोई बात नहीं अब हम भी दो हो गये ।" गीता ने कुमार का हाथ पकड़ कर बैठा लिया ।

"यह गाड़ी में भी मुझसे लड़ी थीं दोनों । वही तो हैं जो मेरी अटेची बदल लाई थीं ।"

इस बार नीता का मुँह खुला—"पहले दिन तो मैं अकेली ही थी । भाभी तो दूसरे दिन थीं । रही अटेची बदलने की बात, तुमने बदलने को ही रखदी होगी मेरी अटेची के पास ।"

"हाँ जी, मैंने तो रख ही दी थी ।" कुमार का गुस्सा वैसे ही था—"ढाई आने की अटेची लिए फिर रही थीं, उससे मैं अपनी बदलता !" कुमार फिर कह गया ।

"लिखा दो बढ़िया बुरी लगती है तो ?" कहने को तो नीता कह गई लेकिन कहकर खुद ही लजा गई ।

सुमित्रा ने ठहाका लगाया—"शाबाश, मार लिया मोर्चा ! जवाब

हो तो ऐसा हो।" फिर कुमार की ओर मुख करके बोली—"क्यों लिवा रहे हो ? अरे हाँ तो भर लो, पैसे हमीं दे देंगे।"

"लिवा देंगे।" कुमार के मुँह से निकल गया।

"एक नहीं दो, दो नहीं चार। कोई तुमसे झेंपने वाले हैं हम लोग।" गीता बोली।

"हाँ-हाँ, अब क्यों झेंपोगी। अब तो एक और झेंपू मिल गये। एक-एक मिलकर दो हो गये।" थोड़ा रुककर सुमित्रा ने फिर कहा—"तीसरे को भी बुला लो। तब सबको एक साथ सुलटेंगे।"

"पहिले दो को तो सुलट लो। अकेले को तंग कर दिया। अब खोलो मुँह ?"

"तुम क्या हमारी पूँछ उखाड़ोगी ? तुम न आतीं तो तुम्हारे ये शेर तो स्टेशन तक ही रोते जाते। चल तो दिये थे जनाब रोते-रोते।"

कुमार बोला—"रोओ तुम, मैं क्यों रोता ?"

"शीशा लाऊँ ? दिखाऊँ कौन रो रहा था ? बड़ी मुश्किल से आँसू पोंछे थे लल्ला के भाभी ने।"

"तुम तो भाभी सबसे ऐसे ही बातें किया करती हो। हर समय तो दिल्लगी अच्छी नहीं।" काफी देर बाद फिर नीता का मुँह खुला।

सुमित्रा हँस पड़ी—"अच्छा तुम भी फिसलीं। बहिन का खयाल आया या जीजा का ?"

"आ ही गया किसी का, तुम्हें क्या ?"

सुमित्रा नीता के जवाब से हँसती रही—"हो बड़ी चार सौ बीस दोनों बहिन ! देखा अपने आप तो दो दिन तक गाड़ी में लड़ीं; दो घण्टे से यहाँ चख-चख लगा रखी है। बैठक भी नहीं खोली और जब हम मदद को आये तो कूदकर उधर जा मिलीं।"

"मिलें ना तुम्हें क्यों बुरा लगता है ?"

"बुरा लगे हमारे दुश्मनों को । कहो तो अभी कोई पंडित बुलाऊँ ? या पण्डित भी बना लो अपनी बहिन को ।"

"किस लिए बना लें ?"

"भाँवरें डलवाने को ?" सुमित्रा हँसती-हँसती पलंग पर लेट गई ।

गीता ने झिड़का—"अब बकवास ही करती रहोगी या खाने-पीने का ढंग भी करोगी कुछ ?"

सुमित्रा लेटे-लेटे बोली—"खाने-पीने का ढंग करो तुम । तुम्हारा देवर है या करे तुम्हारी बहिन, जिसके ये कुछ लगते हैं या लगेंगे, जिसे इन पर दया भी आ रही है । भला मैं मुफ्त में क्यों हाथ जलाऊँ?"

सुमित्रा की बहक जारी रही—"कोई कम्बल उढ़ाये, खींचे, अटेची उड़ाकर लाये और जाने किस-किस तरह की मुहब्बत जताती फिरे ! खातिर के लिये रह गई सुमित्रा । सो सुमित्रा तो एक इंच भी यहाँ से टलने वाली नहीं ।"

सुमित्रा को टलती न देखकर गीता ने नीता से कहा—"अरी जा तू पहले चाय बना ला । खाना तैयार करने मैं आती हूँ ।"

सुमित्रा ने हँसकर कहा—"हक ही सेवा करने का नीता का है । चाय बना लायेगी तो बुरा क्या करेगी ?"

नीता सुमित्रा को कोई जवाब न देकर चाय बनाने के लिये चल दी । नीता को जाती देखकर सुमित्रा ने कहा—"दो प्याले हमारे लिए भी बना लाना ?" दरवाजे से बाहर जाकर नीता ने सुमित्रा को अंगूठा दिखाया । सुमित्रा ने पूछा—"यह बहिन को दिखा रही हो या हमारे ननदोई को ?"

"तुम्हें-तुम्हें !" नीता ने वहीं से कहा ।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हाँ-हाँ, अब चलती बार हमें तो अँगूठा दिखाओगी ही ।"

नीता के चले जाने के बाद सुमित्रा ने कुमार को फिर छेड़ा—

"तुम निकले बड़े उस्ताद, और कुछ हाथ न लगा तो साली की अटेची ही बदल ली। अरे हम तो अटेची वाली को ही तुम्हें दे देते।"

कुमार बोला—"यह तो उन्होंने ही बदली थी। उतरीं तो पहले तुम्हीं थीं स्टेशन पर मुझ से पहिले।"

"खैर छोड़ो इन बातों को; ज्यादती मीता की थी। हमसे जो गलती हुई, माफ करो। पता ही हमें क्या था। पता होता तो तुम्हें घर न खींच लाते?"

"और जब पता चल गया, तभी तुमने कौनसी कसर छोड़ दी?" कुमार ने पूछा।

सुमित्रा बोली—"वह तो दिल्लगी करने का हमारा हक था। तुम क्या भाग सकते थे। दो कदम भी न जाने देते। लेकिन तुम कच्चे निकले; रो पड़े।"

"दोनों ही सिर हो गईं तो क्या करता?"

सुमित्रा ने बताया—"वास्तव में मीता को तो पता ही नहीं था। हमें तुम्हारी भाभी ने बता दिया था। इसी लिये वह बैठक नहीं खोल रही थी।"

"क्या बता दिया था भाभी ने?" आश्चर्य से कुमार ने पूछा।

गीता ने कहा—"पहले तो मैंने अटेची ही पहचान ली थी। फिर अटेची की सारी चीजें भी पहचान लीं।"

"तुम बड़ी वैसी हो भाभी! वहीं तुमने क्यों नहीं बताया?" कुमार ने पूछा।

"फिर यह आनन्द देखने को कहाँ मिलता?"

"लेकिन मैं तो अटेची लाया ही नहीं भाभी?" कुमार बोला।

गीता के बोलने से पहले ही सुमित्रा बोल उठी—"अच्छा किया फिर भी तो ले जानी ही पड़ती। तुम तो खुद ही समझदार हो।"

तभी मीता चाय लेकर आगई। मीता को देखकर सुमित्रा ने फिर

चुटकी ली—"बड़ी फुर्ती से बना लाईं आज तो हम कहते तो लातीं शाम तक बना कर। लेकिन कहीं गाड़ी वाली बात मत कर देना यहाँ भी ?"

"गाड़ी वाली बात क्या ?" नीता ने पूछा।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"कभी चाय का प्याला सामने रख कर खींच लो पीने से पहले ही ?"

"तुम बड़ी वैसी हो भाभी !" कहकर नीता चलने लगी। सुमित्रा ने हाथ पकड़ लिया—"बनायेंगे क्या हम ? अरे अपने हाथ से ही बनाकर पिलाती भी जाओ।"

हाथ छुड़ाकर नीता भाग गई। नीता के बाद सुमित्रा भी चली गई। बाद में गीता ने घर की राजी-खुशी पूछी। कुमार को रह-रहकर अंगूठी की चिन्ता सता रही थी। उसने अंगूठी वाली ऊँगली को दुबका रखा था। सुमित्रा के जाने के बाद गीता से बोला—"भाभी यह अंगूठी मैं अटेची में से निकाल लाया था, लो तुम रखलो। नहीं तो कोई देख लेगा ?"

गीता ने कह दिया—"देखा जायेगा, अब पहने रहो।"

गीता आश्वासन देकर चली तो गई लेकिन कुमार का दिल न माना उसने अंगूठी उतार कर कोट की जेब में डाल ली।

दूसरे दिन नीता सवेरे बैठक में झाड़ू देने आयी। कुमार किसी किताब के पन्ने पलट रहा था। नीता ने कहा—"लाओ बिस्तर झाड़ दूँ पहले।"

कुमार बोला—"मैं झाड़ लूँगा, आप क्यों कष्ट उठाती हैं।"

"कष्ट काहे का है। रोज भी तो घर की सफाई करती हूं।"

"तुमसे डर लगता है क्योंकि तुम्हारा गुस्सा खराब है।"

"हमें क्या पता था आप हैं। जब पता ही न हो तो कोई क्या करे ?"

"तब लड़े ?"

नीता हँस पड़ी। बोली—"उस दिन मैं कुछ गलत समझ गई थी। इसलिए ऐसा हुआ। अब माफी माँगती हूँ।" कहकर नीता ने इधर-उधर देखकर हाथ जोड़े। बदले में कुमार ने भी हाथ जोड़े—"माफी तो मैं भी माँगता हूं।"

कुमार के हाथ जोड़ते ही नीता चौंक गई। कुमार ने पूछा—"क्या हुआ ?"

नीता ने घबराये स्वर में पूछा—"तुम्हारी अंगूठी कहाँ गई ?"

कुमार बनते हुए बोला—"मेरे पास कहाँ थी अंगूठी ?"

नीता बोली—"थी, मेरी आँखों को धोखा नहीं दे सकते। उठो बिस्तर झाड़कर देखूँ।"

कुमार ने बचने का कोई उपाय न देखकर कहा—"वह तुम्हारी थी। मैंने डर कर उतार दी है। कोट की जेब में पड़ी है।" कहकर वह उठा और कोट की जेब से अंगूठी निकाल कर नीता के हाथ पर रखकर बोला—"लो अपनी अमानत !"

नीता ने गर्दन झुकाली—"यह अब तुम्हारी है, तुम्हीं पहन लो। तुम्हारी हो चुकी है—लाओ मैं पहना दूँ।" कह कर नीता ने काँपते हाथों से कुमार की उंगली में अंगूठी पहना दी।

कुमार अंगूठी पहनकर बोला—"देखना, फिर कहीं कम्बल की तरह खींच मत लेना ?"

नीता ने कहा—"औरतों का पार्ट अदा नहीं करोगे तो कोई काहे को खींचेगा।"

"मर्दों का पार्ट अदा करना सिखा दो न ?" सुमित्रा ने बैठक में आते हुए नीता के अंतिम शब्द सुन लिये थे।

नीता झेंप गई। झेंपते हुए बोली—"हाँ सिखा देंगे यहाँ रहे तो कुछ दिन।"

सुमित्रा ने फिर चुटकी ली—"यहाँ न रहेंगे तो वहीं जाकर सिखा देना।"

"वहाँ तुम चली जाना।"

सुमित्रा ने हँसकर कहा—"इन्हें ट्रेनिंग देना तो बहिन तुम्हारे जिम्मे ही डाला गया है, हम तो महज आप लोगों के दर्शक हैं।"

कुमार अब तक चुप था। बोला—"हमें तो जिसकी पढ़ाई अच्छी लगेगी उसी से पढ़ेंगे।"

सुमित्रा ने कहा—"अब इन दोनों बहिनों से अच्छा पढ़ाना तो और किसी को आता ही नहीं।" सुमित्रा कहती रही—"रही हमारी बात, हम तो चन्द सालों से इनके भाई साहब को पढ़ा रहे हैं। लेकिन हमारी पढ़ाई और उनकी रटाई का यह हाल है कि इम्तहान के वक्त पास होना तो अलग रहा, फेल होने लायक भी नम्बर नहीं लाते वे कभी।"

"यह मास्टर की कमी है या विद्यार्थी की?" कुमार ने हँसकर पूछा।

सुमित्रा बोली—"मास्टर की ही समझो।"

"क्या हो रहा है जी बातूनी?" गीता भी बैठक में आ रही थी।

"सुमित्रा तत्काल बोल उठी—"आओ जी नम्बर एक!"

सुमित्रा के इस नये खिताब को सुनकर गीता हँस पड़ी। बोली—"और नम्बर दो कौन हैं भाभी?"

"तुम्हारी बहिन! कैसे लेटना चाहिये या कैसे बैठना चाहिये, अभी से ट्रेनिंग दे रही हैं।"

"तुम बहुत बुरी हो भाभी!" कहकर नीता चली गई।"

धीरे-धीरे नीता और कुमार का हेल-मेल प्रेम में परिणित होने लगा। जब भी नीता मौका देखती, बैठक में बेधड़क चली आती और बातों में यह भी भूल जाती कि क्या समय हो चुका है। नीता को सुमित्रा और गीता जान-बूझकर भी अवसर दे दिया करती थीं क्योंकि कुमार को बुलाने का उद्देश्य यही था कि दोनों एक-दूसरे को समझ लें।"

एक दिन नीता को अकेली पा कर सुमित्रा ने छेड़ा—"क्यों, आजकल तो दिन सोने के और रातें चाँदी की हो रही हैं न ?"

सुमित्रा की बात पर नीता को हँसी आ गई। बोली—"तुम्हें जलन क्यों होती है ?"

सुमित्रा ने भी हँसकर जवाब दिया—"हम तो प्रसाद बाँटने वाले हैं अपनी खुशी का।"

नीता ने कहा—"तब देर क्या है, बाँट दो न ?"

"बस चन्द दिन और सब्र करलो।"

"जब भी देखो भाभी तुम्हें तो और कुछ काम ही नहीं रह गया। ऐसी दिल्लगी मुझे अच्छी नहीं लगती।" नीता ने मुँह बनाया।

सुमित्रा दोनों हाथ पकड़कर बोली—"तब ट्रेनिंग कैसे दी जायेगी ?"

गीता को आती देखकर सुमित्रा ने नीता के हाथ छोड़ दिये। नीता चली गई। गीता ने पूछा—"क्या बात थी ? क्यों परेशान कर रही थीं नीता को ?"

सुमित्रा ने हैरानी की मुद्रा में कहा—"अजीब बात है। यह तुम्हारा बहिन तो तुमसे भी ज्यादा उस्ताद हो गई।"

"कैसे ?" गीता ने पूछा।

सुमित्रा ने कहा—"वैसे तो जब देखो तब दोनों की घुटती रहती है और जब हम कुछ पूछते हैं तो साफ मुकर जाती है।"

"तब क्या इसका यह मतलब है कि नीता को कुमार पसंद नहीं ?" गीता ने घबराकर पूछा।

सुमित्रा बोली—"पसंद क्यों नहीं, पसंद है। लेकिन मुकरने की आदत है—बनती है।"

"यह कैसे कहा जा सकता है। पसन्द होता तो चुप न हो जाती। उसका चुप न रहना ही नापसन्दी का सबूत है?"

सुमित्रा ने प्रतिवाद किया—"पसन्द न होता तो अटेची में से फोटू कहाँ जाता? उसे तो कलेजे से लगाये फिरती है। दूसरे जब देखो तब बैठक में ही खड़ी रहती है।"

गीता गम्भीर हो गई—'बैठक की तो बातें छोड़ो भाभी, जीजा-साली हैं; हँसी-दिल्लगी का रिश्ता है। अलबत्ता फोटू से कुछ सन्देह हो सकता है। अन्यथा सब परिश्रम बेकार।" कुछ रुक कर गीता ने फिर कहा—"हमारे जाने के बाद यदि नीता का रुख ऐसा ही देखो तो संकेत कर देना क्योंकि जबर्दस्ती की शादियों के दिन गये। अब तो शादी एक-दूसरे की पसन्द पर निर्भर है।"

सुमित्रा अपनी बात पर जमी थी। बोली—"बेफिक्र रहो इस खुशी से! और मैं बताऊँ। सुमित्रा कहती रही—"कल मैंने अपनी आखों से अंगूठी पहनाते देखा है कुमार को।"

गीता सकपकाई—"अंगूठी तो वह पहन कर आया था?"

सुमित्रा बोली—"उतार कर रखली होगी।"

गीता को कुछ याद आया—"हाँ उसने मुझ से कहा था कि भाभी नीता की अंगूठी ले आया हूँ—उतारे देता हूँ। मैंने तो मना किया था, लेकिन फिर डरकर उतार ली होगी और नीता ने देख लिया होगा?"

"शायद ऐसा ही हुआ है।" सुमित्रा की बात सुनकर गीता ने कहा—"तब इधर से तो कोई डर नहीं, अब उधर की नब्ज और देखनी है?"

सुमित्रा हँस पड़ी—"उधर की नब्जों का तो तुम्हें पहिले से ही पता होगा?"

गीता ने असमंजस से कहा—"कुछ नहीं कहा जा सकता। आजकल के लड़के-लड़कियों के दिल में और मुँह में और?" कुछ शाश्वत होकर गीता ने कहा—"अच्छा तुम एक को तो तैयार करो; मैं दूसरे को मजबूत करती हूँ।"

तीसरे दिन जब नीता बैठक में आयी, धीरे-से कुमार बोला—"बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

धीरे-से नीता बोली—"एक क्यों चाहते हो, जितनी बातों को दिल चाहे, कहो।"

कुमार ने गर्दन उठाकर नीता की ओर देखा। नीता ने गर्दन झुकाली।

"एक चीज मांगूँ तो दे सकोगी?" धीरे से कुमार ने पूछा।

नीता ने गर्दन हिलादी—"एक नहीं दो माँगिये।"

कुमार ने कहा—"अपना एक चित्र दे दो न हमें। कल हमारा जाने का इरादा है। कई दिन हो गये तुम्हारी रोटियाँ तोड़ते-तोड़ते। मेहमान का ज्यादा दिन टिकाना या टिकना ठीक नहीं।"

नीता बोली—"मैं तो अभी नहीं जाने दूँगी।"

"तो कब जाने दोगी?"

"जब हमारा जी चाहेगा।"

"लेकिन नीता, वह सब लोग क्या कहेंगे। उन्होंने तो जल्दी लौट आने को कहा था।"

"उनका इतना डर है, हमारा कुछ भी नहीं?"

कुमार हँस पड़ा—"तुम्हारा डर तो था, लेकिन तुमने खुद ही दूर कर दिया?·········फोटू की बात तो बताओ उसके लिए तुमने चुप्पी साध ली?"

नीता गर्दन लटकाये ही बोली—"चुप्पी कहाँ साध ली। तुमने तो जाने का नाम लेकर एकदम गोली-सी मार दी। रही फोटू की बात, एक छोटा-सा है। परीक्षा के दिनों में खिचवाया था, तुम्हें क्या अच्छा लगेगा ?"

"लाओ तो सही, बहाना क्यों बना रही हो।"

नीता ने फोटू लाकर कुमार को दे दिया। कुछ देर तो वह देखता रहा। बाद में खिन्न मनसे बोला—'ले लो अपना चित्र नीता ! मेरे पास बदले में देने के लिए तो कुछ है ही नहीं। एक चीज तो मैं पहले ही ले चुका हूँ।"

शान्तस्वर में नीता बोली—"मैं बदला पहिले ही ले चुकी।"

"कैसे ?" कुमार ने पूछा।

नीता ने अपनी किताब ला कर, कुमार को दी और उसे उसका चित्र निकाल कर दिखाया—"जिस दिन आप आये थे, आप ने मुझे बहुत परेशान किया। तुम्हारा एक रूप तो मुझे बैठक में तंग कर रहा था और दूसरा बाहर द्वार पर खड़ा कर रहा था ?"

"नीता ?" कुमार के मुँह से निकला। नीता ने आँखें ऊपर उठायीं, बाद में झुका लीं। धीरे-से भर्राये गले से पूछा—"अब कब आओगे ? वायदा करके जाओ।"

"बहुत जल्दी और बहुत से आदमियों के साथ ?" सुमित्रा कहती हुई कमरे में आईं।

नीता भाग चली। सुमित्रा ने आवाज दी—"अजी हम तो चले हमें देखकर क्यों भागीं ?"

नीता कहती चली गई—"तुम्हारा कोई डर पड़ा है हमारी मर्जी आई चल दिये।"

अन्त में वह दिन भी आया, जिस दिन वापिसी के लिए कुमार और गीता के बिस्तर बँधने शुरू हुए। नीता के चेहरे पर उदासी

छा गई। गीता के पास पहुँच कर कठिनाई से बोली—"जा रही हो दीदी ?"

नीता के सर पर हाथ रख कर गीता ने भरे स्वर में कहा—"हाँ अनी, अब काफी दिन हो गये फिर आयेंगे जल्दी। तुम भी चलो न हमारे साथ ?"

"भाभी अकेली रह जायेंगी, जब भैया आ जायेंगे, तब आऊँगी।"

नीता का मन भारी होता जा रहा था। गीता समझ रही थी। सुमित्रा का मन भी भारी था। ताँगा आया। सामान लादा गया और दोनों देवर-भाभी ताँगे में बैठने को चले। कुमार ने सुमित्रा को नमस्कार किया। सुमित्रा ने आशीर्वाद दिया। सुमित्रा की निगाह बचाकर नीता ने हाथ जोड़े—उसकी दोनों आँखें सजल थीं। कुमार की आँखों में भी पानी आ गया। रुँधे स्वर में सुमित्रा ने कहा—"अभी तुम्हारी छुट्टियाँ काफी हैं, गीता को छोड़कर फिर आना।"

कुमार ने गर्दन हिलादी।

गीता और कुमार को लेकर टाँगा स्टेशन की ओर चल दिया। बैठक की दीवार से अपने शरीर को टिकाये टकटकी बाँधे नीता जाते टाँगे को देखती रही जब तक कि वह आँखों से ओझल न हो गया।

ध्यान-मग्न मुद्रा में खड़ीनीता का हाथ पकड़कर सुमित्रा ने कहा—"चलो अनी, मन भारी मत करो। तुम्हारे भैया के आने पर तुम फिर गीता से मिल आना।"

कुमार और नीता के परस्पर हास-परिहास का कनखियों से नित्य अवलोकन कर गीता इस निश्चय पर पहुँची चुकी थी कि नीता के नित-सम्पर्क से कुमार के हृदय में निश्चय ही कोई ऐसा-वैसा अंकुर उग

आया होगा। अतः उस अंकुर को टटोलने के लिए गीता ने कुमार को छेड़ा—"क्यों लल्ला, नीता कैसी लगी तुम्हें ?"

कुमार सधे-स्वर में ग्लोब की तरह गर्दन गीता की ओर घुमाकर बोला—"यह भी कोई पूछने की बात है भाभी ! वैसी ही लगी, जैसे एक आदमी को दूसरा आदमी लगता है।" इतना कहकर कुमार ने अपनी गर्दन खिड़की से बाहर सरका दी।

कुमार के इस शुद्ध सात्विक उत्तर से पहले तो गीता सकपका गई। फिर साहस समेट कर बोली—"लल्ला इस दृष्टि से नहीं उस दृष्टि से बताओ जिस दृष्टि से एक युवक को कोई युवती ?"

गीता के कहते ही कुमार ने फिर वही सूफियाना जवाब गीता को थमाया—"यह दृष्टियाँ तो तुम्हें ही मुबारक हों। यहाँ तो भाभी—'सूरदास की काली कमलिया, चढ़े न दूजो रंग'।"

कुमार के इस लाजवाब उत्तर से गीता के विश्वास पर ओस पड़ गई। हताश होकर बोली—"हमें तो अब सभी दृष्टियाँ मुबारक हैं लल्ला ! लेकिन चाहते थे कि तुम्हें भी यह मुबारक हो जायें।"

अपने मन के लड्डुओं को ढक कर कुमार बोला—"हाँ जी, तुम लोगों को तो इन बातों के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं कभी। तुम लोगों का दायरा तो केवल शादी और सन्तान तक ही सीमित है।" अपने वक्तव्य की गाड़ी कुमार आगे बढ़ाता गया—'तुम लोगों की शिक्षा ही 'श' से प्रारम्भ होती है और 'स' पर जाकर समाप्त हो जाती है।" इतना कहकर कुमार ने इस तरह से एक लम्बी साँस खींची जिस तरह से कोई व्यक्ति अत्याचार की किसी घटना को देखकर खींचता है।

दो-चार साँस इसी तरह से उलटे-सीधे खींचने के बाद कुमार बोला—"तुम्हें क्या पता भाभी, आज देश की क्या दशा है। गरीबी, भ्रष्टाचार और बेकारी किस तरह जनता-जनार्दन की गर्दन पर सवार है। युवक और युवतियों का कितना पतन हो चुका है। नगरों के भवन

तेजी से शृंगारशालाएँ बनते जा रहे हैं। बाजारों में विलासिता बिखर रही है। बापू का अछूतोद्धार का कार्य अभी तक अधूरा पड़ा है और इधर विद्यार्थी कालिजों में अभिनेत्रियों के अंगों पर रिसर्च कर रहे हैं।" कुमार कहता ही गया—"एक ओर देश की यह दशा है और दूसरी ओर आप लोगों के ज्ञान में इस रोग का निदान या इस समस्या का समाधान है—शादी, केवल शादी! हर युवक की शादी, यानी देशोद्धार के लिए पंचवर्षीय योजनाओं से भी अधिक यदि कोई चीज है, तो शादी है! इस अद्भुत निदान अथवा समस्या-समाधान के सम्मिश्रण से क्या उत्पन्न होता है, जानती हो?" कुमार ने खिड़की से गर्दन अन्दर लाकर आँखें चढ़ाकर इस तरह गीता से प्रश्न किया जिस तरह से बच्चे को डाँटते हुए कोई बाप करता है या छात्र से कोई मास्टर करता है।

गीता भरे-मन से कुमार की भाषणमाला सुन रही थी। विद्वान् देवर ने देश की दारुण दशा का चित्र जिस प्रभावशाली ढंग से गीता के सामने उपस्थित किया था, उसे सुनकर गीता को सचमुच ही यह विश्वास हो चला था कि देश की सारी समस्याओं को उत्पन्न करने वाली वास्तव में नारियाँ ही हैं। जिनके उद्धार का भार अब हमारे देवर ने अपने सर पर ले लिया है। अतः कुमार के प्रश्न पर जवाब के बजाय गीता की गर्दन अपराधियों की तरह झुक गई।

गीता को चुप देखकर कुमार फिर बोला—"हाँ तो भाभी, उस निदान और समाधान के सम्मिश्रण से एक आश्चर्यजनक व्यवधान उत्पन्न होता है। नहीं-नहीं अनेक व्यवधान उत्पन्न होते हैं।

"अपने दातून सदृश्य शरीरों पर इन्हीं व्यवधानों को लादे, यत्र-तत्र आज कथित युवक युवतियों को आप देख सकती हो और इतने पर भी यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। कड़ी-से कड़ी मिलती चली जाती है जो बड़ी जंजीर बनकर देश का गला घोटने के काम आती है।"

कुमार की कथा को सुन सुन कर गीता के हृदय में कुमार के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न होती जा रही थी और अब वह कुमार को ओर इस दृष्टि से देख रही थी जिस दृष्टि से कोई भगतिन किसी कथावाचक पंडित को देखती है। परन्तु फिर भी अपनी रही-सही शंका के समाधानार्थं उसने नया तीर अपने तरकस से निकाल कर कुमार पर चलाया। बोली—"तब तो लल्ला, मैंने भाभी से इंकार करके ठीक ही किया। कह आई हूँ कि नीना की शादी कहीं और ही करदो। लड़की जवान हो चली है। कुमार से आशा मत रखो।" गीता कहती रही—"ठीक रही न? इधर लड़की जवान हो गई। उधर तुम्हारा समाज-सुधार का कार्य अभी आरम्भ भी नहीं हुआ है?"

गीता के कथन से कुमार का कलेजा काँप गया। किन्तु अपने को संभाल कर मरे मन से बोला—"हाँ भाभी, ठीक ही किया।"

इस उत्तर से गीता को और विश्वास हो गया कि निश्चय ही कुमार का ध्यान समाजसुधार की ओर है न कि शादी की ओर। अवश्य ही यह एक-न-एक दिन महान् सुधारक बनेगा। अतः शादी जैसे प्रसंग से उसके विचारों को ठेस पहुँचाना ठीक नहीं।

गीता चुप हो गई। कुमार के मनमें तूफान उठ खड़ा हुआ। सोचने लगा—"कितनी बेवकूफी कर डाली मैंने समाज सुधारक का ढोंग रच कर? सारा बना-बनाया खेल बिगड़ गया।" कुमार का सोचना जारी रहा—"अहा, कितनी सुन्दर है नीना! कितना मिठास है उसकी वाणी में, बम्बइया आम से भी ज्यादा। बोलती है तो मुख से फूल-पत्ते झड़ते हैं। हँसती है तो फुलझड़ियाँ-सी छूटती हैं। हाय राम, कैसे पहनाई थी उसने यह अंगूठी अपने हाथों से। अब क्या बनेगा इसका?"

नीना के बारे में सोचकर कुमार ने गीता के बारे में सोचना शुरू किया—"अरे ये भाभियाँ बड़ी मक्कार होती हैं। अपने आप तो महीना दो-महीना भी पीहर में नहीं रुक पाईं। मुश्किल से कुल दस दिन

मायके रही होंगी और पन्द्रह चिट्ठियाँ भाई साहब को भेजी होंगी। और हमारे मामले में इतनी जल्दी पड़ गयी कि चटाक-पटाक ही फैसला कर दिया। कम-से-कम घर तो जिक्र करतीं; तभी फैसला करतीं; स्वार्थी कहीं की ?"

कुमार का क्लेश बढ़ता गया। उसकी मुखाकृति विकृति में बदलने लगी। उल्टी-सीधी साँसों का दौर जारी रहा। कुमार की आकृति और साँसों का अजीब दौर देखकर गीता ने समझा, लल्ला पर वास्तव में समाज-सुधार और हरिजनोद्धार का भूत सवार है। उसके इस पवित्र अनुष्ठान में विवाह करके बाधा देना गम्भीर पाप करना है। अतः गीता चुपचाप गर्दन डाले बैठी रही। कुमार इस आशा से कभी-कभी गीता की ओर देख लेता था कि शायद भाभी फिर शादी का प्रसंग उठायें और इस बार वह मौका मैं हाथ से न जाने दूँ। इसी आशा में सारी यात्री समाप्त हो गई और स्टेशन आ गया।

घर जा कर कुमार की दशा सूफियाना के स्थान पर फकीराना हो गई। चुनाव में पिटे पहलवान की तरह उसका शरीर शिथिल पड़ने लगा। चौथे दिन गीता और राजरानी की भेंट हुई। राजरानी ने गीता से पूछा—"कुमार जब से आया है, तब से गम्भीर-सा बना रहता है—कहीं नया रोग तो नहीं लग गया ?"

गीता बोली—"रोग तो नहीं लगा, बल्कि कई गुण एक साथ उसके हृदय में उभर आये हैं।"

"अर्थात् ?"

"यही समाज-सेवा, देश-सेवा और हरिजनोद्धार आदि के !"

"और शादी का क्या रहा ?" अचकचाकर राजरानी ने पूछा।

गीता बोली—"कैंसिल।"

"क्या नीता इन्हें पसन्द नहीं आई, या नीता ने ही कुछ बेरुखी दिखलाई ?" गीता गम्भीर बन गई—"इनकी माया यही जानें दीदी! यह दोनों ही मक्कार हैं। रोजाना दोनों की बातें घुटती थीं। उसकी

अंगूठी पहने भी जनाब संन्यासियों जैसी बातें करते हैं और उधर उस लड़की का भी यही रूप रहा । वह इनका फोटू उड़ाये फिरती है पर जब भाभी ने एक दिन छेड़ा तो मीराबाई की वाणी में बोली—'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ।' लेकिन गनीमत है कि भाभी की चालाकी से उसकी योगमाया तो साधिका बननेसे पहले ही समाप्त हो गई ; इनकी राम जानें ।"

"उसकी कैसे समाप्ति हुई ?" राजरानी ने उत्सुकता से पूछा ।

गीता ने कहा—"लो पढ़ लो भाभी का यह पत्र, अभी-अभी आया है ।" कहकर गीता ने पत्र राजरानी की ओर सरका दिया ।

राजरानी पढ़कर बोली—"बड़ी ढोंगी निकली । दीवानी और साधिका साथ-साथ ही बनी रही ?"

गीता बोली—"मेरा ख्याल तो यह है कि इन महात्मा का भी यही हाल है, तुम पता तो लगाओ जीजी ?"

"हाँ यह भेद तो मैं चार दिन में खोल दूँगी ।"

"राजरानी का आश्वासन सुनकर गीता ने कहा—"मुझे तो सोलह आने यकीन है जीजी, यहाँ भी ढोल में पोल है ।"

राजरानी गम्भीर हो गई—"अभी क्या कहा जा सकता है गीता । जब तक पूरा विश्वास न हो जाय, तब तक चाहे जैसी कल्पना करलो ।"

गीता अपने विचारों पर दृढ़ रही बोली—"जीजी, मैं यों ही नहीं कह रही । इन लोगों का हास-परिहास मैंने काफी आँखों से देखा है ।

राजरानी फिर कुछ सोचकर बोली—'क्यों गीता, आखिर तूने भी तो उसके दिल की थाह अच्छी तरह निकाली होती आखिर इतने रास्ते भर दोनों चुपचाप ही रहे ?"

गीता हँस पड़ी । बोली—"शुरुआत तो की थी दीदी, लेकिन उसने दो चार भाषण इतने बढ़िया दिये कि मैंने तो सर झुका कर

उसे अपना गुरु मान लिया। उसने यहाँ तक कह दिया शादी और सन्तान का शौक तो तुम्हें मुबारक हो भाभी !" आगे गीता ने आरम्भ से अन्ततक गाड़ी की सारी कहानी ज्यों-की-त्यों सुनाई।

राजरानी ने सुनकर कहा—"अच्छा मैं देखूँगी माजरा क्या है।"

कुछ देर की बात चीत के बाद गीता चली गई। लेकिन उसी रात को राजेन्द्र ने भी अपना वही संदेह राजरानी पर प्रकट किया। बोले—"राज, जब से कुमार गीता के मायके से लौटा है, तब से बहुत गुमसुम रहता है। मामला क्या है ?"

राजरानी ने उत्तर दिया—"अजीब मामला है। लगता तो मुझे भी ऐसा है, लेकिन राज मेरी समझ में भी नहीं आता।"

"अच्छा उस बारे में क्या हुआ जिसके लिए इसे भेजा गया था। लगा पता कुछ, लड़की इसे पसन्द है ?"

"राम जाने या कुमार जाने—तीसरा कोई नहीं जान सकता। गीता तो कहती है कि मीता को देखकर उसके ऊपर समाज-सेवा का भूत सवार हो गया है।" बाद में राजरानी गीता की कही कहानी सुनाती रही। राजेन्द्र ध्यान से सुनता रहा। सारी कहानी सुनकर बोला—"समझ गया इस धूर्त पर सेवा का नहीं, मीता का ही भूत सवार हो चुका है और यही इसे रोग है।" राजेन्द्र आगे बोला—"भला यह कैसे मानलूँ कि गीता के मायके जाते ही सारे सुधार इसके सर पर एक साथ चक्कर काटने लगे। अब तक सारे ही सुधार सोये पड़े थे ?"

"निश्चय से तो अब भी कुछ नहीं कहा जा सकता।" राजरानी ने सोचकर जवाब दिया—"हो सकता है किसी घटना को देख कर उसका मन फिर गया हो ?"

राजेन्द्र हँस पड़ा। बोला—"अरे; तुम भी पागल मत बनो। हो सके तो मामले का पता लगाओ। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि दो-चार

दिन में ही सारा भंडाफोड़ कर लोगी। लेकिन, लगता ऐसा है तुम भी उसे अपना गुरु मान बैठी हो?"

राजरानी की बात समझ में आ गई। बोली—"कोशिश करूँगी।"

राजेन्द्र ने रोकते हुए कहा—"सफलता मिलेगी—लिख लो।"

दूसरे दिन राजरानी ने कुमार के घर से निकलते ही उसके कमरे पर छापा मारा। पहिले अल्मारियाँ और किताबें टटोलीं, कुछ नहीं मिला। बाद में तकिया और गद्दा टटोला, वहाँ भी कुछ हाथ नहीं लगा।

इस छापे के बाद राजरानी को यह पक्का विश्वास हो गया कि कुमार वास्तव में गृहस्थआश्रम की ओर न जाकर वानप्रस्थ की ओर बढ़ रहा है। अतः उसी रात को उसने अपना यही मत राजेन्द्र पर फिर प्रकट कर दिया। राजेन्द्र राजरानी की बात सुन कर बोला—"और खोज करो, निराश मत बनो; तभी अपना फैसला सुनाना।"

"मुझे तो उम्मीद है कि मेरा फैसला यही रहेगा।" दृढ़ स्वर में राजरानी ने कहा।

राजेन्द्र ने प्रतिवाद किया—"बदलना पड़ेगा राज!"

"बहू जरा यहाँ आना।" राजरानी के जवाब देने से पहिले ही जानकी की आवाज आई। राजरानी उठकर जानकी के पास उनके कमरे में चली गई। कमरे में पहुँच कर जानकी ने पूछा—"क्यों बहू क्या रहा उस मामले का?" राजरानी के उत्तर देने से पहिले ही जानकी फिर बोली—"मुझे तो बहू दाल में कुछ काला नजर आता है। जब से कुमार वहाँ से लौटा है तब से उसकी आदत ही बदल गई। मुँह उतरा रहता है। न बोलता है, न चालता है?"

"हाँ अम्माजी, लगता तो कुछ ऐसा ही है।"

राजरानी के चुप होने पर जानकी ने पूछा—"क्या लड़की इसे पसन्द नहीं ?"

"यह तो मैंने पूछा नहीं अभी अम्माजी।"

"बहू, तुझे पूछना चाहिये था। ऐसी बातें भाभी ही पूछा करती हैं।"

राजरानी गंभीर होगई—"हाँ अम्माजी, पूछूँगी तो मैं भी; लेकिन पूछूँ तो तब जब वह शादी के लिए तैयार हों।"

"तूने कैसे जाना वह तैयार नहीं है ?"

"गीता कहती थी।" कहकर राजरानी ने अपनी सास को सारी कहानी सुना दी।

यह सब सुनकर जानकी का चेहरा उतर गया। बोली—"बहू ! लड़का घर छोड़कर कहीं संन्यासी न हो जाय ? बहुत से लड़के भागते देखे हैं इसी तरह घर छोड़कर।"

राजरानी चुप रही।

जानकी कहती रही—"बहू ! तेरा देवर है। उसे ठिकाने पर लाना तेरा ही काम है। वह लड़की अच्छी न लगी हो तो और कोई सुन्दर-सी लड़की देखनी चाहिए। लड़का हाथ से न निकल जाय ?"

"अभी ऐसी आशा तो नहीं है अम्माजी ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगी।"

राजरानी के शब्दों से जानकी की जान में जान आई। बोली—"अच्छी बात है, आज मैं भी देखूँगी कि यह पड़ा-पड़ा क्या करता रहता है।"

कुछ देर बाद राजरानी उठकर चली गई। जानकी सोचती रही। बाद में अपनी पूजापाठ में लग गई।

पूजापाठ से निबटकर जानकी को फिर कुमार का ध्यान आया—"लड़का कहीं साधु न बन जाय ?" मन में फिर भय का संचार हुआ और तुरन्त जानकी अपने कमरे से निकल कर कुमार के कमरे की

ओर चल दी।

कुमार को यह पक्का विश्वास हो चुका था कि नीता के साथ शादी अब कोई सहल काम नहीं। ढोंग ने सारा गुड़ गोबर कर दिया। अतः जैसे ही रात के दस बजते वह अपने कमरे में पहुँचता और नीता का चित्र जेब से निकालकर जमीन पर रखे ट्रंक से टिकाकर आराधना शुरू कर देता। जिस समय जानकी कुमार के कमरे की ओर आई उस समय भी वह नीता का चित्र सामने रखे गद्‌गद् स्वर में दिल की भड़ास निकाल रहा था—"नीते! मेरी नीते!! तुम सचमुच उर्वशी हो, रम्भा हो, मेनका हो, सरस्वती हो।"

'सरस्वती' शब्द उसके मुख से जरा जोर से निकला। तभी जानकी ने आवाज दी—"क्या कर रहे हो बेटा!"

अम्मा की आवाज कान में पड़ते ही नीता का सारा प्रेम उसके सर से कूदकर भागा। जल्दी में नीता के चित्र को ट्रंक के नीचे खिसकाकर दरवाजा खोलते हुए बोला—"आओ माताजी आओ! जरा सरस्वती की पूजा कर रहा था।"

पुत्र के मुख से सरस्वती की पूजा का नाम सुनते ही अम्मा का हृदय गद्‌गद् हो गया। अतः उन्होंने पूजापाठ की इस बेला में शादी का प्रसंग उठाया उचित न समझकर कुछ पढ़ाई-लिखाई की बातें करके ही अपना रास्ता लिया।

जानकी के कमरे से जाने के बाद कुमार ने धीरे-से चित्र को ट्रंक के नीचे से निकाला और उसकी धूल झाड़ी। फिर स्वतः बोला—"पता नहीं इस अम्मा को भी आजकल क्या हो गया है? जितनी यह मृत्यु की ओर बढ़ रही है, शायद उतनी ही इसकी नींद इससे दूर भाग रही है। सारी रात जाग कर ही काटती है शायद! बेकार आकर चित्र ही खराब करा गई।"

उसने फिर चित्र निकाल कर सन्दूक पर रखा; लेकिन इस बार नीता का भागा हुआ प्रेम नहीं लौटा। अतः उसने नीता की बजाय

अम्मा और भाभी के बारे में सोचना शुरू किया। कहीं अम्मा नीता के बारे में ही बातचीत करने न आई हों ?

उसके विचारों ने फिर पलटा खाया। नहीं, अम्मा इसलिए नहीं आई थीं। इसलिए तो तब आतीं जब उनसे कोई चर्चा करता ? चर्चा कौन करता भाभी ! यह भाभी भी मतलबपरस्त है। गीता भाभी से भी ज्यादा। उसे इतना सब्र भी नहीं हुआ कि घर चलकर कुछ सलाह-मशवरा करलें तभी कुछ किया जाय। लेकिन कहाँ तुरन्त ही अपनी भाभी से मना कर आई। इन्हें तो बस अपने ही दिल का पता है। दूसरे के दिल का हाल क्या जानें ? कम्बख्त कहीं की।

वह काफी देरतक भाभियों को कोसता रहा। जानकी का मन अपने पुत्र के प्रति प्रसन्न था। वह सीधी राजरानी के पास पहुँची। बोली—"राज बेटा, तेरा देवर तो बिलकुल ऋषि-कुमार है। मैं उसी के कमरे से आ रही हूँ। सरस्वती-पूजा कर रहा था। अतः मैंने पूजापाठ के अवसर पर शादी का प्रसंग छेड़ना उचित नहीं समझा; तू ही बात करना। वैसे भी तेरा ही कहना ठीक रहेगा। पता नहीं बुढ़ापे में मेरे मुँह से कैसा शब्द निकल जाय ?"

जानकी कहती रही—"बहू ! राजेन्द्र तो नास्तिक हो ही गया। कमसे कम तू तो दो घड़ी पूजा कर लिया कर।"

"अच्छा अम्माजी !" कहकर राजरानी ने जानकी को आश्वासन दिया। आश्वासन पाकर जानकी अपने कमरे में चली गई और राजरानी राजेन्द्र के कमरे में।

राजेन्द्र के पास पहुँचकर राजरानी ने बताया—"आज अम्माजी स्वयं ही कुमार से शादी की बातें करने गई थीं लेकिन लल्ला उस समय सरस्वती-पूजा कर रहे थे।"

राजरानी की बातें सुनकर राजेन्द्र हँस पड़ा—"खूब अपना भक्त बनाया है उसने तुम सबको ! लेकिन यह देशभक्ति और समाजसेवा के

बीच में सरस्वती-भक्ति कहाँ से आ टपकी ?"

"मैं क्या जानूँ । मुझे तो केवल इतना पता है कि पढ़ने-लिखने वाले लोग सरस्वती-पूजा ही किया करते हैं ।"

"तुमने यह भी देखा है कि सरस्वती देवी की कैसी मूर्ति है उसके पास ?"

"मुझे क्या पता मैंने उन्हें पूजा करते देखा ही कब है ? हाँ, देखूँगी जरूर कैसी मूर्ति है उनके पास सरस्वती देवी की ।"

"जरूर देखना, साथ ही यह भी सुन लो कि मैंने नीता के साथ उस की शादी के लिए चिट्ठी लिख रखी है । चाहो तो यह शुभ समाचार उसे सुना भी देना ।"

चिट्ठी का नाम सुनते ही राजरानी चौंक गईं । जबान से निकला—"ऐं !"

"हाँ !" राजेन्द्र ने मुस्करा कर कहा—"शादी में जितनी देर होगी सरस्वती-पूजा का वेग उतना ही बढ़ता जायगा ।"

कुछ सोचकर राजरानी बोली—"तुमने गलती की । पता नहीं उनका यह अनुष्ठान कब तक चले ? पूछ तो लेते कमसे कम !"

राजरानी के मुखपर चिंता देखकर राजेन्द्र ने कहा—"यह अनुष्ठान घर में बहू के आने तक ही चला करते हैं । शादी के बाद सारे देवी-देवता अपने आप ही लम्बी छुट्टी पर चल देते हैं । देख लेना हमारी बात सच होती है या नहीं ।"

"यह अपना अनुभव बता रहे हो शायद ?"

दोनों हँस पड़े और हँसते-हँसते बिस्तरों पर निद्रादेवी की अगवानी करने लगे ।

रामायण की घटना के बाद आज पहली बार कुमार कान्ता के घर गया। गीता के मायके जाने का पता कान्ता को चल चुका था। कुछ-कुछ यह भी पता चला था कि गीता अपनी बहिन नीता से कुमार की शादी कराना चाहती है। अतः इसी आशंका से उसका दिल कई दिन से धक्-धक् कर रहा था और वह स्वयं ही कुमार को बुलाने के लिए लालायित थी। उसे स्वयं ही आया देखकर झट बोली—"कहिये पसन्द कर आये बहू ?"

"कैसी बहू भाभी !" कुमार ने अनजान बनकर कहा।

"वही जिसे देखने गये थे।"

"मैं तो गीता भाभी को लिवाने गया था।"

"हमें सब पता है, यह तो एक बहाना था। अब यह बताओ शादी कब हो रही है ?"

"कभी भी नहीं, कर कौन रहा है ?"

कुमार के शब्दों से कान्ता को सन्तोष हुआ। पूछा—"काली है क्या ?"

"हाँ, कुछ साँवली है।"

"तभी गीता तुम्हारे पीछे पड़ी है। भला तुम्हारे अलावा और कौन कल्लो को पसन्द करता ?"

कुमार चुप रहा। कान्ता कहती रही—"लल्ला, यह पढ़ी-लिखी लौंडियाँ बड़ी हरजाई होती हैं। शादी तो इनकी कालेजों में ही हो लेती है। बाद में तो महज नाम ही नाम होता है।"

कुमार अब भी चुप था। कान्ता फिर बोली—"तुम कहीं चक्कर में मत फँस जाना उसके। कोई कुछ भी कहे, तुम हाँ ही मत करना। फिर देखें कौन उस कोयल को तुम्हारे गले में लटकाता है।"

"नहीं भाभी, मैं शादी नहीं करता।"

कान्ता की आशा बलवती हुई। पूछा—"सच ?"

"बिलकुल सच भाभी !"

कान्ता के साँसों में गर्माई आने लगी— "कहो मेरी कसम !"

सहज भाव से कुमार ने कह दिया—"तुम्हारी कसम।"

"रखो मेरे हाथ पर हाथ।" कान्ता ने हाथ पसार दिया।

कुमार ने सहज-स्वभाव से अपना हाथ कान्ता के हाथ पर रख दिया। कान्ता हाथ पकड़कर कुटिल भाव से बोली—"बताओ अगर मैं हाथ न छोड़ूँ तो······?"

"जबर्दस्ती छुड़ा लूँ।"

"देखूँ तुम में कितनी ताकत है।" कहकर कान्ता ने उसका पंजा कस लिया—"छुड़ाओ न······।"

कुमार ने जोर लगा कर हाथ खींचना शुरू किया। हाथ के साथ ही कान्ता खुद खिंच आई'—हाय निर्दयी !' कहकर वह कुमार के ऊपर गिरने वाली ही थी कि लालाजी की किसी से लड़ने जैसी आवाज आई। कान्ता संभलकर चारपाई पर बैठ गई।

किसी से डाँट-डपट कर लालाजी घर में आये। बोले "क्या हो रहा है जी ?"

"अभी कीचक-द्रौपदी-कांड का 'रिहर्सल' हो रहा था।" कान्ता मुँह बनाकर बोली।

लालाजी 'रिहर्सल' का अर्थ न समझकर बोले—"अजी बड़ा दुष्ट था कीचक ! भरी सभा में नंगी करना चाहता था द्रौपदी को।"

धार्मिक विषयों में लालाजी का ज्ञान असाधारण था। बोले—"महाभारत के इस पर्व को बड़े ध्यान से पढ़ना चाहिए। बड़ा ज्ञान भरा है इसमें।"

कान्ता ने लेटे-लेटे ही मुँह फेरकर दाँत किटकिटा कर 'हाँ' की। कुमार अपने घर को चल दिया।

कुमार के जाने के बाद राजरानी ने आज फिर उसके कमरे की तलाशी ली। आज भी कोई सन्देहजनक चीज उसके कमरे से नहीं मिली। उसने सरस्वती की मूर्ति को तलाश करना शुरू किया। बहुत खोज के बाद भी जब उसे कुछ नहीं मिला तो उसे सन्देह हुआ। वह कमरे से बाहर निकल आई और जैसे ही कुमार कान्ता के घर से लौटा वैसे ही राजरानी ने कुमार को चिट्ठी की सूचना दी।

सुनते ही कुमार ने ऐसा मुँह बनाया मानो उसके सर पर किसी ने ढेला मार दिया हो। दो-तीन लम्बी साँसें खींचकर बोला—"बहुत बुरा हुआ भाभी! मेरी देशसेवा और समाजसेवा पर तो उन्होंने पानी ही फेर दिया।"

खिन्न होकर राजरानी बोली—"अच्छी बात है लल्ला! तुम अपने निश्चय पर अडिग रहो। यदि उन्होंने चिट्ठी डाल भी दी होगी तो मैं उनसे इंकारी का तार दिला दूँगी।" कहकर राजरानी कुमार के कमरे से चलदी।

राजरानी को इस तरह जाते देखकर वह घबराया। बोला—"अरे ठहरो तो सही भाभी! जरा सुनो तो सही। तुम पहले मेरी बात तो सुन लो।"

राजरानी रुककर बोली—"हाँ-हाँ, मैं समझ गई तुम्हारी बात।"

"तुम तो सदा उलटा ही समझा करती हो।" कुमार ने नम्र बन कर कहा।

कुमार के इस उत्तर से राजरानी चकराई। कुमार ने फिर कहा—"भाभी, तुम किसी से कुछ मत कहना। क्यों कहकर उल्टे बुरा बनती हो। मैं ही अपना बलिदान करने को तैयार हूँ। जो हो रहा है उसे होने दो। मैं नहीं चाहता अम्मा और भाई साहब को नाराज करूँ।"

'बलिदान' के नाम से राजरानी चौंक गई—"नहीं-नहीं, शादी जाय भाड़ में। मैं तुम्हें आत्महत्या नहीं करने दूँगी। मरे तुम्हारे दुश्मन।

अभी जाकर तार दिलाती हूँ। हमें नहीं करनी है शादी।"

"ऐं···!" कुमार और घबराया। यह तो मामला और उल्टा पड़ा; यह मूर्ख भाभी तो बलिदान का अर्थ ही गलत समझ गई। अतः घबराकर बोला—"न···न बलिदान से मेरा मतलब कुछ ऐसा-वैसा नहीं था। मेरा आशय तो केवल इतना ही था कि पूरी समाजसेवा न कर सकूँगा। खैर, थोड़ी-बहुत ही कर लिया करूँगा।······और भाभी! यदि वह भी न हो सकेगी तो दिल में भावना रखना भी तो देशसेवा के समान ही है। इसके अलावा भाभी, मैं तो माताजी और भाई साहब की आज्ञा भी देशसेवा के समान ही मानता हूँ।"

'बलिदान' की इस नूतन व्याख्या से राजरानी चकराई—"अरे तुम तो हमारे लिए एक पहेली बन गये हो। समझ में नहीं आता कि क्या कहते हो—क्या करना चाहते हो? कभी समाजसेवा का नारा बुलन्द करते हो तो कभी सरस्वती-पूजा शुरू कर देते हो। आज बलिदान पर आ गये।"

कुमार धीरे-से बोला—"मैं तो समझा था भाभी तुम बड़ी समझदार हो; पर तुम तो यों ही रहीं। अरे एक-एक शब्द के व्याकरण में कई-कई अर्थ होते हैं।"

"तब मैं यह समझूँ कि तुम शादी के लिए तैयार हो?"

"मैं कहाँ तैयार हूँ। मुझे तो मार-मार कर मुसलमान बनाया जा रहा है।" दाँत दिखाकर कुमार ने कहा।

"कौन बनाता है? यह तो तुम्हारी मर्जी का सवाल है। कह तो रही हूँ; मैं मना कराये देती हूँ। तुम तो न हाँ कहते हो न ना!"

"अच्छा भाभी तुम्हारी क्या राय है, अपना बलिदान करदूँ?"

"क्यों कर दो। मैं भला ऐसा कब चाहूँगी?"

"मेरा मतलब तुम समझी ही नहीं। अरे मेरा मतलब······"उसने सर खुजलाकर कुछ कहना चाहा।

"तुम्हें तो खुलकर बोलना भी नहीं आता।" राजरानी हँसी।

"अरे तुम्हें चुप्पी का अर्थ ही नहीं आता भाभी !"

"अब आ गया।" राजरानी हँसकर चल दी।

"धन्यवाद।" कुमार के मुख से निकला।

राजरानी के जाने के बाद कुमार की जान में जान आई। दिल उसका अब भी धड़क रहा था कि कहीं भाभी अर्थ का फिर अनर्थ न कर दे। यही सोचता हुआ वह पलंग पर लेट गया।

आज पहली बार उसे कान्ता के विचित्र स्वभाव पर सन्देह हुआ। सोचने लगा—क्या है यह कान्ता भाभी! क्यों इस तरह की भद्दी दिल्लगी मुझसे किया करती हैं। कहीं वह मुझसे ऐसा ही प्रेम तो नहीं करतीं, जैसा मैं नीता से करने लगा हूँ। वह सोचता रहा, और जब लालाजी आते हैं तो भोली बनकर उन्हें झूठमूठ कहकर बहका देती हैं।...... भला शादी करूँगा मैं, उन्हें चिंता ने क्यों सताया? क्यों वह नीता को बुरा कहती हैं? राम-राम, ऐसी भाभी से तो भगवान बचाये।

"चलो लल्ला, खाना खाओ।" राजरानी ने आवाज दी। कुमार की विचारधारा भंग हुई।

वह उठकर गया और खाना खाकर लौट आया। तरह-तरह के विचार उसके मन में उठ रहे थे। खाना खाते समय भी वह चुपचाप ही रहा। राजरानी उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव देख रही थी। उसके दिल में कभी-कभी शंका के भाव आते—कहीं सचमुच यह आत्महत्या न करले।

रात के ग्यारह बजे अपने सारे कामों से निपटकर राजरानी कुमार के कमरे की ओर चलदी। वह इस समय खुशी के मारे फूला हुआ था।

कमरे के किवाड़ यों ही भिड़े हुए थे और सांकल लगाने का उसे ध्यान ही न रहा था।

आज उसने सरस्वती के चित्र को सन्दूक पर टिकाने में खतरा जान कर अपने सीने पर ही लिटा रखा था। साथ-साथ स्तुति भी करता जाता था—

"नीते! तुम उर्वशी हो, मेनका, रम्भा हो, सरस्वती हो।" वह फिर गुनगुनाया—"अरे नहीं, वह तो तुम्हारे आगे कुछ भी नहीं, तुमतो कुछ और ही हो। आज मेरी साधना सफल हुई।"

नीता का चित्र लिये उसे देखदेख वह स्तुति करता रहा। राजरानी दरवाजे की झिरियों से मुख में आँचल दबाये झाँक-झाँक कर इस नई तपस्या का तमाशा देख रही थी। कुमार कहे जा रहा था—'मेरी कम्बल वाली! जब तुम आओगी, तब बताऊँगा तुम्हें पाने के लिए मैंने कितने पापड़ बेले हैं? किस तरह तुम्हारी पूजा करके वक्त काटा है। देवताओं की तरह सदा तुम्हारा सत्कार करता रहा। सरस्वती समझ कर आराधना की है, पूजा की है।"

इस बार जैसे ही उसने अपना दुखड़ा रो कर चित्र को मुँह से लगाया तैसे ही राजरानी की दबी हुई हँसी फूट पड़ी। आँचल मुँह से निकल गया। किवाड़ खोलते हुए बोली—"वाह रे कलयुगी ऋषिकुमार, सरस्वती के आराधक! सारे घरवालों को पागल बना रखा है।"

राजरानी की हँसी कान में पड़ते ही उसने झट चित्र तकिये के नीचे सरका दिया और हड़बड़ा कर पलंग से कूदकर बोला—"क्या बात है भाभी?"

"कुछ नहीं, कोई खास बात नहीं है। लेकिन, यह तो बताओ तुम कर क्या रहे थे इस समय?"

हकला कर कुमार बोला—"कुछ नहीं भाभी, जरा सरस्वती की पूजा के कुछ मंत्र गुनगुना रहा था।"

बाद में उल्टे राजरानी से उसने पूछा—"और तुम ने क्या समझा

था कि मैं स्वप्न में बड़बड़ा रहा हूँ ? अरे, मैं तो जाग रहा था भाभी !"

"लेकिन तुम्हारी वह सरस्वती है कहाँ ?" राजरानी ने बात पकड़ी ।

"दिल में है ।"

"और तो नहीं, कहीं ?" राजरानी ने कुमार के चेहरे पर आँखें गड़ा रखी थीं ।

पहले तो कुमार सकुचाया । बाद में फिर हिम्मत बाँधकर बोला—"नहीं भाभी वह तो मन की कल्पना होती है । किसी की मूर्ति मन में धारण करलो—सिद्धि प्राप्त हो जायेगी ?"

"मैं तो यही समझी थी शायद कोई तस्वीर या मूर्ति होगी तुम्हारे पास सरस्वती की ?"

"अजी नहीं, यहाँ तो खाली बिस्तर है और मैं हूँ । सरस्वती मेरे दिल में है ।"

"और यह क्या है ?" कहकर राजरानी ने तकिये के नीचे छिपे नीता के चित्र को खींच लिया । कुमार झेंप गया ।

चित्र लेकर राजरानी ने उससे पूछा—"यही है न वह सरस्वती तुम्हारी ?"

कुमार ने गर्दन डाल ली । राजरानी चित्र लेकर चलदी । कुमार राजरानी का हाथ पकड़कर दीनभाव से बोला—"भाभी, अब तो तुम्हें सब पता चल ही गया है । क्यों नाहक शर्मिन्दा करती हो ।" कुमार गिड़गिड़ाता रहा—"देखो भाभी, मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूँ, किसी से जिक्र न करना । सरस्वती की इस पूजा को तुम जानो, या मैं । किसी का भेद खोलना अच्छी बात नहीं होती और भाभी के लिये तो देवर का भेद खोलना और भी पाप होता है ?"

राजरानी हँस रही थी । कुमार का गिड़गिड़ाना जारी था—"लाओ इस फोटू का तुम क्या करोगी भाभी ; मुझे ही दे दो । लेकिन

भाभी इस बात को तीसरा आदमी न जानने पाये। गीता भाभी से भी मत बताना। उनसे यही कह देना कि बड़ी मुश्किल से मैंने शादी के लिये कुमार को तैयार किया है।"

राजरानी बोली—"जब तुम्हारा यह हाल था तो ढोंग किस लिये भर रहे थे ?"

कुमार ने जवाब दिया—"भाभी, हिम्मत साथ नहीं दे रही थी। मुँह खोलता था कुछ कहने को, जबान से निकल जाता था कुछ और।"

"कहीं नीता के आने पर भी कुछ का कुछ तुम्हारे मुख से न निकलता रहे। डर तो मुझे इस बात का है।"

झट से कुमार बोला—"भाभी तब भी मामला तुम्हीं सँभालती रहना, मेरी जबान का कुछ भरोसा नहीं। लेकिन अब तो तुम चिट्ठी न भी डाली हो तो डलवा ही दो।"

"यानी अब 'बलिदान' के लिये तैयार हो गये ?"

"अब भी कुछ कसर रह गई क्या भाभी, जब-तब करते तो मैं सूखकर काँटा हो गया ?"

राजरानी फोटू फेंककर हँसती हुई चली गई।

जिस दिन से गीता और कुमार गये, उसी दिन से नीता की उदासी बढ़ती गयी। लेकिन, सुमित्रा जब कुमार के बारे में चर्चा करती तो नीता चिढ़ जाती। अब उसे अकेलापन अधिक प्यारा लगता था। सुमित्रा कहीं जाती और नीता कुमार के चित्र वाली किताब बैठक में लेकर आ जाती। कहती रहती—"आये भी गये भी, मीरा के गोपाल! इससे तो न आते तभी अच्छा था। मेरा चित्र न ले

जाते तो अच्छा था ? मेरी चीजों को ले जाकर दुःखी करने को छोड़ गये यहाँ ?"

एक दिन इसी तरह जब अपनी विरह-व्यथा की कथा नीता कुमार के चित्र को सुना रही थी, सुमित्रा के आने की आहट हुई। नीता ने जल्दी-जल्दी चित्र अपनी चोली में छुपा लिया। सुमित्रा ने आकर पूछा—"क्या हाल है नीताजी ?"

हिम्मत बाँधकर नीता ने कहा—"अच्छे हैं भाभीजी, अपनी कहो ?" नीता के दिल में संदेह था कि कहीं भाभी ने चित्र देख तो नहीं लिया।

नीता के चुप होते ही सुमित्रा ने फिर छेड़ा—"विरह की वेदना शायद ज्यादा सता रही है ? ऐसा मालूम होता है—" याद आ रही है किसी की ?"

"किस की याद आ रही है, तुम तो ऐसी ही बातें करती रहती हो सदा ?"

सुमित्रा हँसकर बोली—"अरे और किस को—गीता के उसी देवर की।"

"तुम्हें याद आ रही होगी, मुझे क्यों आती ?" नीता बिगड़कर बोली।

सुमित्रा ने जवाब दिया—"हमें तो आती ही रहती है। लेकिन चाहते तो यह हैं कि तुम्हें भी आने लगे ?"

"इस तरह की यादें तुम्हें ही मुबारक हों भाभी !" कहकर नीता ने मुँह फेर लिया।

सुमित्रा ने कहा—"यदि तुम्हें भी मुबारक हो जाये तो क्या हर्ज है ?"

"बस-बस, तुम्हें ही मुबारक हों। तुम लोगों को तो संसार में और कोई काम ही नहीं रह गया। पता नहीं कितना बड़ा क्षेत्र पड़ा है आदमी के लिये काम करने को संसार में ?"

नीता की बातों का प्रभाव सुमित्रा पर कतई नहीं पड़ा। बोली—"अच्छा अनी जी, तब तो हमने जो सोच रखा था, गलत निकला। सोचा था दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया है—गाड़ी आगे बढ़ाई जाय ?"

"मुझे तुम माफ करो।" नीता ने फिर कहा—"जब देखो, तब यही ऊटपटाँग बातें !"

नीता की बातों से सुमित्रा के मन में एक नई शंका ने जन्म लिया। सोचा—"संभव है मेरा खयाल गलत हो।" अतः उसने नीता को छेड़ना कतई बन्द कर दिया। लेकिन भाभी के इस रुख को देखकर नीता घबराई। सोचने लगी कहीं भाभी ने मेरे बारे में बहिन को तो कुछ नहीं लिख दिया। यदि कहीं मेरे रुख का अर्थ गलत लिया तो ? नीता सोचती रही—तब क्या होगा, उन पर क्या बीतेगी ? वे क्या समझेंगे मुझे ? यही न कि नीता नीच है। उनकी नीचता गाड़ी में ही मैंने देख ली थी। इतनी फरेबी, अंगूठी भी पहना दी। चित्र भी दे दिया और शादी के लिये मुकर गई।

सोचते-सोचते नीता काँपने लगी—भाभी से कैसे पूछूँ उन्होंने कुछ लिख तो नहीं दिया है ? उनसे कैसे कहूँ कि मेरी शादी करनी है तो कुमार से करदो अन्यथा कुए में धकेल दो।

शनैः-शनैः नीता का दिल धक्-धक् करने लगा। गलती मेरी है। भला मैं उनके नाम से क्यों चिढ़ती हूँ। कब तक यह ढोंग करती रहूँगी ? क्या भाभी को मेरी सूरत नहीं बता रही ? मेरी सूखी आँखें नहीं बता रहीं ? मैं रात भर उनका चित्र लिए रोती रहती हूं। क्या भाभी ने मेरी बातें नहीं सुनीं ? क्या वह नारी नहीं हैं जो एक दूसरे का दिल न पहचानती हों।

नीता बुद-बुदाई—सब पहचानती हैं, लेकिन मेरे दिल से उन्हें क्या मतलब ? उनकी मर्जी है, चाहे जहाँ धकेल दें। क्या मुझे निर्लज्ज होकर बहिन से कहना पड़ेगा कि जीजी मेरी शादी कुमार से करा दो ?

हे राम, क्या होगा नीता का ? क्या बनेगा नीता का ? अपनी बेवकूफियों का परिणाम किस तरह भोगेगी नीता ? सोचते-सोचते नीता रो पड़ी।

जब रुलायी न रुकी तो कुमार का चित्र किताब से निकाला। किताब कमरे में छोड़ी और बैठक में आ गई। चित्र को सामने रख कर बोली—"तुम मुझे दगा मत देना—मुझे गलत मत समझना। नीता तुम्हारी है, तुम्हारी रहेगी—कभी की हो चुकी है तुम्हारी। अन्यथा तुम्हारा चित्र सीने से लगाकर कुएँ में कूद पड़ेगी।"

नीता की दशा पागलों जैसी होती जा रही थी। सोचने लगी—अगर भाभी ने लिख दिया होगा कि नीता शादी को तैयार नहीं तो ! बाद में चित्र से बोली—"तब भी तुम विश्वास मत करना। मेरे अच्छे कुमार ! एक बार यहाँ हो जरूर जाना। विश्वास रखो तब ढोंग नहीं करूँगी। अब कभी भाभी से भी नहीं करूँगी। पूछेंगी 'हां' कह दूँगी भैय्या से भी 'हाँ' कह दूँगी।"

नीता का बुदबुदाना जारी रहा—"चार दिन होने को आये। रोते-रोते मैं पागल हो गई। तुम बड़े पत्थर दिल हो—पाँच नये पैसे का एक पत्र भी न डाला।" आप ही आप फिर बोली—"हाँ जी, क्यों डालते। मैं तुम्हारी कौन होती हूँ। नीता अब तुम्हारी कौन है ? पता नहीं कितनी नीता तुम्हारे लिये आँखें बिछाये होंगी—मुझ गरीब पर क्या धरा है ?

"मेरे लिये सब कठोर हो गये। भाभी तो हो ही गई, तुम भी हो गये। मैं बेवकूफ जो ठहरी ! तुम्हारे नाम से चिढ़-चिढ़ कर मैंने अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली कुमार ! लेकिन यह मेरा ढोंग है, यह कैसे कहूँ भाभी से ? यह सब मेरा बनावटीपन है, महज शर्म की वजह से, वरना नीता तुम्हारी थी, तुम्हारी है और तुम्हारी ही रहेगी मेरे नाथ !"

"अनी !" सुमित्रा बहुत देर से नीता का पागलपन देख रही थी। देखते-देखते जब उससे न रहा गया तो उसका दिल भर आया और नीता को आवाज दे दी।

नीता ने झट चित्र को चोली में छिपा लिया और सँभल कर बोली—"हाँ भाभी !"

बैठक में आते-आते सुमित्रा ने पूछा—"क्या हो रहा है ?"

मरे मन से नीता ने जवाब दिया—"कुछ नहीं भाभी ! अपने इतिहास के पर्चों पर विचार कर रही थी कि गलती कहाँ-कहाँ हुई है मुझ से इम्तिहान में ?"

सुमित्रा मुस्कराई। मन में सोचा—अभी तो ढोंग न भरने की कसम खा रही थी और मेरे आते ही फिर वही ढोंग भरना शुरू कर दिया।" अत: प्रकट में बोली—"इतिहास के पर्चों की गलतियों पर विचार कर रही थीं अथवा अतीत के क्षणों का स्मरण ?"

"अतीत के क्षण कौन से भाभी ?"नीता की पिछली आदत लौट चुकी थी।

सुमित्रा हैरान हो गई—"वही जो अब से कोई चार दिन पहले बीते हैं ?"

"ऐसी बातों के स्मरण तुम्हीं करती रहा करो भाभी, मेरे पास इतना समय कहाँ है जो फाल्तू बातों से दिमाग खराब करूँ ?"

"बेशक ! तुम्हारे पास इतना समय कहाँ है—वह तो हमारे पास ही है। रो-रोकर हमने ही आँखें सुजा ली हैं। हमारे ही चेहरे पर ग्यारह बज रहे हैं ?"

"तुम्हारे पर तो बज ही रहे हैं और क्या मेरे पर बज रहे हैं ?" नीता ने फिर हेकड़ी भरनी शुरू की।

सुमित्रा ने एक लिखा कार्ड दिखाते हुए कहा—"अच्छा छोड़ो भी इन बातों को, ठीक ही हुआ जो हुआ। लो तुम्हें एक खुशखबरी सुनाती हूँ।"

"क्या भाभी ?" तत्काल नीता की जबान से निकला।

सुमित्रा बोली—"पन्द्रह तारीख को कुमार की शादी है, तुम्हें भी बुलाया है। बारात बरेली जायेगी।"

नीता इस अघात के लिये तैयार नहीं थी। पलंग पर सर पकड़ कर बैठ गई।

सुमित्रा ने पूछा—"क्या हुआ नीता ?"

नीता चुप रही। सुमित्रा ने फिर छेड़कर पूछा। नीता फिर भी चुप रही। तीसरी बार मुश्किल से नीता ने कहा—"मेरे सर में दर्द है भाभी !" कह कर वह अन्दर के कमरे में जा पड़ी।

सुमित्रा पीछे-पीछे गई—"दर्द है तो दवा ले आओ किसी डाक्टर से ?"

नीता ने सुमित्रा को कोई उत्तर नहीं दिया। सुमित्रा कहती रही—"अच्छा दवाई तो हमीं ला देंगे। बरात के बारे में क्या रहा, चलो तो तैयारी करें ?"

नीता अस्पष्ट स्वर में बोली—"मुझे नहीं जाना है भाभी किसीकी शादी में—तुम्हें जाना हो चली जाओ।"

"अच्छा तो यही था तुम भी चलतीं।"

सुमित्रा के बारबार कहने पर नीता चीख पड़ी—"मैं नहीं जाती, नहीं जाती। जिसे जाना हो जाय। मुझे छोड़ दो, सर में दर्द हो रहा है। कुछ देर सोना चाहती हूँ। जाओ तुम यहाँ से भाभी, मुझे माफ करो मैं सोना चाहती हूँ।"

"या रोना चाहती हो ?" सुमित्रा ने ठहाका लगाया।

नीता को बुरा लगा। बोली—"क्षमा करो भाभी, मुझे मत छेड़ो। भला मैं क्यों रोऊँ ? जरा सर में दर्द हो रहा है, इसी लिए सोना चाहती हूँ।"

इस बार सुमित्रा खुली—"नीता बनो मत, मैं भी औरत हूं।

तुम्हारा यह उतरा चेहरा साफ बता रहा है कि तुम कुमार से प्रेम करने लगी हो और वह भी बहुत दूर तक ।"

"भाभी !" नीता फिर चीखी—"गलत बात को लेकर क्यों मुझे परेशान कर रही हो । मैं किसी से प्रेम नहीं करती । नाहक मुझे तंग न किया करो ।"

"तुम्हारी आँखें बता रहीं है अनी ! लेकिन फिर भी तुम अपना रोग छिपाती चली आ रही हो ।" सुमित्रा कहती रही"—इसीलिए तो आज तुम्हारे सर में दर्द हो रहा है, लेकिन मैं जानती हूँ यह दर्द कैसा है ?"

"कैसा दर्द है ? यों ही कहे जा रही हो ।"

"सिद्ध कर दूँ तो ?" सुमित्रा ने चुनौती दी ।

नीता ने स्वीकार कर ली—"हाँ-हाँ, मैं कब मना करती हूँ । करदो न सिद्ध ?"

"यह लो ?" कहकर सुमित्रा ने झपट कर नीता की चोली में हाथ डाल कर कुमार का चित्र खींच लिया । नीता थरथर काँप उठी और सर झुका लिया ।

सुमित्रा बोली—"बस हो गई सफाई खत्म ? अब बोलो तुम क्या कहती हो ?"

भाभी !" नीता की जुबान से निकला—"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझ पर दया करो । लौटा दो दो-चार दिन के लिये मुझे इस चित्र को । और इसके बाद नीता इस दुनिया में नहीं रहेगी ।" नीता उत्तेजित हो चली—"मैं पूछ तो लूँ इस बेदर्दी से, मैं ने क्या अपराध किया था ? मेरे दिल को क्यों इस तरह तोड़ गया ? मेरा गला क्यों नहीं घोट गया ? भाभी-भाभी !" कहकर नीता अचेत हो गई ।

सुमित्रा घबराई । लपक कर एक गिलास में पानी लाई । ठण्डे पानी के छींटे दिये । नीता ने आँखें खोल दीं ।

नीता को होश में आया देखकर सुमित्रा बोली—"अनी, तुम बड़े कच्चे दिल की हो। जरा-सी बात पर इतनी बेवकूफी ? इतना दिल पर आघात कर लेना ठीक नहीं होता ?"

नीता की हिचकियाँ बँध गई। बोली—"भाभी, मेरा दिल टूट चुका है। वह नीता मर चुकी। उन्होंने मेरे साथ धोखा किया?"

सुमित्रा ने पूछा—"तुम दोनों का शादी के बारे में तय तो हुआ नहीं था। इसलिए धोखे का आरोप निराधार है।"

नीता नहीं मानी। बोली—"भाभी वे इतने बड़े हो गये। क्या इतने समय तक भी मेरे साथ रहकर उन्होंने मुझे नहीं समझा। नहीं समझा था तो मेरा फोटू क्यों ले गये थे ?"

"अच्छा, बात यहाँ तक हो गई थी ? लेकिन तुमने तो अनी कभी जिक्र ही नहीं किया। मैंने भी जब कुछ कहा तो उल्टे मुझे ही डाँटती रहीं।"

नीता सर नीचा करके बोली—"भाभी, आखिर मैं हूँ तो नारी ही। शर्म-हया मेरे अन्दर भी तो है। डर लगता था तुम कहीं भैय्या से न कह दो ?"

सुमित्रा ने बताया—"हमने तो उसे बुलाया ही इसलिये था ताकि तुम दोनों ही एक-दूसरे को पसन्द करलो। लेकिन सब कुछ होते हुए भी तुम हमें झाँसा ही देती रहीं। इसीलिए मैंने पत्र लिख दिया कि नीता की इच्छा नहीं है।"

"मेरा भाग्य भाभी, इसमें किसी का क्या दोष ?" नीता रो पड़ी—मेरी आयु ही भगवान् ने इतनी लिखी थी और वह भी आत्म-हत्या करके मरना लिखा था। नीता रोते-रोते बोली—"लेकिन तुम तो औरत थीं भाभी ! तुमने हमारी बातें भी सुनी थीं। तुम्हें यह भी पता था कि अटेची से उनका चित्र मैंने चुरा लिया है। फिर भी तुम इतनी कठोर क्यों बन गईं ? नीता का गला अपने हाथ से ही घोट दिया तुमने भाभी !"

गम्भीर चेहरा बनाकर सुमित्रा ने कहा—"चाहो तो अब भी कुछ हो सकता है ?"

नीता के मुर्दा चेहरे पर जीवन की रेखा दिखाई दी। उत्सुकता वश पूछा—"कैसे भाभी, अब तो मुश्किल है। अबतो उनकी बारात जा रही है ?"

"मिठाई खिलाओ तो कुछ करें भी ऐसे ही तो कुछ नहीं होता। बारात लौटाना आसान नहीं है नीता !"

"हो सके तो मेरा जीवन बचालो भाभी ! नहीं तो बस नीता मर जायेगी ?"

"करें एक बार कोशिश ?"

"जरूर भाभी !"

"एक कार्ड लिखे देती हूँ। लिख दूँगी उस संबंध को तोड़दो, नीता तैयार है।"

"हाँ-हाँ, यही लिख दो भाभी ! लेकिन मेरी कसम भैया को जरा भी पता न चले इन बातों का ?"

"तू बेफिक्र रह, लेकिन अब बनना मत ? कभी फिर मेरे करे-कराये काम को चौपट करदे।" सुमित्रा ने नीता से स्पष्ट 'हाँ' कराने के लिये कहा।

नीता ने कहा—"कान पकड़ती हूँ भाभी ! फिर कभी ऐसी नहीं बनूँगी।"

"तब तो इस चिट्ठी को पहले पढ़लो।" कहकर सुमित्रा ने नीता की ओर चिट्ठी फेंक दी।

नीता ने चिट्ठी उठाकर पढ़ी। चिट्ठी गीता की थी। उसने सुमित्रा से पूछा था यदि नीता को कुमार पसन्द हो तो रिश्ता तय कर लिया जाया। चिट्ठी पढ़कर नीता ने कहा—"इसी चिट्ठी को बता रही थीं तुम उनकी शादी की चिट्ठी ?"

सुमित्रा हँस पड़ी—"कहो कैसी रही ? निकाल लिया न दिल

में क्या था तुम्हारे ? बड़ी बनी-बनी फिरती थीं। शादी का समाचार सुनते ही बेहोश हो गई। वरना तो यही कहती थीं—यह बातें हमें अच्छी नहीं लगतीं भाभी ?"

नीता ने मुस्कराकर कहा—"यह तो मैं अब भी कहती हूँ, तुम बड़ी वैसी हो भाभी !"

"अच्छा होश आ गया दीखता है ? अभी चिट्ठी लिखना न लिखना मेरे हाथ में है। चाहूँ तो उल्टी लिख दूँ।"

"लिख दो तुम्हारी खुशामद कौन करता है ?"

सुमित्रा ने टेढ़ी दृष्टि करके कहा—"अभी-अभी तो रो-रोकर मेरे पैर पकड़ रही थीं। अभी दो मिनट में ही करवट बदल गई। खैर, नेकी कर कुएँ में डाल, हमारा तो हातिमताई का उसूल है। लिखे देती हूँ—लाओ कलम दावात और कागज कि नीता तैयार है ?"

चिट्ठी में सुमित्रा ने साफ लिख दिया—"नीता की ओर से निश्चिन्त रहो। कोशिश यह करो इसी मास में शादी हो जाय ?"

चिट्ठी लिखकर सुमित्रा ने नीता से पूछा—"कहो तो यह भी लिख दूँ यहाँ आत्महत्या की नौबतें आ रही हैं। बेहोशी तो कई बार आ ही चुकी हैं ?"

"धत्त्, भाभी, तुम बड़ी बुरी हो ?" कहकर नीता बैठक की ओर लपक गई।

ठीक एक सप्ताह बाद गीता का पत्र सुमित्रा को मिल गया—"सगाई भेज दो।"

सुमित्रा पत्र पढ़ती हुई अन्दर आयी। नीता ने पूछा—"क्यों भाभी हँसी कैसे आ रही है ? किसकी चिट्ठी है ?"

"तुम्हारी सगाई माँग रहे हैं।" सुमित्रा बोली।

नीता ने गर्दन झुकाली—"फिर इसमें हँसने की क्या बात है भाभी ?"

सुमित्रा नीता के इस उत्तर पर और जोर से हँसी। बोली—"हँसने की बात यह है कि सगाई तो तुम पहिले स्वयं ही भेज चुकी हो अब हमें क्यों परेशान कर रहे हैं ?"

"धत् भाभी तुम बड़ी वैसी हो।" नीता कहकर चलदी।

दूसरे दिन सगाई भेजदी गई।

जिस दिन बारात ज्ञानेश्वर के यहाँ पहुँची, उस दिन तो कोई खास बात नहीं हुई। दूसरे दिन सुमित्रा ने कुमार से पूछा—"कुछ कहें तो रोकर तो नही भागोगे, उस दिन की तरह ?"

"नहीं भाभी।" कुमार ने कह दिया।

"अच्छा यह तो बताओ तुम दोनों की बैठक में ही साँठ-गाँठ हो गई थी न ?"

कुमार चुप हो गया।

सुमित्रा हँसती रही। कहती रही—"जरा कपड़ा ठीक ढंग से ओढ़ा करना, नीता की आदत बदली नहीं है।"

इस बार कुमार ने जवाब दिया—"ऐसा करेंगी तो आप पर शिकायत नहीं आयेगी, विश्वास रखिये।"

"हाँ जी, अब हमें कौन पूछता है ?"

"अब तुम्हें पूछे ही जायेंगे, बहुतेरी पूछ लीं।" गीता हँसती हुई आ रही थी।

गीता को देखकर सुमित्रा बोली—"आ गईं तुम भी जालसाज !"

"हमीं क्या और देख लो कितने जालसाज आये हैं ?"

हास-परिहास के बाद बारात की विदा हुई। नीता बहू बनकर ससुराल आयी।

दूसरे दिन जब नीता और कुमार खुसर-फुसर कर रहे थे। राजरानी आ निकली। पूछा—"क्या हो रहा है लल्ला ?"

नीता राजरानी को देखकर उठ खड़ी हुई। कुमार बोला—"सरस्वती की पूजा कर रहा था भाभी !"

"किस की बदौलत लल्ला ?"

कुमार हँस पड़ा—"भाभी की बदौलत भाभी !"

राजरानी ने ठहाका लगाया। ठहाके की आवाज सुनकर जानकी झटपटाती आई। बोली—"बहू-ओ बहू ! कुछ देखती भी हो, लाला खैरातीलाल और कान्ता मुँह दिखाई की रस्म अदा करने आये हैं और तुम गँवार की तरह यहाँ हँस रही हो ?"

राजरानी शर्मा गई। लाला खैरातीलाल और कान्ता अन्दर आये। कुमार ने दोनों के पैर छुये। लाला खैरातीलाल बोले—"जिओ बेटा !"

चकित होकर कान्ता ने लालाजी की ओर देखा। लालाजी कान्ता का आशय समझ कर बोले—"हाँ कान्ता, मैंने ठीक ही कहा है। मैं कुमार को गोद लेने का निश्चय कर चुका हूँ। यह है मेरी जायदाद की वसीयत।"

कान्ता ने मुस्करा कर पूछा—"लेकिन यह बहू के नाम है या बेटे के नाम है ?"

"यह अधिकार तुम्हारे लिए सुरक्षित है।" कहकर कान्ता के हाथ में लालाजी ने कागज दे दिये। कान्ता ने कागज लेकर कुमार के हाथ में देते हुए कहा—'लो लल्ला, यह भाभी की तुच्छ भेंट !"

कुमार ने बढ़कर कान्ता के पैर छुए। बाद में नीता ने भी पैरों को हाथ लगाया। और जब नीता ने कान्ता के पैर छूकर गर्दन उठायी तो उसके गले में एक भारी स्वर्ण हार आँसुओं की दो बूँदों के साथ पड़ चुका था।